dk0; f'k[kj

ch-,- I

nljLFk f'k{kk funs'kky;

egf"k n;kuUn fo'ofo|ky;

jksgrd&124 001

Copyright © 2002, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

Developed & Produced by EXCEL BOOKS PVT LTD, A-45 Naraina, Phase 1, New Delhi-110028

विषय सूची

क्रम सं०	विषय	पृष्ठ सं०
	भाग – 1	
	कबीरदास	**3–52**
	समीक्षा	
1.	कबीरदास का सहित्यक परिचय	3
2.	कबीरदास की सामाजिक चेतना	9
3.	कबीरदास की भक्ति–भावना	12
4.	कबीरदास की भाषा	17
5.	कबीरदास की काव्यकला	21
6.	**व्याख्या**	26
	सूरदास	**53–95**
	समीक्षा	
1.	सूरदास का साहित्यिक परिचय	53
2.	सूरदास की भक्ति–भावना	57
3.	सूरदास का वात्सल्य वर्णन	61
4.	सूरदास का वियोग वर्णन	66
5.	सूरदास की काव्यकला	71
6.	**व्याख्या**	77
	तुलसीदास	**96–127**
	समीक्षा	
1.	गोस्वामी तुलसीदास का साहित्यिक परिचय	96
2.	तुलसीदास की भक्ति भावना	100
3.	तुलसीदास की सामाजिक चेतना	105
4.	तुलसीदास की कलागत विशेषताएँ	110
5.	तुलसीदास की प्रासंगिकता	115
6.	**व्याख्या**	119
	मीराबाई	**128–164**
	समीक्षा	
1.	मीराबाई का व्यक्तित्व व कृतित्व	128
2.	मीराबाई की प्रेम–साधना	133
3.	मीराबाई की भक्ति भावना	138
4.	मीराबाई की गीति–योजना	143
5.	मीराबाई की काव्यकला	148
6.	**व्याख्या**	155

	बिहारी	**165–218**
	समीक्षा	
1.	बिहारी का साहित्यिक परिचय	165
2.	बिहारी श्रृंगार के अनुपम चितेरे	168
3.	बिहारी की भक्ति	174
4.	बिहारी की बहुज्ञता	180
5.	बिहारी की काव्यकला	183
6.	**व्याख्या**	190

भाग – 2

	अमीर खुसरो	**221–232**
	समीक्षा	
1.	अमीर खुसरो का सहित्यक परिचय	221
2.	अमीर खुसरो की हिंदी कविता संबंधी कृतियों का उल्लेख	223
3.	अमीर खुसरो की कविता की वस्तुगत प्रवृत्तियाँ	226
4.	अमीर खुसरो के काव्यशिल्प	228
5.	अमीर खुसरो के काव्य की विशेषताएँ	230
	विद्यापति	**233–245**
	समीक्षा	
1.	विद्यापति का साहित्यक परिचय	233
2.	विद्यापति की भक्तिभावना	235
3.	विद्यापति सौंदर्य के सिद्ध कवि हैं	237
4.	विद्यापति की गीति–योजना	240
5.	विद्यापति के काव्य की विशेषताएँ	243
	भूषण	**246–256**
	समीक्षा	
1.	भूषण का साहित्यिक परिचय	246
2.	भूषण वीर रस के श्रेष्ठ कवि है	248
3.	भूषण की राष्ट्रीय चेतना	250
4.	भूषण के काव्य की विशेषताएँ	252
5.	भूषण की कविता का शिल्प पक्ष	255
	घनानंद	**257–268**
	समीक्षा	
1.	घनानंद का साहित्यिक परिचय	257
2.	घनानंद की प्रेमानुभूति	260
3.	घनानंद की भक्ति–भावना	262
4.	घनानंद के काव्य की विशेषताएँ	264
5.	घनानंद को काव्यशिल्प	267

Hkkx 1

dchjnkl

lehk{kk

1.

कबीरदास का सहित्यिक परिचय

संतकाव्य परंपरा के सर्वप्रमुख कवि कबीर थे। वे अपने समय के सच्चे प्रतिनिधि थे। वे एक सच्चे साधक, निश्ठावान भक्त, उच्चकोटि के कवि तथा प्रगति ील समाज सुधारक थे। 'हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उनका वर्णन इस प्रकार किया है–

"ऐसे थे कबीर। सिर से पैर तक मस्तमौला, स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्खड़, भक्त के सामने निरीह, भेशधारी के आगे प्रचंड, दिल के साफ, दिमाग से दुरुस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृ य, कर्म से वंदनीय थे।"

thou&ifjp;

अन्य भक्त कवियों की भांति कबीर का जीवनवृत्त भी अंधकारमय है। कबीरपंथी साहित्य की पुस्तक 'कबीर चरित्र बोध' में इनकी जन्मतिथि का निर्दे ा दिया गया है–

> *"चौदह सौ पचपन साल गये, चंद्रवार एक ठाठ गए।*
> *जेठ सुदी बरसायत को, पूरनमासी प्रगट भए।।"*

इस कथन के अनुसार, कबीर का जन्म 1398 ई० में हुआ। 1600 ई० 'अनंत दास' द्वारा रचित 'श्री कबीर साहिब जी की परचई' में कबीर के विशय में कहा गया है–

"कबीर जुलाहे थे और का ी में निवास करते थे। वे गुरु रामानंद के ि ाश्य थे। सिकंदर का का ी में आगमन हुआ और उन्होंने कबीर पर अत्याचार किए। कबीर ने 120 वर्श की आयु पाई।"

प्रसंग पारिजात (चेतनदास) नामक कृति में बताया गया है कि नीरू नीमा जुलाहे को का ी में 'लहरतारा' तालाब पर तैरता हुआ नवजात ि ा ु मिला। उन्होंने ही इसका पालन पोशण किया। ऐसा माना जाता है कि उन्होंने गृहस्थ जीवन बिताया। इनकी पत्नी का नाम लोई था। लोई से कबीर को कमाल नामक पुत्र और कमाली नामक पुत्री – दो संतानें प्राप्त हुई। कुछ का विचार है कि लोई कबीर की ि ाश्या थी तथा आजन्म इनके साथ रही। कबीर के ये भाब्द इनकी पत्नी के विशय में बताते है–

> *'हम तुम बीच भयौ नहीं कोई, तुमहि सुकंत जारि हम सोई।*
> *कहत कबीर सुनहु रे लोई, अब तुमरी परतीति न होई।।'*

गुरु के प्रति कबीर के गुणगान से यह आभास होता है कि कबीर का कोई–न–कोई गुरु अव य था। अधिकां ा आलोचक रामानंद को तथा मुसलमान सूफी फकीर भोख तकी को इनका गुरु मानते हैं। इन पर सिकंदर लोदी ने अत्याचार किए। यह आभास कबीर के पदों में मिलता है।

कबीर का जन्म, परिवार, धर्म यहाँ तक कि मृत्यु भी विवादित रही। कबीर की मृत्यु के विशय में निम्नलिखित पंक्तियाँ मिलती हैं–

"संवत पंद्रह सौ पछत्तरा, कियो मगहर को गवन।
माघ सुदी एकादसी रलो पवन में पवन।"

इस कथन के अनुसार, इनकी मृत्यु संवत 1575 में मानी जाती है।

dk0; l'tu

'मसि कागद छुऔ नहीं कलम गही नहिं हाथ।' कबीर की वाणियों को लिपिबद्ध उनके ि ाश्यों ने किया। इनकी रचनाओं के बारे में वैमत्य मिलता है। प्रो० एच० एस० विल्सन ने इनकी आठ रचनाएँ मानी है तो नागरी प्रचारिणी सभा ने 150। डा० हजारी प्रसाद ने बीजक, कबीर ग्रंथावली (नागरी प्रचारिणी सभा), कबीर वचनावली (सं० अयोध्यासिंह उपाध्याय) को अपनी कृति 'कबीर' के लिए मूल रचना माना है। कबीरदास की वाणियों का संग्रह 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है तथा इसे ही प्रामाणिक माना जाता है। बीजक के तीन भाग हैंः–

1. साखी, 2. सबद, 3. रमैणी।

इनका परिचय इस प्रकार है–

1. **साखीः** 'साखी' को ज्ञान की आँखें भी कहा जाता है। कबीर 'आंखिन देखी' में वि वास रखते थे।
2. **सबदः** जिन पदों में ब्रह्म अथवा परमपद के स्वरुप और प्राप्त करने की साधना प्रणाली का वर्णन हो, उन्हें सबद कहते हैं। कबीर ने बौद्ध सिद्धों और नाथयोगियों से इन गेय पद (सबद) परंपरा को ग्रहण किया।
3. **रमैनीः** चौपाई–दोहा भौली में लिखी रचनाएं 'रमैनी' कहलाती है। बीजक में 84 रमैनियाँ मिलती है। रमैनी में मुख्यतः जीव, सृश्टि, जगत् आदि विशयों पर विचार किया गया है।

dk0;xr fo'k"krk,¡

कबीरदास जीवनानुभवों के कवि है। उन्होंने अपनी रचनाओं में 'आँखिन देखी' बातों को अंकित किया है। उनके काव्य की निम्नलिखित वि ोशताएँ हैंः–

निर्गुण ब्रह्म की उपासना

कवि कबीर का ब्रह्म निर्गुण है। वह अजन्मा और अनाम है। इन्होंने राम की उपासना पर बल दिया हैः–

"निर्गुन राम जपहु रे भाई।
अविगत की गति लखी न जाई।"

कबीर के राम दुश्ट–दलन रघुनाथ नहीं हैं। इनकी राम के विशय में अवधारणा है–

"द ारथ सुत तिहुं लोक बखाना।
राम नाम का मरम है आना।।"

कबीर के अनुसार, वह परम तत्त्व पुश्प गंध से भी पतला है तथा उसके मुँह या रुपरेखा कुछ भी नहीं है।

बहुदेववाद व अवतारवाद का विरोध

कबीर एक ई वर में वि वास रखते थे। एक ई वर सर्वव्यापक है। सभी धर्मों, मतों आदि का मार्ग अंततः इसी ओर जाते हैं। नामों के आधार पर संघर्श व्यर्थ है। एक ही ई वर से सबकी उत्पत्ति होती है और फिर सब उसी में लीन हो जाते हैं:–

"प्राणी ही ते हिम भया हिम ह्वै गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया अब कुछ कहा न जाइ।।"

सद्‌गुरु का महत्त्व

कबीर ने साधना के मार्ग में गुरु को अत्याधिक महत्त्व दिया है। वे गुरु को परमात्मा से भी बढ़कर मानते हैं। गुरु अपने ि ाश्य के बाह्याचार और मानसिक चिंतन का परिष्कार करता है–

"गुरु कुम्हार सिश कुंभ है गढ–गढ काढै खोट।
अन्तर हाथ सहार दे बाहै बाहै चोट।"

गुरु ही ई वर पाने का मार्ग दिखाता है।

रहस्यवाद

कबीर के काव्य में रहस्यवादी भावना के द ान होते हैं। इनका प्रियतम छिपा हुआ है। वे ब्रह्म को प्रियतम और स्वयं को पत्नी रुप में अभिव्यक्त करते है। अलौकिक के प्रति लौकिक प्रेमानुभूति की अभिव्यक्ति विधि रहस्य है:–

'सब कोइ कहै तुम्हारी नारी मौकों इहै अन्देहरे।
एकमेक ह्वै सेज न सोवैं, तब लागे कैसो नेहरे।।'

इनके काव्य में इस प्रेम के संयोग व वियोग – दोनों पक्ष मिलते है। मिलन का यह दृ य कितना मार्मिक है–

"नैनों की करि कोठरीं पुतली पलंग बिछाय।
पलकों की चिक डारिकै पिय को लियो रिझाइ।।"

वियोग की द ाा में विरहिणी आत्मा की पीड़ा चरमकोटि तक पहुँच गई है–

"यह तन जारौं मसि करौं लिखौं राम का नाउँ।
लेखनि करौं करकं की लिख–लिख राम पठाउँ।।"

भक्ति भावना

कबीर की कविता का मूल स्वर भक्ति है। वे भक्ति को भवसागर से मुक्ति का साधन मानते हैं। इनकी भक्ति व्यावहारिक जीवन की सहजता व सद्विचारों से जुड़ी है। यह किसी जाति, धर्म, भौतिक दिखावे आदि से ऊपर है। यह भाारीरिक व मानसिक संस्कार का बृहत्तर योग है।

आडम्बरों का विरोध

कबीर ने जाति, धर्म, आर्थिक असमानता का विरोध किया है। इन सबके नाम पर किए जा रहे आडंबरों पर इन्होंने करारा प्रहार किया है। इन्होंने मूर्तिपूजा, तीर्थ, व्रत, रोजा, नमाज, बलि आदि का विरोध किया है। मूर्तिपूजा का उपहास उड़ाते हुए इन्होंने कहा है–

'पत्थर पूजे हरि मिलैं, तो मैं पूजूं पहार।
ताते तो चाकी भली पीस खाय संसार।।"

कबीर की वाणी का प्रहार इतना तीव्र होता है कि श्रोता को हिला देता है। जैसे–

'कंकर पत्थर जोरि के, मस्जिद लई बनाय।
ता चढि मुल्ला बांग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय।।"

कबीर को आक्रमणकारी दृश्टिकोण के कारण युगांतरकारी और विद्रोही कवि के रूप में मान्यता मिली है।

माया का विरोध

कबीर ने माया को ई वर प्राप्ति में बाधक माना है। माया में पड़ा व्यक्ति अपनी ही बात सोचता रहता है। ब्रह्म की प्राप्ति हेतु माया का त्याग अनिवार्य है–

'जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहीं।"

माया का दूसरा नाम अज्ञान है। माया की उत्पत्ति का स्थान मन है। वे माया से बचने का उपाय संसार से विमुख रहना बताते है। कबीर कहते हैंः–

'औंधा घड़ा न जल मैं डूबे सूधा सूभर भरिया।
जाकौं यह जब धिनकर चालै ना प्रसादि निस्तरिया।

मानवतावादी दृष्टिकोण

कबीर की सामाजिक चेतना संपूर्ण मानवता की कल्याण–कामना से जुड़ी हुई है। वे मानव को आद र्ा नागरिकता का पाठ पढ़ाती है तथा विवेकसम्मत जीवन और चिंतन प्रदान करती है।

इन्होंने साम्प्रदायिकता, जातिवाद, वर्ग भेद आदि की आलोचना की। इन्होंने कहा है–

'जाति–पांति पूछे नहिं कोई।
हरि को भजे सो हरि का होई।।'

भाषा–शैली

कबीर द्वारा रचित साखी, सबद और रमैनी में कवित्व की भाक्ति समाहित है। इनकी भाशा सादी है, परंतु उसमें अभिव्यक्ति की क्षमता आ चर्यजनक है। दे ाटन करने के कारण इनकी भाशा में ब्रज, अवधी, बुंदेलखंड, राजस्थानी आदि भाशाओं के भाब्द मिलते हैं। इसी कारण इनकी भाशा को 'सधुक्कडी' या 'पंचमेल खिचड़ी' कहा जाता है। कबीर जब रूढियों पर प्रहार करते हैं तो उनकी भाशा में तीर से भी अधिक चुभन पैदा होती है–

"मस्जिद भीतर मुल्ला पुकारै, क्या साहब तेरा बहरा है।
चिउँटी के पग नेवर बाजै सो भी साहब सुनता है।।"

कबीर सीधी–सी बात को भी इस प्रकार कहते हैं कि वह प्रभावोत्पादक बन जाती हैः जैसे–

'माखी गुड़ में गड़ि रही, पंख रही लपटाइ।
ताली पीटै सिर धुनै, मीटै बोइ माइ।।'

'डॉ० हजारी प्रसाद द्विविवेदी' कबीर को 'वाणी का डिक्टेटर' मानते हैं। इनके अनुसार, "जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है, उसे उसी रूप में भाशा से कहलवा लिया है – बन गया है तो सीधे–सीधे, नहीं तो दरेरा देकर। भाशा कुछ कबीर के सामने लाचार–सी नजर आती है सीधी भाशा में वे ऐसी गहरी चोट करते हैं कि चोट खाने वाला केवल धूल झाड़कर चल देने के सिवा और कोई रास्ता नहीं पाता।"

कबीरदास ने मारू, मैरू, ललित, धनाश्री, सूही आदि रागों का प्रयोग किया है।

vy;dkj

कबीर के काव्य में अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप में हुआ है। वे भाुश्क तथ्यों को उपमानों में लपेट कर प्रस्तुत करते हैं जिससे उनके आकर्शण में अपार वृद्धि हो जाती है। कवि ने रूपक, उपमा, अन्योक्ति जैसे अलंकारों का सहज प्रयोग किया है; जैसे–

(क) यह जग कागद की पुडिया बूँद पड़े धुल जाना है।

(ख) पानी केरा बुदबुदा अस मानुश की जात।

(ग) यह तन काचा कुंभ है, लिये फिरै था साथ।

टपका लागा फूटिया, कछु नहिं आया हाथ।।

dk0; :i

कबीर की सारी रचनाएँ मुक्तक भौली में रचित है। 'साखियाँ' दोहों, 'सबद' पद भौली तथा 'रमैनी' दोहा चौपाई में निर्मित है। गेयता इनके पदों की उल्लेखनीय वि ोशता है।

कबीर अपूर्व प्रतिभासंपन्न कवि थे। इनके काव्य में भाव और विचार, तथ्य और कल्पना, भाशा और अलंकार का आ चर्यजनक रूप में समन्वय हुआ है। इन्होंने मध्य युग में वैसा ही महान् कार्य किया जैसा आधुनिक युग में स्वामी दयानंद, विवेकानंद आदि ने किया। डा० सरनामसिंह के अनुसार, "जिस प्रकार नारियल या बादाम को ऊपर से देखकर उसके भीतरी स्वरूप का वि लेशण नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार कबीर के बाह्य रूप को देखकर, उनकी भर्त्सनामयी कठोर वाणी को पढ़कर, उसके कोमल दयालु अंतर का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। उनके व्यक्तित्त्व की भावनाओं में सरल व गूढ़ – दोनों रेखाओं का अनूठा मिलन है।"

2.

कबीरदास की सामाजिक चेतना

व्यक्ति से ही समाज का निर्माण होता है और समाज से व्यक्ति का। ये एक दूसरे से अन्योन्याश्रित सम्बंध रखते हैं। भारतीय समाज में व्याप्त नाना प्रकार की बुराइयों को दूर करने के लिए कबीर ने एड़ी चोटी का पसीना एक कर दिया। उन्होंने मानवता का पाठ पढ़ने में सबका विरोध किया और एक नये समाज एवं संस्कृति की रचना में अनुपम योगदान किया है।

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के भाब्दों में, "कबीर ऐसे मिलन बिन्दु पर स्थित है जहाँ से एक ओर हिन्दुत्व और दूसरी ओर मुसलमानत्व, जहाँ से एक ओर ज्ञान निकल जाता है और दूसरी ओर अि ाक्षा, जहाँ से एक ओर भक्ति मार्ग निकल जाता है और दूसरी ओर योग मार्ग, जहाँ से एक ओर निर्गुण भावना निकल जाती है और दूसरी ओर सगुण साधना, उसी प्र ास्त चौराहे पर वे खड़े थे। वे दोनो ओर देख सकते थे और परस्पर विपरीत दि ाा में गये हुए मार्गों के दोश, गुण, उन्हे स्पश्ट दिखाई दे रहे थे। कबीर का भगवत् च सौभाग्य था और उन्होंने इसका खूब उपयोग भी किया।"

कबीर ने जातिगत, वं ागत, धर्मगत, संस्कारगत, वि वासगत और भाास्त्रगत रूढ़ियों और परम्परा के माया जाल को बुरी तरह छिन्न–भिन्न किया है।

एक ओर वे पंडितो को खरी–खोटी सुनाते हैं तो दूसरी ओर मस्जिद ओर हज–नमाज की निरर्थकता सिद्ध करते हैं। वे पुकार उठते हैं–

अरे इन दोउन की राह न पाई।
हिन्दुन की हिन्दुआई देखी, तुरकन की तुरकाई।।

उन्होंने मानव मात्र की समानता का सिद्धान्त प्रचारित किया और ई वर की धर्मोपासना के लिए समान अधिकार की माँग की। इस विराट जन आन्दोलन सबसे प्रमुख और कृति के नेता के रूप में अपने मुख से जो भी कहा, उससे हमें उनके युग का पूरा चित्रण मिलता है और भविश्य के लिए संदे ा भी।

leUo; Hkkouk

कबीर एक युगदृश्टा थे। उनकी दृश्टि समग्र जीवन के यथार्थ को पकड़ने का प्रयास किया था। उनका काव्य जीवन की सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक समस्याओं का निरीक्षक, परीक्षक मंत्र है। कबीर ने मध्यम वर्ग को ही चुना था–

कबीर मधि को अंग जे को रहे, तो तिरत न लागेवार।
दुहु दुहु अंग हूँ लागि कर, डूबत है संसार।।

वे समन्वयवादी है। कबीर का काव्य व्यश्टि और समश्टि के मिलन बिन्दु पर स्थित है।

vkMEcjksa dk [k.Mu

कबीर ने धार्मिक बाह्याडम्बरों की कटु आलोचना की है। उन्होंने एक ओर हिन्दुओं के व्रत, मूर्तिपूजा, जीव हिंसा, गंगा स्नान, के ा–कुंडल आदि भर्त्सना की है तो दूसरी ओर मुसलमानों के रोजा, नमाज, अजान आदि भी उनके आक्रो ा के आखेट बने। मूर्तिपूजा और मन्दिर में उपासना, मस्जिद में उपासना उनकी दृश्टि में पाखण्ड के अतिरिक्त ओर कुछ नहीं है–

पाथर पूजे हरि मिले तो मैं पूजूँ पहार।
दुनियाँ ऐसी बावरी पत्थर पूजन जार।
घर की चाकी कोई न पूजै जेटिका पीसा खाया।।
काकर पाथर जोरी के मस्जिद लइ बनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँगि दै, क्या बहिरा हुआ खुदाय।।

व्रत और रोजा आदि की निरर्थकता कबीर ने सर्तक प्रमाणित की है। उनके अनुसार वे बाह्यचार मन और तन को पवित्र करने के स्थान पर और मलिन करते हैं–

हिन्दू बरत एकादसी साधै दूध सिघाड़ा सेती।
अन्न को त्यागे मन नही हटके पारन करें सगोती।।
दिनभर रोजा रहत हैं रात हनत हैं गाय।
वह तो खून, यह बंदगी कैसे खुसी खुदाय।।

इसी प्रकार के ा मुँडवाने पर व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं–

के ा मुडाए जे हरि मिलें, सब कोई लेई मुड़ाई।
बार–बार के मुड़ते, भेड न बैकुण्ठ न जाई।।

मध–मांस–सेवन की कबीर ने कटु भर्त्सना की है। उन्होने जन साधारण को जीव हिंसा के परिणामों से सावधान किया है–

बकरी पाती खात है ताकी काढ़ी खाल।
जे जन बकरी खात हैं तिनको कौन हवाल।।

lkekftd dqjhfr;ksa vkSj va/kfo'oklksa dh HkRlZuk

कबीर ने समाज में व्याप्त छूआछात जाति–भेद, जन–लोभ, वासना, मद्यपान, परनिंदा आदि कुप्रवृतियों की कटु आलोचना की है। कबीर के समय छुआछूत की भावना चर्म ि ाखर पर थी। धर्म इतना दुर्बल हो चुका था कि रोटी के छू जाने से चला जाता था। पवित्रता इतनी क्षणभंगुर हो गयी थी कि किसी के स्प ा मात्र से भंग हो जाती थी। कबीर ने इस प्रवृति की आलोचना करते हुए पंडितों से पूछा है–

जल है सूतक, थल है सूतक, सूतक ओपनी होई।
जिअटे सूतक, मूए सूतक पुनि सूतक सूतक परज बिनोई।।
कहुरे पंडित कौन पविता।

कबीर ने समाज में व्याप्त जाति भेद को घृणा की दृश्टि से देखा है। जाति भेद के प्रति कबीर की भंगिमा बेहद आक्रामक थी। उनकी मान्यता थी कि ब्राह्मण और भूाद्र में किसी प्रकार का भेद करना अन्याय है।

उन्होने स्पश्ट कहा है–

एक ज्योति से सब उत्पन्ना।
कौन ब्राह्मण कौन सुदा।।
जो तू बामन बचनी जाया।
तो आन वाट है क्यों नही आया।।

lkEçnkf;d lkgkæ

कबीर ने न केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय, वै य, भूाद्र को एक ही स्तर पर रखना चाहा अपितु हिन्दू और मुसलमान की चीर भात्रुता की निरर्थकता भी प्रतिवादित की है। वे साप्रदायिकता के कटु विरोधी थे। हिन्दुओं और मुसलमानों की साम्प्रदायिकता की सीमा तोड़कर उन्हे एक भावपा ा में वहाँ ले जाने का अपूर्व बल कबीर काव्य में था। कबीर ने स्पश्ट घोशित किया है–

भूला भरमि परै जो कोई।
हिन्दू तुरक झू० कुल दोई।।

कबीर ने जिस प्रकार धर्म की मौलिक ढंग से व्याख्या की है उसी प्रकार वास्तविक हिन्दू, मुसलमान और ब्राह्मण, काजी आदि के स्वरूप की व्याख्या भी उनकी अपनी है। उनके अनुसार हिन्दू और मुसलमान का ईमान दुरुस्त रहना चाहिए और ब्राह्मण, काजी के लिए आव यक है कि उन्हे सत्य का वास्तविक ज्ञान हो। उनका काव्य 'स्वान्तः सुखाय' अथवा 'स्वामिन् सुखाय' न होकर 'बहुजन हिताय' था। उन्होने अपने युग की अच्छाइयों और बुराइयों को उनकी समग्रता में देखा था। अपने देखे हुए यथार्थ को उन्होने ईमानदारी से लिपिबद्ध किया था। उनकी अनुभूति और अभिव्यक्ति में अभेद था। उन्होने मिथ्याचार और आडम्बरों व सामाजिक कुरीतियों का ईर्श्याव ा या अहंकार व ा विरोध नहीं किया था। उनका विरोध विध्वंसात्मक के साथ–साथ रचनात्मक भी था। वे समाज को एक उपयुक्त ढाँचें मे देखना चाहते थे।

3.

कबीरदास की भक्ति–भावना

भक्ति काल के प्रमुख कवि कबीरदास ने निर्गुण ब्रह्म की उपासना करते हुए समस्त धर्मों के अनुयायियों को एक मार्ग पर लाने का प्रयत्न किया है। उनकी कविता का मूल्य स्वर भक्ति है। भक्ति ही उनके काव्य और जीवन की प्रतिबद्धता और प्राण थी। ई वरानुराग ही उनका सर्वस्व था, भक्ति के गर्भ से ही उनकी कविता की उत्पत्ति हुई है। इतना ही नहीं, कबीर भक्ति को ही भवसागर से मुक्ति का साधन मानते हैं। वे कहते हैं–

जब लग भाव भगति नहिं करि हौं।
तब लग भव सागर क्यूँ तिरि हौं।।

कबीर की भक्ति भाास्त्रानुमोदित भक्ति नहीं है, वह व्यावहारिक जीवन की साधुता और सहजता से समन्वित है वह 'भाव भगति' है। वह ऊँच–नीच, जाँति–पाँति, काम–धाम चमक–दमक, दिखावा–पहनावा आदि बाहयाचारों से बहुत ऊपर की वस्तु है। वह भीतरी पवित्रता, एकाग्रता, प्रेममूलकता, समर्पण ीलता आदि से संसिक्त है। वास्तव में कबीर की भक्ति में भाारीरिक और मानसिक संस्कार का बृहत्तर समायोग है और यही समायोग उन्हें मानवतावादी चेतना के ि ाखर पर ले जाता है।

इत्तिहास ही साक्षी है कि कबीरदास नाना विकट समझी जाने वाली परिस्थितियों के मिलन–बिन्दू पर अवतीर्ण हुए थे। यह वह केन्द्र–बिन्दु है– 'यहाँ से एक ओर हिंदुत्व निकल जाता है और दूसरी ओर मुसलमानत्व, जहाँ से एक ओर ज्ञान निकल जाता है और दूसरी ओर अि ाक्षा एवं अज्ञान, जहाँ पर एक ओर भक्ति मार्ग निकल जाता है, तो दूसरी ओर योग मार्ग, जहाँ से एक ओर निर्गुण भावना निकल जाती है, तो दूसरी ओर सगुणोपासना। उसी प्र ास्त चौराहे पर खड़े वे दोनों ओर देख सकते थे और परस्पर विरुद्ध दि ाा में गये हुए मार्गों के गुण, दोश उन्हें स्पश्ट दिखाई दे रहे थे। कबीर का भगवद्दत्त सौभाग्य था कि उन्होंने इसका खूब उपयोग किया।' वास्तव में कबीर ने अपनी भक्ति–साधना का आरम्भ एक दम दूसरी दि ाा से भाुरू किया था। उनके द्वारा अपनाई गई यह दि ाा सगुणोपासना की दि ाा से ठीक उल्टी पड़ती थी, सगुणोपासकों ने परम्परागत भक्ति–पद्धति को मान लिया था और वे इस के रूढ़िगत विधिविधानों तथा बाह्याचारों को अपना कर थोथेपन का प्रद ान कर रहे थे।

कबीर पहले भक्त हैं, फिर कवि। उनके द्वारा रचित साखी, सबद और रमैनी में कवित्व की भाक्ति समाहित है। उन्होंने अपना पंथ, अपना द ान स्वतः निर्मित किया है, यह निर्मिति उन्होंने स्वानुभूति के सहारे की है। इसी चिन्तन के कारण कबीर ने कहा है कि द ान का दर्पण जब तक स्वानुभूति के प्रका ा से प्रकाि ात नहीं होता, तब तक साधक को सत्स्वरूप का सुद ान प्राप्त नहीं हो सकता है–

जौ दरसन देखा चाहिअै। तौ दरपन मांजत रहिअै।
जब दरपन लागै काई। तब दरसन किया न जाई।।

fuxZ.k mikluk

कबीर निराकार ब्रह्म के उपासक हैं। उन्होंने सर्व व्यापी, सर्व क्तिमान, निर्गुण राम की उपासना की है। उनकी मान्यता रही है कि वह फूलों की सुगंध से भी पतला, अजन्मा और निर्विकार है वह वि व के कण–कण में है। उसे कहीं बाहर ढूंढ़ने की आव यकता नहीं है। जैसे मृग की नाभि में कस्तूरी छिपी रहती है और मृग उस सुगन्ध का स्त्रोत बाहर ढूंढ़ने का प्रयास करता है, उसी प्रकार मनुश्य राम को जगह–जगह ढूँढ़ता है जबकि वह उसके भीतर ही विद्यमान् होता है–

कस्तूरी कुण्डलि बसै, मृग ढूंढ़े वन माहिं।
ऐसै घट–घट राम हैं, दुनियां देखे नाहिं।।

कबीरदास ने ऐसे ई वर के सर्वव्यापी होने की बात पर बल दिया है। वह मानता है कि ई वर कण–कण में समाया है हर मन में उसका निवास है इसलिए उसे ढूंढने की आव यकता नहीं है उसे एकाग्र मन से याद करने की आव यकता है।

प्रियतम को पतिया लिखूँ, को कहीं होय विदेस।
तन में, मन में, नैन में, ताकौ कहा सन्देस।।

,dsÜoj okn

कबीर ने बहुदेववाद तथा अवतारवाद का विरोध किया और एके वरवाद का सन्दे ा सुनाया। ब्रह्म ने ही ब्रहमा, विश्णु महे ा आदि को बनाया है। इसलिए निराकार ब्रह्म ही महत्वपूर्ण है। अवतार तो जन्म–मरण के बन्धन से ग्रसित हैं–

अक्षय पुरुश इक पेड़ है, निरंजन बाकी डार।
त्रिदेवा भाखा भयें पात भया संसार।।

vykSfdd iz.k;kuqHkwfr

कबीर के काव्य में परमात्मा के प्रति अलौकिक प्रणयानुभूति की अभिव्यक्ति की गई है। कबीर वैसे तो खण्डन–मण्डन की राह पर चलते रहे और हिन्दू–मुसलमानों को खरी–खोटी सुनाते रहे पर अपनी रहस्यवादी रचनाओं में से वे अत्यन्त मृदुल और कोमल दिखाई देते हैं। कबीर के रहस्यवाद पर भांकर के अद्वैतवाद का प्रभाव है–

जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है भीतर बाहर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलाहें समाना, यह तत कहो गयानी।।

इस प्रकार कबीर ने सर्वव्यापी ई वर की चर्चा की है जो कण–कण में और हर भारीर में समाया हुआ है। इसके आधार पर जहाँ एके वरवाद की स्थापना होती है वहीं मानवतावाद का स्वरूप भी उभर आता है।

jke uke efgek

कबीरदास का ई वर पर अटूट वि वास और उनके प्रति अनन्य भक्ति है, उन्होंने अपने आराध्य के लिए विभिन्न नामों का प्रयोग किया है। जिनमें राम, साईं, हरि, रहीम, खुदा, अल्लाह आदि प्रमुख हैं। वे इन सभी नामों को पूर्ण श्रद्धाभाव से लेते हैं, उनके मन में सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार ई वर की आराधना का प्रबल स्वरूप विद्यमान था। वे हर व्यक्ति को जगाकर ई वर का भक्त बनाना चाहते थे इसलिए कहते थे–

ज्यों तिल माहिं तेल ज्यों चकमक में आगि।
तेरा साईं तुज्झ में, जाग सकै तो जागि।।

कबीर ने विभिन्न नामों में 'राम' नाम को पूरी गम्भीरता से और बार–बार लिया है। यह सर्व विदित तथ्य है कि कबीर निर्गुण राम के उपासक हैं। वे बार–बार नाम स्मरण की प्रेरणा देते हुए कहते हैं–

कबीर निर्भय राम जपु, जब लागे दीवा बाति।
तेल घटा बाती बुझै, तब सोवौ दिनराति।।

HkfDr Lo:i

कबीरदास की भक्ति भावना में नवधा भक्ति के कई रूप सामने आते हैं। यह नवधा भक्ति बहुत कुछ श्री मद्भागवत से भी समानता रखती है, श्रवण, कीर्तन, स्मरण, वन्दन, दास्य और वात्सल्य आदि रूप पूर्ण गम्भीरता से प्रकट हुए हैं।

गुणगान

कबीर निर्गुण राम की लगातार चर्चा करते हुए उसका गुणगान करते हैं–

निरमल–निरमल राम गुण गावे, सो भगता मेरे मन भावे।
जे जन लेहिं राम को नाऊं, ताको मैं बलिहारी जाऊं।।

वात्सल्य रूप

कबीर के काव्य में यत्र–तत्र वात्सल्य का मन भावन रूप सामने आता है। कबीर स्वयं को बालक और ई वर को जननी के रूप में मान्यता देते हुए कहते हैं–

हरि जननी मैं बालक तोरा
काहे ना अवगुन बकसहु मेरा।

दास्य रूप

कबीर अपने आराध्य की साधना में पूर्ण–रूपेण तत्पर दिखाई देते हैं। उनकी सेवा भक्त के रूप में ही नहीं, सेवक के रूप में भी दिखाई देती है–

कबीर कूता राम का मूतिया मेरा नाऊं।
गले राम की जेवड़ी, जित खींचे तित जाऊँ।।

कान्ता रूप

कबीरदास ई वर भक्ति में लीन होकर उनके द र्न के अभिलाशी हैं। द र्न न होने पर बिरही हो जाते हैं ऐसे में उनकी बिरह उन्हें तपाती है–

बिरह् कमण्डल कर लिये, बैरागी दोऊ नैन।
मांगै दरस मधूकरी, छके रहैं दिन रैन।।

ई वर को कान्ता भाव से स्मरण करते हुए स्वयं को उनकी पत्नी के रूप में प्रस्तुत किया है, अपने पति ई वर को याद करती हुई कवि की आत्मा आवाज देती है–

दुलहिन गावहु मंगलचार
हम घर आयहु राजा राम भरतार।

तन्मयता रूप

कबीर अपने प्रियतम के प्रति पूरी तरह समर्पित हैं वे अपने प्रियतम के साथ एकाकार होना चाहते हैं। यह रूप भक्ति के चरम उत्कर्श को प्रकट करता है–

आंखिन की करि कोठरि, पुतरी पलंग बिछाय।
पलकन की चिक डारि के, पिय को लिया रिझाय।।

इस प्रकार कबीर की भक्ति भावना में कबीर राम के विभिन्न गुणों की उपासना करते हैं और गुण सम्पन्न बन जाते हैं। इसके प चात् वे निर्गुण–निराकाम् की उपासना करते हुए सामने आते हैं। उनकी उपासना में अनन्यता और अटल भक्ति का स्वरूप प्रकट होता है।

डॉ० भिगुणायत ने कबीर की भक्ति–भावना पर नारदी भक्ति के प्रेम तत्व और सूफियों के प्रेम के प्रभाव को प्रकट करते हुए लिखा है, "भक्ति के क्षेत्र में कबीर पर नारद का बहुत प्रभाव पड़ा है। उन्होंने बार–बार नारदी भक्ति का उपदे ा दिया है।" नारदी भक्ति का प्रेम तत्व कबीर की भक्ति का भी आधारभूत तत्त्व है–

"कहु कबीर जन भये खलासी, प्रेम भगति जिन जानी।"

कबीर की भक्ति–भावना में प्रेम को आकर्शक और प्रभावी महत्व दिया गया है। उनका मानना है कि मानव–प्रेम में भी ई वर की कृपा होती है। कण–कण में समाया राम ही मानवतावादी दृश्टिकोण का प्रेरणाधार है।

कबीर की भक्ति भावना सार्वलौकिक, सार्वकालिक और सार्वभौमिक है। वह एक ओर अत्यन्त सरल और सहज है, तो दूसरी और माया से आबद्ध होने पर सर्वाधिक कठिन और कश्टसाध्य भी है। इसका मुख्य कारण है कि कबीर की भक्ति भाव–प्रधान है। उनकी भक्ति में बाह्याडंबर और भौतिक विधानों को कोई स्थान नहीं दिया गया है। उनकी भक्ति में रूढ़ियों, परंपराओं, बाह्याडंबर से दूर सदाचार, सत्याचरण, सहज और व्यावहारिक भाव को वि ोश महत्व दिया गया है।

कबीर की भक्ति सहज है। वे ऐसे मंदिर के पुजारी है जिसकी फर्श हरी–हरी घास, जिसकी दिवारें दसों दि ाएँ है, जिसकी छत नीले आसमान की छतरी है। यह साधना स्थल सभी मनुश्य के लिए खुला है।

कबीर की भक्ति में एकाग्र मन, सतत साधना, मानसिक पूजा–अर्चना, मानसिक जाप और सत्संगति को वि ोश महत्व दिया गया है। यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि कबीर की भक्ति भावना मानवतावाद का प्रतिश्ठित करने वाली सहज और आकर्शक साधना भाव–मय है।

4.

कबीरदास की भाषा

कबीर–काव्य की भाषा के स्वरूप के निर्धारण का प्र न विद्वद्वर्ग में मत–वैविध्य है। उसको किसी ने अवधी, किसी ने भोजपुरी, किसी ने साधुककड़ी, किसी ने राजस्थानी तथा किसी ने विविध भाशाओं के पुट से युक्त ब्रजभाशा बताया है। मतवैभिन्य की जड़ यह दोहा भी रहा है–

"बोली हमारी पूरब की, हमें लखै नही कोय।
हमको तो सोई लखै, धुर पूरब का होय।"

इस दोहे को लेकर भी विद्वानों के दो वर्ग हो गए। जिनमें एक इसके आध्यात्मिक अर्थ को प्रधानता देता है तो दूसरा वर्ग इसके भौगोलिक अर्थ को।

प्रामाणिक पाठ की अनि चता के कारण उनकी भाशा के बारे में अनेकों ने अलग–अलग मत व्यक्त किये हैं। उनकी भाशा में विविध बोलियों और भाशाओं की भाब्दावली को देखकर डॉ० रामकुमार वर्मा ने लिखा है, "भाशा बहुत अपरिश्कृत है। इसमें कोई वि ोश सौन्दर्य नही है।

आचार्य भाुक्ल ने अपने इतिहास ग्रन्थ में लिखा है, "साखी की भाशा साधुक्कड़ी अर्थात् राजस्थानी, पंजाबी मिली खड़ी बोली है, पर रमैनी और सबद् में गाने के पद हैं जिनमें काव्य की भाशा ब्रज तथा कहीं–कहीं पूर्वी बोली का व्यवहार है।"

डॉ० भयाम सुन्दर दास ने, 'कबीर ग्रन्थावली' की भूमिका में लिखा है, "कबीर में केवल भाब्द ही नही, क्रियापद, कारक चिह्नादि भी कई भाशाओं के मिलते हैं। क्रियापदों के रूप अधिकतर ब्रज भाशा और खड़ी बोली के हैं।" यद्यपि कबीर ने स्वयं कहा है 'मेरी बोली पूरबी तथापि खड़ी, ब्रज, पंजाबी, राजस्थानी, अरबी, फारसी आदि अनेक भाशाओं का पुट उक्तियों पर चढ़ा हैं। व्याकरण की दृश्टि से विचार करने पर कबीर की भाशा का कोई नि चत रूप निर्दिश्ट नही किया जा सकता। इसके विपरित आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उन्हे वाणी के डिक्टेटर कहते हुए लिखा, "जिस बात को उन्होने जिस रूप में प्रकट करना चाहा उसे उसी रूप मे भाशा से कहलवा लिया – बन गय हे तो ठीक, नही तो वरेरा देकर। भाशा कबीर के सामने कुछ लाचार सी नजर आता है। उसमें मानो इतनी हिम्मत नहीं जो इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमाइ ा को न कर सके। अकथ कहानी को रूप देकर मनोग्राही बना देने की। जैसी ताकत कबीर की भाशा में है वैसी बहुत कम लेखकों में पाई जाती है। वाणी के ऐसे बाद ाह को साहित्य रसिक काव्यानंद का समावे ा कराने वाला न समझे तो उन्हे दोश नही दिया जा सकता।" इन भाब्दों मे आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर की भाशा को उनकी मूल संवेदना के स्तर पर समझने की चेश्टा की है। वस्तुतः कबीर की भाशा की दो प्रमुख वि ोशताएं हैं – पहली वर्ण्य वस्तु को प्रभाव ाली ढ़ंग से व्यक्त करने की क्षमता, दूसरी वि ोशता है कबीर के व्यक्तित्व की सफल व्यंजना। आचार्य द्विवेदी के कथन में ये दोनों वि ोशताएं समाहित हैं। वाणी के डिक्टेटर कहने का तात्पर्य हैं भाब्दों को समकालीन सांस्कृतिक मंथन के अनुरूप नई अर्थवत्ता प्रदान करना और अपने कथनों को अखण्ड आत्मवि वास की गरिमा से मंडित करना।

'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में कबीर की भाशा के स्रोत के संदर्भ मे आचार्य रामचन्द्र भाुक्ल ने लिखा है कि, "कबीर आदि संतों को नाथपंथियों से जिस प्रकार साखी, बानी भाब्द मिले उसी प्रकार साखी

और बानी के लिए बहुत कुछ सामग्री और साधुक्कड़ी भाशा भी।" इस प्रकार किसी ने 'खिचड़ी' भाशा कहा और किसी ने 'संध्या भाशा'। वस्तुतः कबीर की यह भाशिक वैविधता उसकी स्वच्छंद प्रकृति व फक्कड़पन ही है। उन्होंने अपने मतों और विचारों को सही सही व्यक्त करने वाले भाब्दों का प्रयोग बिना प्रतिबंध के किया। इस विविधता के कारणों मे उसकी धुमक्कड़ी वृति के अलावा विविध ि ाश्यों की व्यवह्त भाशा भी हो सकती है। उनके ि ाश्य विभिन्न वर्गों और क्षेत्रों के लोग थे। सूक्ष्म दृश्टि से कबीर की भाशा पर अध्ययन करने से पता चलता है कि उनमे पूर्व प्रेशणीयता और प्रभविश्णुता है। उनकी सहज साधना के अनुकूल उनकी भाशा है। उसमें किसी प्रकार की भी बनावट नही है। यह भाशा उच्च वर्ग की भाशा की अपेक्षा जनसाधारण की बोलियों के निकट थी अतः इसे तत्कालीन जनभाशा के रूप मे स्वीकार किया जा सकता है। यह भाशा रूढ़ काव्य भाशा नही हो सकती थी। परन्तु भाशा के सामान्य नियमों का उल्लंघन उनमें देखा नही देखा जाता। कबीर ने संस्कृत को कूपजल और 'भाशा' को बहता नीर कहकर दोनो की तुलनात्मक भावना स्पश्ट कर दी थी और जनतंत्रीय भाशा की आव यकता पर प्रका ा डाला है।

वस्तुतः 'बानी' में राजस्थानी, 'ग्रन्थसाहब' में पंजाबी और बीजक में पूर्वी की मात्रा अधिक होने पर भी उन सब पर सभी भाशाओं का प्रभाव है, परन्तु भाशा की मूलधारा अविच्छिन्न है। यह भी सम्भव है कि मनमौजी कबीर ने भिन्न–2 प्रांतों के ि ाश्यों के अनुरोध पर कुछ पदों का गान उनकी बोलियों में किया हो। वैसे भी हिन्दी–फारसी व अन्य बोलियों को मिलाकर रचना रचने की प्रवृति अमीर खुसरो में भी मिलती है।

कबीर की रचनाओं में से अनेक उदाहरण इस विविधता के संदर्भ में प्रस्तुत किये जा सकते हैं–

खड़ी बोली– *"आऊँगा न जाऊँगा, मरूँगा न जीऊँगा*
गुरु के सबद में रमि रमि रहूँगा।"

ब्रज भाषा– *"लेट्यो भामि बहुत पछितान्यौ।"*

अवधी– *"जस तू तस तोहि न जान'*

राजस्थानी– *"आखड़ियाँ प्रेम कसाइयाँ लोग जाने दूखडियाँ*
साई अपने कारणे, रोई रोई रातडियाँ।"

भोजपुरी– *"यह तो खून वह बन्दगी, कैसी खु ी खुदाय।"*

पूर्वी– *"दात गयल मोर पान खात, केस गयल मोर गंग नहात।।"*

भाशा की दुश्टि से कबीर के केवल दो संग्रहों को प्रामाणिक माना जाता है। एक डॉ० भयामसुन्दर दास की कबीर–ग्रन्थावली और दूसरी डॉ० रामकुमार वर्मा द्वारा संगृहित 'संत कबीर' दोनों ग्रन्थों की भाशाओं की वि ोशताएं निम्नलिखित हैं–

भाशा का रूप विशयानुरूप है, विविध प्रान्तीय बोलियों का मिश्रण है। वह अत्यंत सरल और सीदी–सादी है। उसमें पंजाबी, खड़ी बोली, भोजपुरी के अच्छे उदाहरण हैं, उसमें साकेंतिकता, प्रतीकात्मकता और पारिभाशिकता अधिक है।

कबीर की भाशा की यह भी वि ोशता है कि उसका रूप अधिकतर विशय के अनुकूल है, जब वे मुसलमान को कोई बात समझाते हैं तो फारसी मिश्रित उर्दू का प्रयोग करते हैं। साधु—संतो के लक्षण बताते समय भाुद्ध हिन्दी प्रयोग

"निरबैरी निहिकामता, सांई सेती नेह
विशया सूं न्यारा रहै संतनि का अंग एह।"

सहजता एवं सादगी होते हुए भी उनकी भाशा संकेत, प्रतीक और पारिभाशिक है, इसका मुख्य कारण उनकी रचनाओं में योग साधनाओं और रहस्यवादी भावनाओं का होना है। इन विशयों की भाशा पारिभाशिक, प्रतीकात्मक होना स्वाभाविक है। इसी कारण उनकी बानियाँ गूढ़ अर्थों से भरी हैं। यह कबीर की भाशा की अक्षमता न होकर वर्ण्य विशय की वि ोशता है।

कबीर ने अधिकतर भाब्दों के विकृत रूप प्रयुक्त किये हैं, जिससे अर्थ और उसके मूल तक पहुचने में कठिनाई होती है। पदों के भाब्द इतने तोड़े मरोड़े जाते है कि उनके अस्पश्ट रूपों का भी वे प्रयोग करते हैं। इस रूप में भाशा पर उनका पूर्ण अधिकार है। भाशानुकूल और समयानुकूल भाशा गढ़कर उसे काँट छाँट स्वेच्छानुसार अभिव्यक्ति के लिए भब्द तैयार करने में कबीर सिद्धहस्त हैं। डॉ० राजदेव सिंह ने लिखा है कि, "उनके भाब्द परम्परागत अर्थ से भिन्न युग संदर्भा एवं कबीर की मानसिकता के अनुरूप अपना नया अर्थ रखते हैं।"

कबीर की काव्य कला जनता की भाशा का परिश्कार करने के लिए नहीं थी, और व उनके सांस्कृतिक स्तर को सुधारने का कोई सारस्वत आंदोलन ही था। वे तो जनता के मन की बात कहने के लिए लालायित थे। कुछ अपनी कुछ सबकी कहने की ओर ही उनकी रूचि थी। इसके लिए सर्वसाधारण की भाशा से अधिक उपयुक्त माध्यम कोई और नही था। उनकी सधुक्कड़ी भाशा का सीधा सम्बन्ध जनमन से रहा है—

"मुनियर पीर डिगम्बर मोर, जतन करंता जोगी,
जंगल महि के जंगम मोर, तू रे फिरै बलवंती।"

यह भाशा का दुरूह रूप नही है। मुनि की जगह मुनियर और डिगम्बर जैसे प्रयोग जनवाणी से ग्रहण किये। श्रम प्रधान कार्य करने वालों में भाब्दों को ललित बनाने की जगह उन्हे उद्धत बनाने की प्रवृति अधिक दिखाई देती है। ि ाक्षित और ि ाश्ट समाज तथा अि ाक्षित समाज में भाब्द प्रयोग करने में परस्पर विरोधी प्रवृति दिखाई पड़ती है। ि ाक्षित वर्ग औद्धत्य से बचता है श्रमिक वर्ग में उजड्डता स्वतः आ जाती है। औद्धत्य या अटपटापन कबीर की जनभाशा की वि ोशता है। यही वि ोशता प्रखरता को जन्म देती है। कबीर ने उच्च वर्ग की ि ाश्टता व ि ाक्षा के प्रति पूर्व से ही विद्यमान उपहास और औद्धत्य की वृति वालें भाब्दों का प्रयोग किया। पाखण्ड पर प्रहार करने के लिए ऐसे भाब्दबान ही कारगर होते हैं। कबीर की ललकार भरी वाणी मानो सदियों से पीड़ित जनता का बदला लेने के लिए उतावली हो रही थी। जाति की दीवारे तोड़ने के लिए कबीर की वाणी व्यंग्यात्मक प्रहार करती है— "जो तू बामन बामनी का जाया, आन बाट है काहे न आया।" बगुलाभक्त ब्राह्मणें के लिए आज भी पांडे भाब्द ध्वनि देता है। "पकरी टेक कबीर भक्ति की, काजी रह झख मारि" से इस्लाम के ठेकेदारों के प्रति जनमत का तिरस्कार व्यक्त किया है। यह अपरिश्कृत और व्यवहारिक भाशा का ही परिणाम है कि उसमें विलक्षणता और विदग्धता है।

नागरी भाालीनता से उबने के बाद सीधी सपाट बात का जो सहज आनन्द है वही प्रभाव कबीर की भाशा में है। अभिव्यंजना की सहजता और भाशा की सादगी ही कबीर की कविता का प्रकृत सौन्दर्य है। कबीर की भाशा के संदर्भ में महत्वपूर्ण यह है कि वह तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक मंथन की भाशा है। उसमें युगों से उपेक्षित एवं दलिय वर्गीय जनता का विद्रोही स्वर मुखरित है। वह एक प्रबल धारा है जो समस्त सामाजिक अवरोधों को हटाकर धूपजल की उपेक्षा करती हुई जनसामान्य के चित को सींचती हुई प्रवाहित हुई है। कबीर की भाशा उसके व्यक्तित्व से अभिन्न है। जैसे उसका व्यक्तित्व निराला और क्रान्तिकारी है उसी प्रकार उनकी भाशा का स्वरूप भी निराला व क्रान्तिकारी है। उनकी साधना की दृश्टि से ही उन्हे एक सत्य दृश्टा कवि के रूप में प्रतिश्ठित कर दिया था–

"कागद लिखे सो कागदी, की व्यवहारी जीव,
आतम दृश्टि कहा लिखे, जित देखे तित पीव।"

कबीर की भाशा में ग्रामीण बोलचाल के भाब्दों की प्रधानता है। किन्तु जहाँ तक उनकी भाव–बटन की क्षमता का प्र न है डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के ये उद्‌गार उचित ही हैं– "भाशा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होने जिस रूप में प्रकट करना चाहा उसे उसी रूप में कहलवा लिया है– बन गया है तो सीधे–सीधे नही तो दरेरा देकर। भाशा कबीर के सामने लाचार–सी नजर आती है। इसमें इतनी हिम्मत नही कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमाइ ा को ना कर सके और अकथ कहानी को रूप देकर मनोग्राही बना देने जैसी ताकत कबीर की भाशा में है वैसी बहुत कम लेखकों में पाई जाती है।"

इस प्रकार निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि कबीर की भाशा तद्‌भव बहुल, पूर्ण सरल, बोधगम्य और मनोहारी है। जिसमें भावों की तरल और प्रभावी अभिव्यक्ति होती है।

5.

कबीरदास की काव्यकला

कबीर मध्यकाल के बहुत बड़े विचारक और समाज सुधारक कवि थे साहित्य के इतिहासकारों और आलोचकों ने उनके काव्य का मूल्यांकन करते हुए इस तथ्य का प्रतिपादन किया है। कबीर को ऐतिहासिक संदर्भ से वि लेशित करें तो वे तत्कालीन परिस्थितियों से प्रतिबद्ध दिखाई देते हैं। उनकी यह प्रतिबद्धता उस समय की जागरुकता से जुड़ी हुई थी। उन्हें इसी दृश्टि से समाज सुधारक की संज्ञा भी दी जाती है। यह भी सच है कि भक्ति आंदोलन समाज सुधार का आंदोलन था और समस्त संत कवि समाज सुधारक थे। वे समाज के विभिन्न ि ाथिल परम्पराओं, रूढ़ियों और जाति–पाँति को समाप्त कर स्वस्थ समाज की रचना करना चाहते थे। उनके काव्य में सरल, सहज और व्यावहारिक जीवन जीते हुए मानवता वाद की प्रेरणा ली गई है। इसी कल्पना में कबीरदास कहीं–कहीं पर क्रांतिकारी रूप में सामने आते हैं।

उनका अक्खड़पन और उनकी गम्भीर साधना अड़िग रहकर आद   ा समाज का वरण करना चाहती थी उनके मन में मानव मूल्यों के प्रति अगाध श्रद्धाभाव था इसलिए वे धर्म, जाति, सम्प्रदाय आदि कि बुराइयों को उखाड़ फेकने के लिए दृढ़ संकल्प होकर आगे बढ़ रहे थे, उन्होंने स्पश्ट रूप से कहा है–

कबिरा खड़ा बजार में लिये लुकाठा हाथ।
जो घर फूँकें आपुनो चले हमारे साथ।।

उन्होंने मानव परिवार की स्थापना के लिए निर्गुण ब्रह्म की उपासना का मार्ग खोला था उन्होंने कहा है–

द   ारथ सुत तिहुँ लोक बखाना।
राम नाम का मर्म है आना।।

fuxZ.k jke

अन्य निर्गुण संत–कवियों की तरह कबीर दास भी एक ई   वर में वि   वास करते थे। उनका ई   वर सर्वव्यापी और निराकार है। वह अजर, अमर, अलख और अगम्य है। वह तर्क का विशय नहीं है तथा उसे केवल अनुभव किया जा सकता है। तथा उस अनुभूति को व्यक्त नहीं किया जा सकता। उसे प्राप्त करने के लिए मंदिर अथवा मस्जिद जाने की आव   यकता नहीं। अपने हृदय में ही भगवान् के द   ान हो सकते हैं।

तेरा साईं तुज्झ में, ज्यों पुह्प में वास।
कस्तूरी का मिरग ज्यों, फिर–फिर ढूंढे घास।

कबीर के अनुसार भक्ति का द्वार सभी के लिए खुला है। छूआ–छात की भावना को वे स्वीकार नहीं करते थे–

जात–पात पूछे नहिं कोई,
हरि को भजे सो हरि का होई।

वे अन्यत्र भी कहते हैं–

अक्षय पुरूश एक पेड़ है निरंजन बाकी डार।
त्रिदेव साखा भए पात भया संसार।।

x#&efgek

कबीरदास ने अपनी साधना पद्धति में गुरु को अत्यधिक महत्व दिया है। ज्ञान और प्रभु प्राप्ति के लिए वे गुरु की महत्ता को स्वीकार करते है। गुरु कृपा से ही माया का बंधन कट सकता है। पर वे सच्चे गुरु को ही महत्व देते हैं–

सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत उधाड़्या, अनंत दिखावन हार।।

इनका विचार है कि गुरु कृपा के बिना ई वर को पाना असम्भव है। इसीलिए वे गुरु को ई वर से भी ऊंचा स्थान देते हैं।

गुरु गोबिंद दोऊ खड़े, को लागू पाय।
बलिदारी गुरु आपने, जिन गोबिंद दियो बताय।।

uke&efgek

उस निर्गुण, निराकार ई वर को पाने के लिए कबीर दास नाम स्मरण पर अत्याधिक बल देते है। इसी को ई वरीय प्रेम भी कहा जा सकता है। प्रेम के बिना जीवन सारहीन है। ई वर का प्रेम नाम स्मरण से आ सकता है। जो लोग नाम–स्मरण नहीं करते वे ई वर–भक्ति से वंचित रह जाते है। इसीलिए तो कबीर दास ने कहा है–

पोथी पढ़–पढ़ जग मुआ पण्डित भया न कोय।
ढाई अच्क्षर प्रेम का, पढ़ै सो पण्डित होय।।

cgnookn vkj vorkjokn&fojk/k

कबीरदास ने बहुदेववाद और अवतारवाद का भी विरोध किया है। यह समय की मांग भी थी। तत्कालीन मुगल भाासन भी तो एके वरवादी थे। अतः कबीर दास ने भी अनेक देवी–देवताओं की पूजा–पद्धति का खण्डन किया। वे मूर्तिपूजा के भी विरोधी थे। फिर भी कबीर ने अपनी साखियों में यत्र–तत्र राम, के ाव, और गोविंद आदि भाब्दों का प्रयोग ई वर के लिए ही किया है।

vkMEcj vkSj tkfr&ikfr dk fojks/k

नि चय से कबीरदास एक क्रान्तिकारी कवि थे। नाथ पथियों की भाँति उन्होंने भी रूढ़ियों, आडम्बरों और अंधवि वासों का डट कर विरोध किया। उन्होंने हिंसा–वृति की आलोचना की और कहा–

बकरी पाती खाति है, ताकि काढ़ी खाल।
जे जन बकरी खात है तिनको कौन हवाल।।

इसी प्रकार से कबीरदास ने जाति–पाति का भी विरोध किया। वर्ग भेद के विरूद्ध आवाज उठाई तथा मानव धर्म की प्रतिश्ठा के लिए जोर दिया। उन्होंने कहा कि भगवान् की भक्ति में सबका समान अधिकार है–

"जात–पात पूछे नहीं कोई, हरि का भजे सो हरि का होई।"

उन्होंने हिन्दू–मुस्लिम तथा स्वर्ण–अवर्ण के भेदभाव को दूर करने का पूरा प्रयत्न किया–

"अरे उन दोऊन राह न पाई।
हिन्दुन की हिन्दुआई देखी, तुरकन की तुकराई।"

दूसरी ओर उन्होंने दंभी ब्राह्मणों का भी विरोध किया

"तू बामन हों का ी का जुलाहा चीन्हा न मोर गिआना।"

mnck/ku

संत कवियों ने मनुश्यों की माया में सावधान रहने का उपदे ा दिया है। उनके अनुसार माया ई वर–भक्ति के मार्ग में बाधक है।

"रमैया की दुलहिन नें लूटा बाज़ार।
सुरपुर लूटा रामपुर लूटी तीनहु लोक मचा हाहाकार।"

ब्रह्मा, विश्णु और महे ा भी माया के चक्कर में पड़े हैं। क्योंकि–

"माया महा ठगिनी हम जानी।
तिरगुन फांस लिए कर डोले बौले मधुरी बानी।"

कबीर ने माया के विशय में कहा है–

"कबीर माया मोहिनी, मोहे जांण–सुजांण।
भागा ही छूटे नहीं, भरि–भरि मारै बाण।।"

l{eHkko dh lj y vfHk0;fDr

कबीर आदि कवियों ने मुख्यतः आलौकिक प्रेम की अभिव्यजंना की है, जिसे रहस्यवाद कहा गया है। संतो के रहस्यवाद पर भांकर के अद्वैतवाद का प्रभाव है–

"जल में कुंभ–कुंभ में जल है, भीतर बाहर पानी।
फूटा कुंभ जल जलदिं समाना, यह तथ कहेउ गिआनी।।"

संत कवियों के रहस्वाद पर जहां एक ओर भांकर के अद्वैतवाद का प्रभाव है।, वहां दूसरी ओर सूफी कवियों की प्रेम–साधना तथा सिद्धों और नाथों की योग साधना का प्रभाव है।

"आइ न सक्कों तुज्झ पै, सकूं न तुज्झे बुलाय।
जियरा यों ही तेहुगे, विरह तपाय तपाय।।"

इनके इड़ा, पिगला और सहस्त्रदल कमल आदि प्रतीकों से योगात्मक रहस्वाद भी मिलता है। संत कवियों के काव्य में आत्मा और परमात्मा को बड़े ही सरल रूप में प्रस्तुत किया है–

"नैनन की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाय।
पलकन की चिक डारि कै पिय को लिया रिझाय।।"

ukjh&Hkkouk

कबीरदास ने नारी को माया का प्रतीक माना है।

"इक कनक इक कामिनी, दुर्गम घाटी दोय।"

एक और उन्होंने व्यभिचारिणी नारी की निंदा की और उससे बचने के लिए संकेत दिए है तथा दूसरी और उन्होंने सती और पवित्रता नारी की मुक्त कण्ठ से प्र ंसा की है।

"पतिव्रता मैली भली, काली कुटिल कुरूप।
पतिव्रता के रूप पै, बारौ कोटि सरूप।।"

Hkk"kk 'kSyh

कबीर ने बिना किसी लाग–लपेट और बनावट के समाज की अनुभूतियों को सरल और स्पश्ट ढंग से व्यक्त किया है। कवि ने कविता के बाहरी रूप–छंद, अंलकार आदि पर वि ोश ध्यान नहीं दिया, किंतु उनकी कविता का आंतरिक रस बहुत उज्जवल है उनका सम्पूर्ण काव्य मुक्त भौली मे लिखा गया है, दोहा और गेय पदों का प्रयोग उन्होंने अधिक दिया है, रूपक, उपमा, उत्पेक्षा आदि अलंकारों के प्रयोग सुंदर बन पड़े है।

कबीर की भाशा सधुक्कड़ी है, जिसमें अवधी, राजस्थानी, पंजाबी आदि कई भाशाओं का मिश्रण है, भाशा पर उनका पूरा अधिकार है। इसीलिए उन्हें भाशा का 'डिक्टेटर' कहा गया है। उनकी भाशा में वह भाक्ति है जो हृदय पर सीधे चोट करती है।

कबीरदास जन कवि थे। अतः उनकी भाशा भी जनभाशा है उन्होंने अपनी भाशा को साहित्यिक बनाने का प्रयास नहीं किया। पर उनके काव्य में अंलकारों की योजना स्वतः हो गई है, उपमा, रूपक, अन्योक्ति, भलेश, यमक, रूपकान्ति भायोक्ति आदि अलंकारों का उन्होंने स्वाभाविक प्रयोग किया है। कबीरदास के काव्य में साखी और सबद पदों का वाचक है। कबीर ने रमैनी का भी प्रयोग किया है इनकी उलट वासियां भी काफी प्रसिद्ध हैं।

6.

व्याख्या

X#

"सतगुरु सम ……   …   …   … जात ।।1।।"

शब्दार्थः सतगुरु – सच्चा गुरु; दात – दानी, देने वाला; को – कोई; हरिजन – भगवान का भक्त; सम – समान; हरि – ई वर; हितू – भला चाहने वाला; जात – जाति।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत साखी भक्तिकाल के प्रमुख संत कबीरदास द्वारा रचित 'गुरु' भीर्शक से ली गई है। इसमें गुरु का गुणगान किया गया है। संसार में साधु सबसे महिमा मंडित है। गुरु कृपा से ि ाश्य को सन्मार्ग मिल जाता है।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि संसार में सतगुरु के समान भलाई करने वाला अन्य कोई सगा व्यक्ति नहीं है और उदारता के साथ दूसरों की भलाई करने वाले साधु के समान कोई अन्य दानी नहीं है। प्रत्येक प्राणियों की पल–पल रक्षा करने वाले ई वर के समान कोई अन्य हितैशी नहीं है और हरिजन (ई वर–भक्त) के समान मानवतावादी भाव रखने वाली कोई जाति नहीं है।

विशेषः

1. गुरु महिमा–गान किया गया है।
2. सतगुरु, सम और सगा, साधु सम में अनुप्रास अलंकार है।
3. पूरे दोहे में उपमा अलंकार है।
4. दोहा छंद का सुन्दर प्रयोग है।
5. सरल और बोधगम्य भाशा है।

"सतगुरु की महिमा … …   …   …   … दिखावनहार ।।2।।"

शब्दार्थः अनँत – अत्यन्त, अवर्णनीय, अलौकिक; लोचन – आँख; उधारिया – खोल दिया; दिखानहार – दिखाने वाला।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ 'काव्य–ि ाखर' में संकलित 'कबीर' भीर्शक के अन्तर्गत दी, कबीरदास द्वारा रचित साखियों से ली गई है। इस साखी में गुरु की महिमा का गुणगान किया है। गुरु ही सच्चे मार्ग ले जाने वाला महान पथ–प्रद िक है।

व्याख्याः कबीरदास का कहना है कि सतगुरु में इतनी वि ोशताएँ हैं कि उनका वर्णन असंभव है। वह अपने भक्तों का लगातार उपकार करता रहता है। उसकी कृपा होने से अन्तः चक्षु खुल जाते हैं और

सत्य–असत्य की पहचान ही नहीं पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है। उसकी ही कृपा से मनुश्य को अपना लक्ष्य मिलता है और ई वर का द न भी संभव हो जाता है।

विशेषः

1. गुरु की महिमा का गान है।
2. 'अनंत' में कई अर्थ निकलने से भलेश अलंकार है।
3. सरल तद्भव भाब्दावली का सुन्दर प्रयोग है।
4. दोहा छंद का अनुकूल प्रयोग है।
5. उत्तम लयात्मकता है।

"सब करती ... ... न जाय ।।3।।"

शब्दार्थः धरती – पृथ्वी; बनराम – जंगल; गुन – गुण; कागद – कागज; समुँद्र – समुद्र; लेखनि – कलम; मसि – स्थाही।

संदर्भ – प्रसंगः 'पूर्व साखी के अनुसार'

व्याख्याः कबीरदास कहते है कि सतगुरु की महिमा का वर्णन कर पाना असंभव है। उसकी महिमा लिखने के लिए यदि सारी धरती को कागज के रूप में प्रयोग करें, जंगल की सारी लकड़ी और पेड़–पौधों को कलम बना लें, और सातों समुद्र को स्याही के रूप में प्रयोग कर लें तब भी संभव नहीं होगा। नि चय ही गुरु की महिमा अनंत है।

विशेषः

1. सतगुरु की अनंत महिमा का वर्णन है।
2. सात समुँद्र और गुरु गुण में अनुप्रास अलंकार है।
3. दोहा छंद का सुन्दर प्रयोग।
4. सरल भाशा का मोहक प्रयोग।
5. अनुकूल गेयता है।

"गुरु कुम्हार ... ... बाहै चोट ।।4।।"

शब्दार्थः कुम्हार – कुंभकार; काढ़ै – निकालता है; सहार – सहारा; सिश – ि ाश्य; खोट – दोश, कूड़ा; बाहै – लगाता है; कुंभ – घड़ा; अंतर – अन्दर।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी 'काव्य–ि ाखर' के संत 'कबीरदास' के 'गुरु' भीर्शक से ली गई है। इसमें गुरु के द्वारा ि ाश्य के निर्माण और उसे दिशा देने की संदर्भ को रेखांकित किया गया है।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि गुरु कुम्हार है और शिष्य मिट्टी के कच्चे घड़े के समान है। कुम्हार किस प्रकार घड़ा बनाते समय पहले मिट्टी को अनुकूल बनाने के लिए उसमें से घास आदि के तिनके को निकालता है। उसी प्रकार गुरु पूरे प्रयत्न से ि ाश्य की कमियों को दूर करता है। कुम्हार जिस

प्रकार घड़ा बनाते समय एक हाथ घड़े के अन्दर रख कर उसे सहारा देता है दूसरे हाथ से बाहर–बाहर चोट देकर वि ोश रूप प्रदान करता है।

गुरु इसी प्रकार ि ाश्य को नियमित, व्यवस्थित और परिश्रमी बनाने के लिए एक ओर चमकाता है, तो दूसरी ओर मानसिक रूप से पक्का करने के लिए प्रोत्साहित करता रहता है।

विशेषः

1. गुरु–ि ाश्य के परम उपयोग संबंध की चर्चा है।
2. गुरु के कठोर और प्रेरक व्यक्तित्त्व की चर्चा है।
3. गढ़ि–गढ़ि में पुनरूक्ति प्रका ा अलंकार है।
4. बाहर–बाटॅ में अनुप्रास अलंकार है।
5. गुरु कुम्हार, ि ाश कुंभ में रूपक अलंकार है।
6. दोहा छन्द का उपयोग किया गया है।
7. सरल सुबोध सधुक्कड़ी भाशा है।

"कबीर ने ... ... नहिं ठौर ।।5।।"

शब्दार्थः ते – वे; अंध – मूर्ख; रूठे – नाराज होने; ठौर – स्थान।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी 'काव्य–ि ाखर' के संत 'कबीरदास' के 'गुरु' भीर्शक से उद्धत है। इसमें गुरु को सबसे प्रमुख आधार बनाया गया है। जीवन में सफलता के लिए गुरु–कृपा अनिवार्य है।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि वे लोक अज्ञानी हैं, जो गुरु की आलोचना करते हुए उनके दिखाए मार्ग पर नहीं चलते हैं। सच तो यह है गुरु ही हमारा पथ–प्रद ाक है। यदि भगवान हमसे नाराज हो जाए तो गुरु की भारण में होने से वह हमारी रक्षा करता है। हमें हमारा मार्ग बता देता है, किन्तु यदि गुरु ही नाराज हो जाएगा, तो हमारा मार्ग हमसे खो जाएगा। ऐसे में हम नीसहारा हो जांएगे।

विशेषः

1. गुरु की महिमा का गान है।
2. गुरु को मनुश्य का परम आधार कहा गया है।
3. सरल भाब्दों का प्रयोग है।
4. स्पश्ट भावाभिव्यक्ति है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग है।

"जा का गुरु .... कूप परंत ।।6।।"

शब्दार्थः जा का – जिसका; आँधरा – भाानहीन; निपर – पूरी तरह; निरंध – अंधा, मूर्ख; ढेलिमा – धक्का देना; परंत – गिरते हैं।

संदर्भ – प्रसंगः यह साखी 'काव्य–ि ाखर' पुस्तक के संत 'कबीरदास' के 'गुरु' भाीर्शक से ली गई है। इसमें अज्ञानी गुरुओं के विशय में चर्चा की गई है। सतगुरु यदि मनुश्य का मार्ग–द िन कराता है, तो अज्ञानी गुरु असफलता का कारण बन जाता है।

व्याख्याः कबीरदास कहते है जिसका गुरु अज्ञानी हो। वह मान दिखावे में ही वि वास करता है। और संयोग से उसका ि ाश्य भी पूरा अज्ञानी हो। ऐसे में ि ाश्य अपने गुरु का अंध भक्त हो, तो नि िचत है दोनों अंधकार में रहकर एक दूसरे को गर्त या कुएँ में धकेल लेंगे। उन दोनों को असफलता और मुसीबत ही मिलेगी।

विशेषः

1. ढोगी गुरु की पहचान कराई गई है।
2. अज्ञानी गुरु से असफलता ही मिलती है।
3. अंधे अंधा में अनुप्रास अलंकार है।
4. सधुक्कड़ी भाशा का बोधगम्य रूप है।
5. दोहा–छन्द।

"झूठे गुरु ... ... मरके बारंबार ।।7।।"

शब्दार्थः पच्छ – साथ; तजत – छोड़ते हुए; बार – विलम्ब; सबद – ज्ञान; बारंबार –लगातार।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी 'काव्य–ि ाखर' के सन्त 'कबीरदास' के 'गुरु' भाीर्शक से ली गई है। इसमें सतगुरु की परोक्ष रूप में बड़ाई करते हुए अज्ञानी गुरु से बचने की चर्चा की गई है।

व्याख्याः कबीरदास ने जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए अज्ञानी गुरु का साथ यथा ीघ्र छोड़ देने के लिए संकेत किया है। उन्होंने स्पश्ट किया है कि ऐसे गुरु के साथ रहने से ज्ञान प्राप्त होना असंभव है और लगातार अंधकार के मार्ग में भटकना भी पड़ेगा। इसलिए अज्ञानी गुरु का साथ छोड़कर सतगुरु का साथ करना चाहिए।

विशेषः

1. अज्ञानी गुरु की निम्नता का बोध कराया गया है।
2. खण्डनात्मक तथ्य का उद्घाटन किया है।
3. सरल और बोधगम्य भाशा का प्रयोग है।
4. अनुकूल गेयता है।
5. दोहा छंद का उपयोग है।

Lej.k

"दुख में ... ... को होय ।।8।।"

शब्दार्थः सुमिरन – याद करना, भजन करना; कोय – कोई; काहे – क्यों।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी 'काव्य–ि ाखर' पुस्तक के संत 'कबीरदास' के 'स्मरण' भीर्शक से ली गई है। इसमें ई वर की भक्ति और उससे दूर होने वाले सांसारिक सँकटों के साथ मिलने वाली भाक्ति और मुक्ति की चर्चा की गई है–

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि संसार के रचयिता ई वर की याद प्रत्येक व्यक्ति दुःख के समय में अव य करता है, किन्तु सुख के आने पर ऐसे खो जाता है कि उसे याद ही नहीं करता। यदि मनुश्य सुख मे भी ई वर को याद करें तो नि चय ही उसे दुःख से मुक्ति मिल जाएगी। अर्थात् संतों का कहना है कि विधाता को सतत याद करने से जीवन मे सफलता मिलती है।

विशेषः

1. ई ा–भजन की महिमा का वर्णन है।
2. सुमिरन की भाक्ति का संकेत किया गया है।
3. 'सुमिरन' सब में अनुप्रास अलंकार है।
4. मानव को उद्बोधन किया गया है।
5. अनुकूल गेयता है।
6. दोहा छंद का उपयोग किया गया है।

"सुमिरन की ... ... कबीर विचार ।।9।।"

शब्दार्थः सुमिरन – याद करना; यों – ऐसे; गागर – घड़ा; पनिहार – पानी भरने वाली।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी 'काव्य–ि ाखर' पुस्तक के संत 'कबीरदास' के 'स्मरण' भीर्शक से ली गई है। इसमें एकाग्र मन से ई वर के याद करने की उपयोगी पद्धति को व्यावहारिक रूप में समझाने का प्रयत्न किया गया है।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि मनुश्य को ई ा–भजन और स्मरण एकाग्र मन से करना चाहिए। जिस प्रकार पनिहारी घड़े में पानी भर कर चलते समय हिलती डुलती तो रही है किन्तु उसका मन पानी में लगा रहता है कि उसके घड़े से एक बूंद पानी न निकलन पाये। इसी प्रकार मनुश्य को एकाग्र मन से ई वर का ध्यान करने से संकटों से मुक्ति मिलती है।

विशेषः

1. तन्मय होकर ई वर स्मरण का लाभ बताया गया है।
2. उदाहरण पुश्ट व्यावहारिक कथन है।
3. सुन्दर ध्वन्यात्मक स्वरूप है।
4. सरल, सुगम भाशा का प्रयोग है।
5. दोहा–छन्द का प्रयोग।

"माना तो ... ... नाहिं ।।10।।"

शब्दार्थः कर – हाथ; मांहि – में; मनुवाँ – मन; चहुँ – चारौ ओर; दिि ा – दि ाा।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत साखी 'काव्य–ि ाखर' पुस्तक के संत कबीरदास के 'स्मरण' भीर्शक से ली गई है। इसमें ई वर–स्मरण की विपरीत पद्धति का खण्डन करके समाज को अनुकूल पद्धति अपनाने की ि ाक्षा दी गई है।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि दिखावे का भजन या स्मरण उचित नहीं है। देखा जाता है कि लोग भगवान का स्मरण हाथ में माला लिए उसकी कड़ियां घुमाते रहते हैं और जीभ से 'राम–राम' बोलते रहते है, किन्तु उनका मन संसार के विभिन्न संदर्भों में उलझा रहता है। इसे ई वर स्मरण नहीं कहा जा सकता है। ई वर स्मरण और भजन के लिए मन की एकाग्रता अनिवार्य है।

विशेषः

1. स्मरण की दिखावा पद्धति का खण्डन है।
2. भक्ति के अनुकूल मार्ग पर चलने के लिए उद्बोधन है।
3. तद्भव भाब्दों के साथ तत्सम भाब्दों का सुन्दर योग है।
4. गेयता और लयात्मकता का सुन्दर स्वरूप है।
5. दोहा–छंद की योजना।

"जन तप ... ... कछु नाहिं ।।11।।"

शब्दार्थः संजम –संयम; सम – समान; कछु – कुछ और।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी 'काव्य–ि ाखर' पुस्तक के संत कबीरदास के 'स्मरण' भीर्शक से ली गई है। इसमें ई वर, ध्यान और स्मरण पद्धति का स्पश्ट उल्लेख किया गया है। ई ा–स्मरण को मानव–जीवन की सर्वश्रेश्ठ उपलब्धि के रूप में स्वीकार किया है।

व्याख्याः कबीर कहते हैं कि एकाग्र मन से ई वर का स्मरण करने से जाप, लगातार तपस्या करने, मन, मस्तिश्क को संयत्रित करके साधनारत रहने का लाभ स्वतः मिल जाता है। इस तथ्य को ई वर का असाधक भक्त समझता है। उसे यह भी पता होता है कि संसार में ई ा–स्मरण से बड़ा लाभ देने वाला कोई आधा नही है।

विशेषः

1. ई ा–स्मरण की महत्ता का प्रतिपादन है।
2. भक्ति में ई वर–स्मरण का महत्व द ााया गया है।
3. 'संजम, साधना, सब, सुमिरन' में वृत्य अनुप्रास अलंकार है।
4. 'सुमिरन सम' में छेका अनुप्रास अलंकार है।
5. सरल, सुबोध भाशा है।

6. दोहा छंद का प्रयोग।

"कबीर निर्भय ... ... दिन एति ।।12।।"

शब्दार्थः जपु – जाप करो; जबलगि – जब तक; दीवा – दीपक, भारीर; बाति – बत्ती, प्राण; तेल – तैल, ई वर–प्रेम।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी 'काव्य–ि ाखर' पाठ्य–पुस्तक के संत 'कबीरदास' के 'स्मरण' भीर्शक से ली गई है। इसमें क्षणभंगुर भारीर की न वरता की ओर संकेत करते हुए दुर्लभ मानव जीवन के मिले हुए क्षणों में भगवान को याद करने का संकेत किया गया है।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि मनुश्य को ई वर की भक्ति निर्भय होकर करनी चाहिए। वह ही संसार का रचयिता और पालनकर्ता है। मनुश्य को यह दुर्लभ भारीर मिला है। जब तक प्राण है तब तक अच्छे गुणों को पाने के लिए भगवान का नाम लेते रहना चाहिए। यह नि चत है कि एक न एक दिन काल के गाल में समा जाना है। जब ई वर के प्रेम रूपी तेल घट जाएगा तो एक दिन सदा–सदा के लिए सो जाना पड़ेगा। अतः जब तक भारीर में प्राण है, ई वर का नाम लेना चाहिए।

विशेषः

1. दुर्लभ मानव भारीर की चर्चा की गई है।
2. मनुश्य जन्म लेकर श्रेश्ठ कार्य राम नाम लेने की प्रेरणा दी गई हो।
3. तद्भव भाब्दों के साथ तत्सम भाब्दों का सुन्दर योग है।
4. 'बाती बुझी' में अनुप्रास अलंकार है।
5. दोहा छंद का प्रयोग।

p:rkouh

"कबीर गर्ब ... ... क्या परदेश ।।13।।"

शब्दार्थः गर्व – घमण्ड; काल – मौत; गहे – जोरदार पकड़; केस – बाल; कित – कहाँ; मारिहै – मारेगी।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी पाठ्यक्रम में संस्तुत पुस्तक 'काव्य ि ाखर' के 'कबीरदास' के 'चेतावनी' भीर्शक से ली गई है। इसमें मनुश्य को सहजता और व्यावहारिकता छोड़कर घमण्ड न करने के लिए स्पश्ट भाब्दों में सावधान किया गया है।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि मनुश्य को किसी भी समय घमण्ड नहीं करना चाहिए। हमें यह सोच लेना चाहिए कि हमें क्षणभंगुर भारीर मिला है। मौत हमारा बाल पकड़े खड़ी हुई है। वह कब हमें उठा लेगी, कुछ पता नहीं है। मौत कब और कहाँ हमें बुला लेगी, कुछ नहीं कहा जा सकता है। इसलिए हमें घमण्ड छोड़कर सहज जिंदगी जीना चाहिए।

विशेषः

1. घमण्ड छोड़ कर सहज जीवन जीने का उद्बोधन है।
2. मौत से डर कर अच्छे कार्य करने की प्रेरणा है।
3. समाजोपयोगी चेतावनी है।
4. मन को भाक्ति देने वाला उत्तम भाव है।
5. 'कीजिए, काल और कर', केस में अनुप्रास अलंकार है।
6. दोहा छन्द का प्रयोग।

"झूठे सुख ... ... कुछ मोद ।।14।।"

शब्दार्थः मोद – खु ी; चबेना – स्वाद लेते हुए चबा–चबा कर खाने वाला खाद्य पदार्थ; काल – मौत।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी पाठ्य पुस्तक 'काव्य–ि ाखर' के कवि कबीरदास के 'चेतावनी' भाीर्शक से ली गई है। इसमें मनुश्य के क्षणभंगुर भारीर की चर्चा करते हुए सच्चे सुख की पहचान का आह्वान किया गया है।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि संसार बहुत विचित्र है। इसे सच्चे सुख की पहचान ही नहीं है। वह सांसारिक, अपने झूठे सुख को सुख मान कर मन ही मन प्रसन्न होता रहता है। जब यह अटल सत्य है कि मोत कुछ लोगों को कालकवलिन कर चुकी है और कुछ को अपनी गोदी में ले चुकी है। इस प्रकार सब की मौत नि ि चत है।

विशेषः

1. सांसारिक लोगों के भ्रम का चित्रण।
2. क्षणभंगुरता का ज्ञान कराया गया है।
3. 'मन, मोद' में अनुप्रास अलंकार है।
4. सूक्ष्म भाव की अभिव्यक्ति है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग है।

"पानी केरा ... ... तारा पर भाति ।।15।।"

शब्दार्थः बुदबुदा – बुलबुला; मानुस – मनुश्य; ज्यों – जैसे; परभात – सबेरा।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी पाठ्य पुस्तक 'काव्य–ि ाखर' के निर्धारित कवि कबीरदास के 'चेतावनी' भाीर्शक से ली गई है। इसमें मनुश्य की क्षण भंगुरता का बोध कराया गया है।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि मनुश्य को यह स्पश्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि उसका भारीर उसी प्रकार क्षण भंगुर है जिस प्रकार पानी का बुलबुला। पानी का बुलबुला एक पल दिखाई देता है

अगले पल गायब हो जाता है। अथवा जैसे तारे रात में दिखाई देते हैं और सवेरा होते ही गायब हो जाते है।

विशेषः

1. मनुश्य के न वर भारीर का ज्ञान कराया गया है।
2. सरल, सुबोध भाशा का प्रयोग है।
3. उद्बोधन भौली का प्रयोग है।
4. प्रसाद और माधुर्य गुण सम्पन्न भौली है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"माटी कहे ... ... खँदूँगी लोहि ।।16।।"

शब्दार्थः माटी – मिट्टी; रौंदे – रौंदना; मौहि – मुझे; इक – एक; तोहिं – तुम्हें।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी पाठ्य पुस्तक 'काव्य–ि ाखर' के कवि 'कबीरदास' के 'चेतावनी' से ली गई है। इसमें मानव की न वरता का वर्णन किया गया है, तो साथ ही मिट्टी की महत्ता की दिखाई गई है।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि मनुश्य को सहज जीवन जीना चाहिए और किसी को कश्ट नहीं देना चाहिए। इसे स्पश्ट करने के लिए लिखा है कि मिट्टी जो घड़ा बनाने के लिए कुम्हार द्वारा बार–बार रौंदी जाती है, वह कहती है कि तुम मुझे क्यों रौंदते हो, एक दिन ऐसा आएगा, जब तुम मेरे द्वारा रौंदे जाओगे। अर्थात् मौत के बाद मिट्टी में ही मिलोगे।

"माली आवत .... हमारी बारि ।।17।।"

शब्दार्थः माली – बाटिका सेवक, मौत; कलियाँ – फूल की कली, जीवात्मा; फूली – खिली हुई, जीवन अवधि की पूर्णता; चुन – तोड़ लेना, मौत के द्वारा गोद में बैठाना।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी पाठ्य पुस्तक 'काव्य ि ाखर' के कवि 'कबीरदास' के 'चेतावनी' भीर्शक से ली गई है। इसमें मानव भारीर की न वरता का चित्रण करके मनुश्य को सचेत किया गया है।

व्याख्याः कबीरदास ने अन्योक्ति के माध्यम से गंभीर बात कहीं है। इसमें दो अर्थ निकलते हैं–

प्रथम अर्थः वाटिका के माली को आता देख कर फूल की कलियाँ यह देख कर आवाज करती हैं कि जो कलियाँ फूल बन गई हैं उन्हें यह तोड़ ले रहा है और कल हमें भी फूलने पर तोड़ लेगा।

दूसरा अर्थः जीवात्मक या मनुश्य जब देखता है कि जिसकी जीवन–अवधि समाप्त हो चुकी है उन्हें मौत उठा ले रही है, तो यह सोच कर वह दुःखी हो जाता है कि हमें भी जल्दी मौत बुला लेगी।

इसमें दूसरा अर्थ प्रधान है।

विशेषः

1. जीवन की न वरता का वर्णन है।
2. संसार के सरकते रहने का बोध होता है।
3. अन्योक्ति अलंकार है।
4. 'कलियाँ करैं' अनुप्रास अलंकार है।
5. 'फूली–फूली' में पुनरुक्ति प्रका ा अलंकार है।
6. सरल, बोधगम्य भाशा है।
7. दोहा छन्द का प्रयोग।

fojg

"बिरह भुवंगम ... ... त्यों खाव ।।18।।"

शब्दार्थः भुवंगम – सर्प; पैंठि – घुस, बैठ; कलेजे – हृदय में; भावै – अच्छा लगे।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी पाठ्य पुस्तक 'काव्य–ि ाखर' के कवि कबीरदास के 'विरह' भाीर्शक से ली गई है। इसमें ई वर से बिछुड़ जाने के प चात् जीवात्मा की द ाा का चित्रण किया गया है कि ऐसे में उसे सुख–चैन नहीं मिलता है।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि जब जीवात्मा का बिछोह परमात्मा से होता है, तो विरह हृदय में घुस कर लगातार घायल करता रहता है। ऐसे में भक्ति अपने अंगों को तनिक भी मोड़ता नहीं है और विरह मनचाहे रूप में भारीर को खाता रहता है।

विशेषः

1. बिरही की पीड़ा का मार्मिक चित्रण है।
2. 'कै, किया कलेजे' में अनुप्रास अलंकार है।
3. 'विरह–मुजंगम' में रूपक अलंकार है।
4. भाशा सरल और सहज है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग

"कै बिरहिनि .... न जाय ।।19।।"

शब्दार्थः कै – अथवा; मीच – मौत; आपा – अपना रूप; दाझना – जलना; मो पै – मुझ से।

संदर्भः – प्रसंगः पूर्ववत्।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि हे ई वर। या तो इस विरहणी को समाप्त कर दो, या अपना द र्न देकर दु:ख हरें। इस प्रकार विरह में लगातार सुबह से भााम तक और भााम से सबेरे तक मुझे सहा नहीं जा रहा है।

विशेषः

1. बिरही आत्मा का मार्मिक चित्रण है।
2. भाशा सरल तथा सहज है।
3. समर्पण का उत्तम भाव है।
4. तद्भव भाब्दावली का आकर्शक प्रयोग है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"विरह कमंडल ... ... दिन रैन ।।20।।"

शब्दार्थः विरह कमंडल – विरह रूपी कमंडल; कर – हाथ; वैरागी – वैराग्य धमण किया व्यक्ति; दरस – द र्न; मधूकरी – भीख; रैन – रात।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी पाठ्य पुस्तक 'काव्यमपुरी' के कवि 'कबीरदास' के 'विरह' भीर्शक से ली गई है। इसमें विरह अवस्था में अत्यन्त विह्वल जीवात्मा का चित्रण किया गया है।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं ई वर के द र्न का अभिलाशी भक्त विरह में दु:खी हो रहा है। वह विरह रूपी कमंडल हाथ में लेकर ई वर के द र्न रूपी भूख–मिटानी की भीख की याचना कर रहा है। इसी में दोनों आँखे छकी हुई हैं।

विशेषः

1. ई वर का द र्नाभिलाशी नैन।
2. ई वर के प्रति भक्त की अटल श्रद्धा है।
3. सधुक्कड़ी भाशा में तद्भव बहुला रूप।
4. आकर्शक गेयता विद्यमान है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"आय सकौ ... ... तपाय–तपाय ।।21।।"

शब्दार्थः आय – आना; तोंहि पै – तुम्हारे पास; तुज्झ – तुम्हें; जिमरा – प्राण; यों ही – इसी प्रकार; तपाय – तपाकर।

संदर्भ – प्रसंगः पूर्ववत्।

व्याख्याः कबीरदास लिखते हैं कि जीवात्मा दु:खी भाव से ई वर से कहती है कि मेरे लिए बहुत बड़ा संकट है न मैं तुम्हारे पास आ सकती हूँ और न ही तुम्हें अपने पास बुला सकती हूँ। इस प्रकार लगता है विरह में जला–जला कर तुम मेरे प्राण ले लोगे।

विशेषः

1. जीवात्मा की विरह–व्यथा का चित्रण है।
2. वियोग श्रृंगार रस का परिपाक है।
3. भाशा सरल और सुगम है।
4. सुन्दर लयात्मकता है।
5. दोहा छंद का अनुकूल प्रयोग।

"कबिरा चिनगी ... ... जरिया जाय ।।22।।"

शब्दार्थः चिनगी – चिनगारी; मो – मेरा; जरि – जलकर; जरी – जलगई; अंबर – आका ा; जरिया – जला।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत दोहा पाठ्य पुस्तक 'काव्य–ि ाखर' के 'कबीरदास' के 'विरह' भीर्शक से लिया गया है। इसमें ई ा–भक्त को ई वर का द र्ान नहीं हो पा रहा है, जिससे वह विरही हो गया है। उसके विरह के विस्तार का अत्यन्त मार्मिक वर्णन किया गया है।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि ई वर के विरह की चिनगारी भारीर पर पड़ कर उसे प्रभावित कर गई है। इस विरह में पहले भारीर जला और इस आग से धरती में आग लग गई है इसके प चात अब आका ा में भी आग लग गई है। अर्थात् इस विरह की आग अब चारों ओर फैल गई है।

विशेषः

1. विरह का मार्मिक चित्रण है।
2. सूक्ष्म भाव का आकर्शक चित्रण है।
3. सरल और बोधगम्य भाशा है।
4. आकर्शक लयात्मकता और गेयता है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"बिरहा–बिरहा ... ... मसान ।।23।।"

शब्दार्थः बिरहा – विरह; सुल्तान – राजा; घट – भारीर; संचरे – फैले; मसान – भम ाान।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी पाठ्य पुस्तक 'काव्य–ि ाखर' के कवि 'कबीरदास' के 'विरह' भीर्शक से ली गई है। इसमें ई वर की भक्ति में की जाने वाली साधना से उत्पन्न विरह की चर्चा की गई है।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि विरह को सामान्य या निरर्थक न समझो। ई वर के द ान के लिए होने वाली 'विरह' बहुत ही महत्वपूर्ण है। यह विरह ही मनुश्य को वह प्रतिश्ठा प्रदान करती है, जो राजा को मिलती है। जिस मनुश्य को ई वर की विरह नहीं सताती उसे मृत ही समझ लेना चाहिए। इस प्रकार मानव जीवन में ई वर के प्रति होने वाली विरह वि ोश महत्त्वपूर्ण है।

विशेषः

1. ई वर के संदर्भ की विरह की महत्ता बताई गई है।
2. यह विरह मानव–जीवन की पहचान है।
3. सुन्दर ध्वन्यात्मकता है।
4. सरल भाब्दावली का आकर्शक प्रयोग है।
5. सुन्दर लयात्मकता और गेयता है।
6. दोहा छन्द का प्रयोग।

"सब रंग ... ... के चित्त ।।24।।"

शब्दार्थः रंग – नसें; ताँत – चमड़े की तार; रबाब – सारंगी की भांति बना वाद्य–यंत्र; नित्त – प्रतिदिन; साईं – ई वर।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्य पुस्तक 'काव्य–ि ाखर' के कवि 'कबीरदास' के 'विरह' भाीर्शक से ली गई हैं। इसमें भक्त की विरही स्थिति का अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया गया है। भक्त विरही अवस्था में पूरी तरह भगवान में मस्त हो जाता है।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि भक्त जब ई वर की साधना करता हुआ विरह अवस्था प्राप्त करता है, तो उसके भारीर की हर नसें विरह में झंकृत हो उठती है जैसे रबाब वाद्य–यंत्र को बजाने पर उसके तार झनझना उठते हैं। इसकी ध्वनि केवल ई वर सुन पाता है, दूसरे को यह आवाज सुनाई नहीं देती है।

विशेषः

1. ई वर–विरह का सुन्दर चित्रण है।
2. मानवीकरण किया गया है।
3. 'बिरह बजावै' में अनुप्रास अलंकार है।
4. सरल और बोधगम्य भाशा का प्रयोग।
5. दोहा छन्द का प्रयोग।
6. सूक्ष्मभावों की सुन्दर अभिव्यक्ति है।
7. भक्ति भावना का आकर्शक रूप है।

çe

"यह तो घर ... ... घर माहि ।।25।।"

शब्दार्थः खाला – मामा का स्वच्छन्द घर; मुइँ – धरती; पैठ – प्रवे ा करे; माहिं – में/अन्दर।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी पाठ्यपुस्तक 'काव्य–ि ाखर' के कवि 'कबीरदास' के 'प्रेम' भीर्शक से ली गई है। इसमे ई ा–प्रेम की गंभीर चर्चा की गई है।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि प्रेम का मार्ग पूरी सहजता और समर्पण का भाव चाहता है। इसे मामा का नहीं समझना चाहिए जहाँ पूरी स्वच्छन्दता रहती है। प्रेम को पाने के लिए पहले घमण्ड छोड़ सहज बनने की आव यकता होती है।

विशेषः

1. ई ा–प्रेम पाने का रास्ता बताया गया है।
2. भक्ति–भावना का सुन्दर चित्रण है।
3. 'सीस उतारना' मुहावरे का प्रयोग किया गया है।
4. सरल और सहज भाशा का प्रयोग है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"प्रेम न बाड़ी .... लै जाय ।।26।।"

शब्दार्थः बाड़ी – बगीचा; उपजे – उत्पन्न होना; हाट – बाजार; परजा – प्रजा; कचै – अच्छा लगे।

संदर्भ – प्रसंगः पूर्ववत्।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि प्रेम मानव मन की सहज उत्पत्ति है। यह न तो बाग–बगीचे में उगता है और न ही बाजार में मिलता है। इसे पाने के लिए सहज मन और समर्पण का भाव होना चाहिए। राजा या प्रजा जो भी प्रेम प्राप्त करना चाहे उस समर्पण भाव से प्रेम मिल सकता है।

विशेषः

1. ई वर–प्रेम का गंभीर चित्रण है।
2. प्रेम सदा समर्पण भाव से मिलता है।
3. 'सीस देइ' मुहावरे का प्रयोग है।
4. सरल सुगम भाशा का प्रयोग है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"जा घर प्रेम .... बिन प्राण ।।27।।"

शब्दार्थः घट – भारीर; संचरै – संचरित होना; मसान – भमसान; खाल – खाल की बनी धौकनी; प्रान – प्राण।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी पाठ्यपुस्तक 'काव्य–ि ाखर' के कबीरदास के 'प्रेम' भीर्शक से ली गई है। इसमें जीवन की महत्ता ई वर–प्रेम पर आधारित बताई गई है।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि यदि मनुश्य ने ई वर से प्रेम नहीं किया तो उसका भारीर मृतक के ही समान निरर्थक है। वह उसी प्रकार निर्जीव होकर साँस लेता रहता है जैसे लोहार की धौंकनी मृत भारीर के चमड़े से बनी होने पर साँस लेती रहती है। इस प्रकार ई वर–प्रेम मनुश्य की पहचान है।

विशेषः

1. ई ा–प्रेम का महत्त्व बताया गया है।
2. जैसे 'खाल लुहार की साँस लेते बिन प्राण' में उपमा अलंकार है।
3. ई ा–भक्ति की आकर्शक भावना।
4. सरल भाब्दावली का प्रयोग है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"प्रेम छिपाया .... हैं रोय ।।28।।"

शब्दार्थः घट – भारीर; परघट – प्रकट; नैन – आँख; रोय –रोना।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी पाठ्यपुस्तक 'काव्य–ि ाखर' के 'कबीरदास' के 'प्रेम' भीर्शक से ली गई है। इसमें प्रेम के प्रभाव की गंभीरता को प्रकट किया गया है कि प्रेम स्वयं प्रकट हो जाता है।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि प्रेम को कितना भी छिपाने का प्रयत्न किया जाए, यह छिपता नहीं है। जिस मनुश्य के मन में प्रेम भाव उत्पन्न हो जाता है, वह मुंह से कहे या न कहे उसकी आँखें प्रकट कर देती हैं।

विशेषः

1. प्रेम के प्रबल प्रभाव का चित्रण है।
2. 'नैंन देत हैं रोय' मुहावरे का प्रयोग है।
3. तद्भव–सहज भाब्दावली का प्रयोग है।
4. मुक्तक भौली अपनाई गई है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"कबीर प्याली ... ... क्या खाय ।।29।।"

शब्दार्थः प्याला –कटोरा; अंतर – हृदय; रमि रहा – फैल गया; अमल – न ाा।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी पाठ्यपुस्तक 'काव्य–ि ाखर' के कबीरदास के 'प्रेम' भीर्शक से ली गई है। इसमें ई वर के प्रेम की महिमा का गान किया गया है।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि ई वर का भक्त जब भगवान के प्रेम रूपी प्याले को अपने हृदय में बैठा लेता है, तो वह ई वर में मस्त हो जाता है। उसके रोयें–रोयें में ई वर का भाव समाहित हो जाता है। ऐसे में उसे किसी अन्य न ाा की आव यकता नहीं होती है।

विशेषः

1. ई वर भक्ति की महिमा का गान है।
2. 'प्याला प्रेम', 'रमि रहा' में अनुप्रास अलंकार है।
3. 'रोम–रोम' में पुनरूक्ति प्रका ा अलंकार है।
4. मुक्तक काव्य का आकर्शक रूप।
5. सूक्ष्म भाव का स्पश्ट चित्रांकण है।
6. दोहा छन्द का प्रयोग।

l|lx&d|lx

"कबीर संगत ... ... पहा उपाधि ।।30।।"

शब्दार्थः संगत – संगति; साध – साधु; हरै – दूर करती है; व्याधि – कश्ट; असाधु – दुश्ट; आठों पहर – रात–दिन; उपाधि – समस्याएँ।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी पाठ्यपुस्तक 'काव्य–ि ाखर' के कबीरदास के 'सुसंग–कुसंग' भीर्शक से ली गई है। इसमें अच्छे लोगों और दुश्ट की संगति से होने वाले अच्छे और बुरे प्रभाव का चित्रण किया गया है।

व्याख्याः कबीरदास कहते है कि संगत का बहुत प्रभाव होता है। अच्छे लोगों की संगति से मानसिक कश्ट स्वयं ही समाप्त हो जाता है और मन प्रसन्न हो जाता है जबकि दुश्ट की संगति से रात–दिन मुसीबत ही मुसीबत घेरे रहती है।

विशेषः

1. सज्जन की संगति से प्रसन्नता प्राप्ति का वर्णन है।
2. दुर्जन के साथ से कश्ट ही मिलता है।
3. दोस्ती सोच–विचार कर करनी चाहिए।
4. सरल तथा बोधगम्य भाशा का प्रयोग है।
5. लयात्मकता और गेयता का आकर्शक रूप है।
6. दोहा छन्द का प्रयोग।

"कबीर संगत ... ... बास सुबास ।।31।।"

शब्दार्थः संगत – संगति; साध – साधु/सज्जन; गंधी – इम बेचने वाला; बास – साथ, निभरता; सुबास – सुगंध।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी पाठ्यपुस्तक 'काव्य–ि ाखर' के 'कबीरदास' के 'सुसंग–कुसंग' भीर्शक से ली गई है। इसमें संगति के सुखद और अनुकूल प्रभाव की चर्चा की गई है।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि सज्जनों का साथ सदा ही लाभकारी होता है। जिस प्रकार इम बेचने वालो का साथ लाभकारी होता है। उससे कुछ (इम) ले या न ले, किन्तु सुगन्ध का लाभ तो मिल ही जाता है। इसी प्रकार सज्जन के साथ से अच्छे गुण स्वयं आ जाते हैं।

विशेषः

1. सज्जन का साथ सदा लाभकारी होता है।
2. 'संगत साधु' में अनुप्रास अलंकार है।
3. सरल सुबोध भाशा का प्रयोग है।
4. प्रसाद और माधुर्य गुण सम्पन्न भौली का प्रयोग है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"मारी मरै ... ... संग निबेर ।।32।।"

शब्दार्थः ढिंग – पास; हाले – हिलता है; चीरई – फाड़ देता है; साकट – दुश्ट; निबेर – बचना या छोड़ना।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी पाठ्यपुस्तक 'काव्य–ि ाखर' के 'कबीरदास' के 'सुसंग–कुसंग' भीर्शक से ली गई है। इसमें कुसंगति के दुःप्रभाव का चित्रण किया है।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि दुश्ट की संगति सदा ही अहितकर और कश्टप्रद होती है। जिस प्रकार यदि केले के पास बेर का पेड़ हो, तो संकट केले पर आना नि चत है। केला तो मस्ती में झूमता है और बेर के काटे उसके पत्तों को फाड़ देते हैं। इस प्रकार हमें दुश्टों की संगति से बचना ही चाहिए।

विशेषः

1. कुसंगति से बचने का संकेत किया गया है।
2. 'मारी मरै' और 'साकट संग' में अनुप्रास अलंकार है।
3. तद्भव भाब्दावली सरल भाशा का प्रयोग है।
4. सुन्दर लयात्मकता है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"ऊँचे कुल ... ... निन्दा सोय ।।33।।"

शब्दार्थः जनमिया – जन्म लेना; करनी – काम; ऊंच – अच्छा; कनक – सोना; कलस – कल ा; सुरइ – भाराब; सोया – उसे।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी पाठ्यपुस्तक 'काव्य–ि ाखर' के 'कबीरदास' के 'सुसंग–कुसंग' से ली गई है। इसमें मनुश्य के कार्य को महत्व दिया गया है।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि ऊंचे कुल में जन्म लेने से बड़ाई नहीं मिलती, यदि उसके द्वारा अच्छे कार्य न किए जाए। यदि ऐसे कुल का व्यक्ति यदि निम्न काम करेगा तो उसी प्रकार निन्दा का पात्र बनेगा। जिस प्रकार सोने के कल ा में भाराब भर देने पर उस घड़े की निन्दा सज्जन करते हैं।

विशेषः

1. अच्छे कार्य के लिए प्रेरणा दी गई है।
2. निम्न कार्य से निन्दा मिलती है।
3. 'कुल कहा' और 'कनक, कलस' में अनुप्रास अलंकार का प्रयोग है।
4. सुन्दर लयात्मक रूप है।
5. संबोधनात्मक भौली का परोक्ष प्रयोग है।
6. दोहा छन्द का प्रयोग।

"बुद्धि बिहूना .... कहाँ समुझाय ।।34।।"

शब्दार्थः बिहूना – विहीन; गज – हाथी; फँद – बन्धन; जग – संसार; कहा – क्या।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी पाठ्यपुस्तक 'काव्य–ि ाखर' के 'कबीरदास' के 'सुसंग–कुसंग' से ली गई है। इसमें सोच–विचार कर कार्य करने से सफलता मिलने का संकेत किया गया है। इसके विपरीत अविवेक में संकट से घिरना पड़ता है।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि जिस प्रकार विवेकहीन होने के कारण बल ाली हाथी भी बंधन में पड़ जाता है। इसी प्रकार मनुश्य अविवेक के कारण विचारहीन होता है और सांसारिक मोह–माया के बंधन में बंध कर सन्मार्ग से भटक जाता है। इस प्रकार अविवेकी को समझा पाना कठिन है।

विशेषः

1. विवेक के आधार पर सफलता मिलती है।
2. अविवेक से जीवन संकट से घिर जाता है।
3. आकर्शक लयात्मकता और सुन्दर उकांत रूप है।
4. 'बुद्धि बिहूना' और 'कहा कहौं' में अनुप्रास अलंकार है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग।

?kV&?kV 0;kih

"कस्तूरी कुंडल ... ... जाने नाहिं ।।35।।"

शब्दार्थः कस्तूरी – वि ोश सुगंधित पदार्थ; कुंडल – नाभि; मृग – हिरण; माहिं – में; घट – भारीर; जीव – ई वर।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी पाठ्यपुस्तक 'काव्य–ि ाखर' के 'कबीरदास' के 'घट–घट व्यापी' भीर्शक से ली गई है। इसमें ई वर के सर्वव्यापी होने के भाव को प्रदर्ि ात किया गया है।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि जिस प्रकार मृग की नाभि में कस्तूरी रहती है। वह उसकी सुगंध पा कर उसकी खोज में वन में चारों ओर ढूंढ़ता फिरता है। उसी प्रकार कण–कण में विद्यमान ई वर प्रत्येक भारीर में वास करता है, किन्तु दुनिया माया–मोह के कारण इस तथ्य को समझ नहीं पाती है।

विशेषः

1. ई वर के सर्वव्यापी होने का भाव व्यक्त किया गया है।
2. संसार पर मोह–माया के जाल का वर्णन है।
3. सूक्ष्म भाव की सुन्दर अभिव्यक्ति है।
4. 'कस्तूरी कुंडल' में अनुप्रास अलंकार है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"तेरा साई ... ... ढूढ़ै घांस ।।36।।"

शब्दार्थः साई – ई वर; पुहुपन – पुश्प; बास – सुगंध; मिरग – मृग; फिर–फिर – घूम–घूमकर।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी 'काव्य–ि ाखर' के 'कबीरदास' के 'घट–घट व्यापी' भीर्शक से ली गई है। इसमें ई वर के सर्वत्र विद्यमान होने का भाव व्यक्त किया गया है।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि हे मानव तुझे समझ लेना चाहिए कि तुम्हारा ई वर तुझमें ही विद्यमान है जिस प्रकार पुश्प में उसकी सुगंध विद्यमान होती है। दुर्भाग्य है कि मनुश्य अपने ई वर को इधर–उधर उसी प्रकार ढूंढ़ता रहता है जैसे हिरण अपनी नाभि से महकने वाली कस्तूरी को जंगल की घास में इधर उधर ढूंढता फिरता है।

विशेषः

1. ई वर के सर्वव्यापी रूप की चर्चा है।
2. मनुश्य मायाव ा ई वर को इधर–उधर ढूंढता है।
3. 'फिरि–फिरि' में पुनरूक्ति प्रका ा अलंकार है।
4. सरल और बोधगम्य भाशा का प्रयोग है।

5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"ज्यों तिल ... ... तो जागि ।।37।।"

शब्दार्थः माहिं – में; चकमक – वि ोश प्रकार का पत्थर; आगि – अग्नि; साईं – ई वर; तुज्झ – तुम।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी पाठ्य–पुस्तक 'काव्य–ि ाखर' के 'कबीरदास' के 'घट–घट व्यापी' भीर्शक से ली गई है। इसमें सर्वव्यापी ई वर की चर्चा करते हुए भक्ति करने की प्रेरणा दी गई है।

व्याख्याः कबीरदास मनुश्य को उद्बोधित करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार तिल में तेल विद्यमान होता है और चकमक पत्थर में आगि विद्यमान होती है उसी प्रकार तुम्हारा स्वामी तुम्हारे हृदय में निवास करता है। अब तुम्हें अपने विवेक से अपने प्रभु को जगाने का प्रयत्न करना चाहिए।

विशेषः

1. सर्वव्यापी ई वर की चर्चा की गई है।
2. भक्ति करके गुण–ग्रहण करना चाहिए।
3. उपमा अलंकार का सुन्दर प्रयोग।
4. उद्बोधन का सहज स्वरूप है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग।

ifrork

"पतिबरता मैली ... ... कोटिसरूप ।।38।।"

शब्दार्थः पतिबरता – पतिव्रता; भली – अच्छी; कुचिल – गंदी; वारौं – न्योछावर; कोटि – करोड़; सुरूप – सुन्दरी।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी पाठ्य–पुस्तक 'काव्य–ि ाखर' के 'कबीरदास' के 'पतिव्रता' भीर्शक से ली गई है। इसमें विनम्र और पतिव्रता नारी की प्र ांसा की गई है।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि नारी का गहना विनम्रता और उसका पतिव्रता भाव है। पतिव्रता यदि भद्दे रूप, काले रंग और गंदे कपड़े में हो तब भी उसकी श्रेश्ठता स्वयं सिद्ध है। ऐसी पतिव्रता नारी पर करोड़ों करोड़ी सुन्दरियाँ न्यौछावर होती है।

विशेषः

1. पतिव्रता नारी की महिमा का गुण–गान है।
2. 'काली कुचिल कुरूप' में अनुप्रास अलंकार है।
3. भारतीय संस्कृति के अनुरूप चित्रण है।

4. आकर्शक गेयता है।

5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"नैना अंतर ... ... देखन देऊँ ।।39।।"

शब्दार्थ: नैना – आँख; आव – आइए; झँपउँ – बंद करूँ; कूँ – को; देऊँ – दूँ।

संदर्भ – प्रसंग: प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्य–पुस्तक 'काव्य–ि ाखर' के कबीरदास' के 'पतिव्रता' भीर्शक से ली गई हैं। इसमें ई वर के प्रति अनन्य लगाव को द ार्या गया है।

व्याख्या: कबीरदास भक्त के रूप में ई वर को बुलाते हैं और कहते हैं तुम मेरी आँखों में आ जाओ और मैं अपने आँखें बंद कर लूँ। ऐसे मैं दुनिया से दूर रहकर आपको ही देखूँगा और आप (ई वर) को भी किसी अन्य को नहीं देखने दूँगा। इस प्रकार मैं ई वर का बन जाऊँगा।

विशेष:

1. आत्मारूपी पत्नी का ई वर पति से अपूर्व प्रेम–चित्रण है।

2. 'देखन देऊँ' में अनुप्रास अलंकार है।

3. सूक्ष्म भाव की स्पश्ट अभिव्यक्ति है।

4. सुन्दर लयात्मकता का स्वरूप है।

5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"कबीर रेख ... ... कहाँ समाई ।।40।।

शब्दार्थ: नैनूं – आखों में; रमइया – खु ी से रहने वाला; रमि रहा – मस्त होकर रहना; दूजा – दूसरा; समाय – स्थान पाएगा।

संदर्भ – प्रसंग: प्रस्तुत साखी पाठ्य पुस्तक 'काव्य–ि ाखर' के 'कबीरदास' के 'पतिव्रता' भीर्शक से ली गई है। इसमें प्रिय और गुणवान के स्थान पर गुणविहीन या सामान्य और अप्रिय को स्थान मिलना संभव नहीं होता है।

व्याख्या: कबीरदास कहते हैं कि जिस स्थान पर सौभाग्य के प्रतीक सिंदूर को लगाया जाता है उस स्थान पर काजल नहीं लगाया जा सकता है। आँखों में रमने वाला खु ी–खु ी से विराजमान है। अब उसके स्थान पर किसी दूसरे को स्थान मिल पाना असंभव है।

विशेष:

1. ई वर को पाकर भक्त पूर्ण संतुश्ट हो जाता है।

2. 'रमइया रमि रहा' में अनुप्रास अलंकार है।

3. सुन्दर गेयता है।

4. सूक्ष्म भाव की स्पश्ट अभिव्यक्ति है।

5. दोहा छंद का प्रयोग।

min'k

"जो तो को ... ... है तिरसूल ।।41।।

शब्दार्थः तो को – तुम को; बुवै – बोए; ताहि – उसे; तोहि – तुमको; तिरसूल – त्रिसूल।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी पाठ्य पुस्तक 'काव्य–ि ाखर' के 'कबीरदास' के 'उपदे ा' भीर्शक से ली गई है। इसमें दूसरों के साथ सद्भाव से व्यवहार करने का संकेत किया गया है।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि यदि कोई तुम्हारे रास्ते में काँटे बिखेर कर तुम्हें कश्ट देना चाहें, तो तुम उसके रास्ते में फूल बिछा कर उसका सहयोग करो। इससे तुम्हारे रास्ते में बिछाये गए काँटे फूल बन जांएगे और उसके रास्ते में काँटे ही मिलेंगे।

विशेषः

1. सद्विचार से प्रसन्नता मिलती है।

2. दूसरों के सहयोग से अपना मार्ग साफ होता है।

3. 'काँटे बोना', 'फूल बोना' मुहावरों का प्रयोग है।

4. सुन्दर लय और तुक का प्रयोग है।

5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"दुर्बल को न ... ... ह्वै जाय ।।42।।"

शब्दार्थः सताइए – तंग करना; हाय – अफसोस; लौह – लोहा; भस्म – जल जाना।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी पाठ्य पुस्तक 'काव्य–ि ाखर' के 'कबीरदास' के 'उपदे ा' से ली गई है। इसमें किसी को भी तंग न करके सभी को सहयोग करने की बात कही गई है।

व्याख्याः कबीरदास कहते है कि बलहीन को कभी भी कश्ट नहीं देना चाहिए। उनकी निकलती 'आह' में बहुत भाक्ति होती है। यह सच है कि बिना प्राण के होने पर भी लुहार की भट्टी जब साँस लेती है लोहा भी जल कर पिघल जाता है। गरीब या दुर्बल तो प्राणवन्त मनुश्य है उसकी आह से बहुत भयंकर परिणाम हो सकता है।

विशेषः

1. निर्बल को सताना नहीं चाहिए।

2. सहयोग, उपकार भाव जगाने का प्रयत्न किया गया है।

3. 'बिना जीव ... जाय' कहावतें के रूप में प्रयुक्त है।

4. सुन्दर लयात्मकता है।

5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"ऐसी बानी ... ... सीतल होय ।।43।।

शब्दार्थ: बानी – बोल; आपा – घमण्ड; खाय – छोड़कर; औरन – दूसरों को; सीतल – भीतल; आपहुँ – अपने आप।

संदर्भ – प्रसंग: प्रस्तुत साखी पाठ्य पुस्तक 'काव्य–ि ाखर' के 'कबीरदास' के 'उपदे ा' भीर्शक से ली गई है। इसमें ऐसी बात कहने के लिए प्रेरित किया गया है जिससे खु ाी का वातावरण बने अर्थात् कड़ुई बात नहीं बोलनी चाहिए।

व्याख्या: कबीरदास कहते हैं कि मनुश्य को घमण्ड छोड़ कर सहज होकर ऐसी बात बोलनी चाहिए जिससे सुनने वाले को प्रसन्नता हो और साथ ही अपना मन भी प्रसन्न हो। अर्थात् कटु बात नहीं बोलनी चाहिए।

विशेष:

1. अनुकूल और सहज बात बोलनी चाहिए।

2. 'बानी बोलिए' में अनुप्रास अलंकार है।

3. तद्भव भाब्दावली की सहज भाशा का प्रयोग है।

4. सुन्दर लयात्मकता है।

5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"मधुर वचन ... ... सकल सरीर ।।44।।"

शब्दार्थ: औशधी – दवा; कटुक – कटुआ; स्रवन – कान; ह्वै – होकर; सालै – हिलाता है; सकल – सारा।

संदर्भ – प्रसंग: प्रस्तुत साखी पाठ्य पुस्तक 'काव्य–ि ाखर' के 'कबीरदास' के 'उपदे ा' भीर्शक से ली गई है। इसमें मधुर बातों के अनुकूल और कटुक वचन के विपरीत प्रभाव का वर्णन किया गया है।

व्याख्या: कबीरदास ने कहा है कि मनुश्य की मधुर बातें दवा का प्रभाव डाल कर सुनने वाले को प्रसन्न करती है, किन्तु कटु बातें तीर की तरह कानों से घुस कर हृदय को बेध देती है और तन–मन विह्वल हो जाता है।

विशेष:

1. मधुर और कटु बातों का अपना अलग–अलग प्रभाव होता है।

2. 'संचरै सालै सकल सरीर' में आकर्शक अनुप्रास अलंकार है।

3. सुन्दर लयात्मकता और गेयता है।

4. सरल, सुबोध भाशा का प्रयोग है।

5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"जिन ढूँढा ... ... किनारे बैठि ।।45।।"

शब्दार्थः तिन – उनको; पाइया – पाया; गहिरे – गहरे; बौरा – मूर्ख।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी पाठ्य पुस्तक 'काव्य–ि ाखर' के 'कबीरदास' के 'उपदे ा' भाीर्शक से ली गई है। इसमें लगातार प्रयत्न से मिलने वाली सफलता का वर्णन किया गया है।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि यदि व्यक्ति लगातार प्रयत्न करता रहे तो उसे सफलता अव य मिलती है। जैसे जो पानी में घुसने से डरेगा वह बैठा ही रह जाएगा, जो पानी में उतर जाता है उसे लाभ अव य मिलता है।

विशेषः

1. कर्मठ व्यक्ति को सफलता मिलती है।

2. डरपोक और आलसी व्यक्ति सदा असफल होते हैं।

3. 'गहरे पानी पैठि' मुहावरे का सुन्दर प्रयोग है।

4. मुक्तक काव्य का प्रतिनिधि रूप है।

5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"करता था ... ... तै खाय ।।46।।"

शब्दार्थः करि – करके; पछिताय – पछताय; बोवै – बुवाई करे।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी पाठ्य पुस्तक 'काव्य–ि ाखर' के 'कबीरदास' के 'उपदे ा' भाीर्शक से ली गई है। इसमें समय से सोच कर कार्य करने की प्रेरणा दी गई है।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि जब कार्य कर रहे थे तो उल्टे काम क्यों किया ? उस समय सोचकर अच्छा कार्य करना था। अब तो गलत कार्य कर चुके हो। अब पछताने से कोई लाभ नहीं होगा। यदि बबूल का बीज डाल कर बबूल का पेड़ पैदा किया है, तो आम मिलना असंभव है। अर्थात् गलत कार्य करने से कश्ट तो झेलना ही होगा।

विशेषः

1. गलत कार्य का गलत परिणाम भोगना होता है।

2. 'बबूल का पेड़ बोना' मुहावरे का प्रयोग है।

3. सुन्दर लयात्मक प्रस्तुति है।

4. जीवनोपयोगी उपदे ा है।

5. दोहा छन्द का प्रयोग।

rhFk&or

"पाहन को ... ... होय खराब ।।47।।"

शब्दार्थः पाहन – पत्थर; अंधा – मूर्ख; नर – आदमी; आ ाामुखी – आ ाावान।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी पाठ्य पुस्तक 'काव्य–ि ाखर' के 'कबीरदास' के 'तीर्थ–व्रत' भीर्शक से ली गई है। इसमें बाह्याडंबर और भाग्यवादी विचारधारा का खण्डन किया गया है।

व्याख्याः कबीरदास ने कहा है कि मनुश्य को पत्थर की पूजा नहीं करनी चाहिए क्योंकि वह हमारे भावों को नहीं समझ सकता और उत्तर भी नहीं दे सकता है। जो मनुश्य आ ाावादी होता है वह कार्य करता नहीं बस भाग्य के भरोसे जीने से अपना भविश्य बिगाड़ बैठता है।

विशेषः

1. बाहयाडंबर मूर्ति–पूजा खण्डन है।
2. भाग्यवादी न बन कर कार्य करने का उपदे ा है।
3. सुन्दर लयात्मकता है।
4. निर्गुण उपासना पद्धति का स्वरूप है।
5. दोहा छंद का प्रयोग।

"पाहन पूजे ... ... खाय संसार ।।48।।"

शब्दार्थः पाहन – पत्थर; पूजौं – पूजन करूँ; पहार – पहाड़।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी पाठ्य पुस्तक 'काव्य–ि ाखर' के 'कबीरदास' के 'तीर्थ–व्रत' भीर्शक से ली गई है। इसमें मूर्ति–पूजन का खुलकर खण्डन किया गया है।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि मूर्ति–पूजा नहीं करनी चाहिए। यदि पत्थर की मूर्तियों की पूजा से भगवान मिल जाए, तो में पहाड़ की पूजा करूँगा। उनका कहना है कि इससे तो अच्छा है कि घर की आटा चक्की की पूजा करें, जो गेहूँ को पीस कर आटा बनाती है और उससे हमारा भोजन तैयार होता है।

विशेषः

1. मूर्ति–पूजा का खण्डन है।
2. जीवनोपयोगिता को महत्व दिया गया है।
3. 'पाहन पूजे', 'पुजों पहार' में अनुप्रास अलंकार है।
4. सुन्दर गेयता है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"मन मथुरा ... ... जोति पिछान ।।49।।"

शब्दार्थः काया – भारीर; देहरा – भारीर; जोति – ज्योति; पिछान – पहचान।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी पाठ्य पुस्तक 'काव्य–ि ाखर' के 'कबीरदास' के 'तीर्थ–व्रत' भीर्श से ली गई है। इसमें संकेत किया गया है कि ई वर की भक्ति मन से ही करनी चाहिए।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि भगवान की खोज में काबा या तीर्थ में भटकना नहीं चाहिए। मनुश्य को सोच लेना चाहिए कि उसका मन ही मथुरा, दिल ही द्वारिका और भारीर की का ी है। भारीर में ही दस द्वार है जिनमें दसवाँ द्वार ब्रह्मरंध्र है। जहाँ प्रवे ा करने से ई वर के द िन होते हैं। दसवें द्वार पर पहुँच कर ई वर का प्रका ा मिल जाता है।

विशेषः

1. एकाग्रमन से ई वर की उपासना करनी चाहिए।
2. मूर्ति–पूजा में समय नहीं बरबाद करना चाहिए।
3. 'मन मथुरा', 'दिल द्वारिका', 'काया कासी' और 'दस द्वारे' में अनुप्रास अलंकार है।
4. भक्ति साधना का सुन्दर चित्रण है।
5. निर्गुण ब्रहम की उपासना है।
6. दोहा छन्द का प्रयोग।

"काँकर पाथर ... ... हुआ खुदाय ।।50।।"

शब्दार्थः काँकर – कंकड़; पाथर – पत्थर; जोरि कै – इकट्ठा कर; ता – उस; मुल्ला – मौलवी; बाग देना – आवाज देना; खुदाय – खुदा।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत साखी पाठ्य पुस्तक 'काव्य–ि ाखर' के 'कबीरदास' के 'तीर्थ–व्रत' भीर्शक से ली गई है। इसमें दिखावे का खुल कर विरोध किया है। उनका कहना है साधना भाांत और एकाग्र मन से करनी चाहिए।

व्याख्याः कबीरदास कहते हैं कि भक्ति में दिखावा नहीं करना चाहिए। कंकड़–पत्थर इकट्ठा करके मस्जिद का निर्माण किया जाता है और मौलवी उस पर चढ़ कर जोर–जोर से अल्लाह को आवाज लगा कर नमाज करता है। कबीरदास निडर भाव से कहते हैं कि क्या अल्लाह बहरा हो गया है, जो भक्त को ऐसे जोर–जोर से चिल्लाना पड़ता है। अर्थात् एकाग्र और भाांत मन से साधना करनी चाहिए।

विशेषः

1. बाह्याडंबर और दिखावे का खण्डन है।
2. भाांत मन से साधना की प्रेरणा है।

3. निर्गुण राम की उपासना का संकेत है।
4. गेयता का आकर्शक रूप है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग।

सूरदास जन्मः 1478 ई० मृत्युः 1589

l eh{kk

1.

सूरदास का साहित्यिक परिचय

किधौं सूर कौ सर लग्यौ, किधौं सूर की पीर ।
किधौं सूर को पद लग्यौ तन, मन, धुनत सरीर ।।

श्री कृष्ण की लीलाओं का इतना विशद एंव व्यापक गायन करने वाली अन्धे कवि सूर की वाणी ही थी जिसकी प्रत्येक झंकार में श्री कृष्ण विराजमान थे, उसकी प्रत्येक श्वास में कृष्ण का मधुर नाम था। निःसंदेह, भागवत्कार श्री वेदव्यास के पश्चात् कृष्ण का मधुर नाम था। निःसंदेह, भागवत्कार श्री वेदव्यास के पश्चात् कृष्ण लीलाओं के मार्मिक, मनोवैज्ञाननिक एंव सुमधुर वर्णन में सूर की कोई समता नहीं कर सका।

thou&o`r

महाकवि सूर का जीवन–वृत्त प्रामाणिकता के अभाव में अंधकारपूर्ण है। विश्वस्त सामग्री के आधार पर इनका जन्म आगरा से मथुरा जाने वाली सड़क पर स्थित रुनकता गाँव में सन् 1453 ई० में हुआ था। इनके पिता पं० रामदास, सारस्वतः ब्राह्मण थे। दास भावना से परिपूर्ण विनय के पद बना कर गाया करते थे। अपनी यात्रा काल में महाप्रभु बल्लभाचार्य ने जब इनके पदों को सुना तो बड़े प्रभावित हुए। इन्हें अपने सम्प्रदाय मे दीक्षिण किया और भागवत् के आधार पर भगवान् की लीलाओं के वर्णन की आज्ञा दी। अब सूर की भक्ति, दास भावना से सखा – भाव में परिवर्तित ही गई थी, क्योंकि बल्लभ सम्प्रदाय के पुष्टिमार्ग में कृष्ण को सखा माना जाता है और बालरूप की पूजा होती है। बल्लभाचार्य इन्हें अपने साथ श्री नाथ जी के मंदिर को ले गए। वहाँ इन्हें दैनिक पूजा के समय पद रचना एंव गायन का कार्य भार सौंपा। इनकी मृत्यु सन् 1563 ई० में पारसौली नामक स्थान पर हुई। मृत्यु के समय बल्लभाचार्य जी के पुत्र गोस्वामी विट्ठल नाथ वहाँ उपस्थित थे। सूर ने उन्हें निम्नलिखित पद सुनाया, यह महाकवि की अन्तिम रचना थी।

खंजन नैन रूप रस माते।
अतिशय चारू चपल अनियारे, पल पिंजरा न समाते।

tUekU/krk

सूर की जन्मान्धता बहुत विवादास्पद है। परन्तु इनकी उक्तियाँ इतनी स्वाभाविक एंव उलहाने से भरी हुई हैं कि इन्हें जन्मान्ध मानने को विवश कर देती हैं, जैसे :–

"सूरदास सों कहा निठुराई, नैनहू की हानि।"

jpuk,¡

सूरदास जी के पाँच ग्रन्थ बताए जाते हैं जिनमें 'सूरसागर' अद्वितीय है। 'सूरसागर' में सवा लाख पद थे। ऐसा कहा जाता है। कुल रचनायें इस प्रकार हैं (1) सूरसागर, (2) सूरसारावली, (3) साहित्य लहरी (4) नलदमयंती (5) व्याहलों

dk0;xr fo'k"krk;¡

भावः सूर की काव्य – धारा विनय, वात्सल्य और श्रृंगार की पवित्र निशानी हैं। साहित्य और संगीत का अपूर्व समन्वय है।

भक्ति भावनाः श्री कृष्ण का लोकरंजक स्वरूप ही रूप को किया था, कारण कि बल्लभ सम्प्रदाय में भगवान् कृष्ण के बाल एंव मधुर रूप की उपास्य है। सूर कृष्ण के अनन्य भक्त थे। इनका सारा काव्य भक्ति – भावना की विनय से ओत प्रोत है। अपने इष्ट देव की लीलाओं का वर्णन ही इनका मुख्य लक्ष्य था। भक्ति की अनन्यता का एक उदाहरण देखिए–

मेरौ मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी पुनि जहाज पै आवै।।

बाल–वर्णनः अपने इष्टदेव की लीलाओं के वर्णन में बाल वर्णन अद्वितीय है। सूर बाल – मनोविज्ञान के आचार्य थे। इनकी पैनी अन्तरदृष्टि के कृष्ण की बाल सुलभ चेष्टाओं, क्रीडाओं और भावों का सुन्दर चित्र खींचा है कि विश्व साहित्य का कोई भी कवि इनकी समता नहीं कर सकता। इसके साथ ही साथ ममता मातृ हृदय की इतनी विशद् एंव सूक्ष्म वृतियों का चित्रांकन भी सूर जैसे मनोवैज्ञानिक का ही कार्य था। पालने में कृष्ण की झुलाती हुई। यशोदा की सूक्ष्म अन्तर्वृतियों का चित्र देखिए–

1. *जसोदा हरि पालने झुलावै।*
   लहरावैं, दुलरावै, मल्हावै, जोई सोई कुछ गावै।

   कबहुँ पलक हरि मूंद लेत हैं कबहुँ अधर फरकावै।
   सोवत जानि मौन है रहि रहि, करि करि सैन बतावै।।

2. कृष्ण को चलना आ गया है पर देहली लाँघना अभी नहीं आता। कितना स्वाभाविक चित्र हैः–

   चलत देखि जसुमति सुख पावै।
   ठुमकि ठुमकि धरन पर रेंगत, जननी देखि दिखावै।
   देहरि लौं चलि आत, बहुरि फिरि फिरि इतही को आवै।

गिरि गिरि परत बनत नहिं लांघत, सुर मुनि सोय करावै।

3. बालक की भावपूर्ण गिड़गिड़ाहट देखिए –

मैया मैं न चरैहों गाई।
सिगरे बाल धिरावत मोसों, मोरे पाँच पिराई।

4. और फिर देखिए कृष्ण के मार्मिक व्यंग्य की बौछार –

जिय तेरे कछु भेद उपज है जानि परायो जायो।
लै यह अपनी लकुट कमरिया बहुतै नाच नचायो।

शृंगार – वर्णनः माधुर्य भावनाओं के वर्णन में सूर ने अपनी अनन्त शक्ति एंव अपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया है। शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का ऐसा और इतना सांगोपाँग वर्णन शायद ही किसी अन्य साहित्य में हो। सूर ने संयोगपक्ष में कृष्ण रूप चित्रण, गोपी – प्रेम, रास – लीला, दान – लीला, चीर – हरण मुरली आदि का तथा वियोग पक्ष में गोपियों के विरह सगुण भक्ति की विजय और उद्धव की पराजय आदि का वर्णन हिन्दी साहित्य में अद्वितीय है। सूर ने मानवीय भावों और विरह की अन्तर्दशाओं का जैसा विशद् एंव मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। वैसा अंयत्र नहीं मिलता। संयोग और वियोग के उदाहरण देखिए –

राधा को देखकर कृष्ण मुग्ध हो जाते हैं और पूछ बैठते हैं –

प्रथम मिलन का चित्र –

बूझत श्याम कौन तू गोरी।
कहाँ रहति, काकी है बेटी, देखी नहीं कबहुँ ब्रज खोरी।

सखी राधा को वहाँ भेज देती है जहाँ कृष्ण दूध दुह रहे हैं :

धेनु दुहन क्षति ही रति वाटी।
एक धर दुहनि पहुँचावत, एक धार जहँ प्यारी ठाढ़ी।

यही राधा वियोग मे यह कह कर रो उठती है कि –

"प्रीति करि काहू सुख न लह्यों"

निसि दिन बरसत नयन हमारे

सखी इन नैनन ते धन हारे

भाषाः सूर की भाषा चलती हुई ब्रज भाषा है। अपनी प्रतिभा के बल से इन्होंने उसे कलात्मक रूप प्रदान किया है। शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारो से भाषा को सजाया गया है। वह भावों का अनुगमन करती हुई पीछे – पीछे चलती है। शब्द चयन मधुर और कोमल हैं। लोकोतिक और मुहावरों का भी यथास्थान प्रयोग है। भाषा में प्रवाह, तीव्रता, सरलता एंव सुबोधता है। कूट पदों की भाषा दुर्बोध हो गई है।

शैलीः सूर का काव्य गीति काव्य है। जयदेव और विद्यापति की गीतिकाव्य परम्परा का पूर्ण विकास सूर में हुआ। सूर की शैली वर्णनात्मक, भावात्मक एंव दुरूह तीन प्रकार की है।

1. **वर्णनात्मक शैलीः** पौराणिक प्रसंगो की कथावर्णन में सूर ने इस शैली को अपनाया है। इस शैली की भाषा सरल एंव सुबोध है। कृत्रिम कलात्मकता का अभाव है।

2. **भावात्मक शैली :** भक्ति, विनय एंव विरह के पदों में यह शैली दर्शनीय है। कवि की अद्वितीय प्रतिभा की परिचायिका है काव्य सौष्ठव दर्शनीय है।

3. **दुरूह शैली :** यह शैली कूट पदों में देखी जा सकती है।

रस–छंद एंव अलंकार : सूर के काव्य में श्रृंगार, वात्सल्य और शांत रसों की प्रधानता है। इन रसों का सफल परिपाक हुआ है। छंद की दृष्टि से सूर ने केवल पदों में ही रचना की है। उन्हें विभिन्न रागनियों में संजोया गया है। अलंकारों का सूर के काव्य में बाहुल्य है। सभी अलंकारों का इन्होंने प्रयोग किया है। ये अलंकार भाषा और भावों की सौंन्दर्य वृद्धि में सहायक हुए है। आवश्यक रूप से अलंकारों का प्रयोग नहीं किया गया। उपमा, रूपक, उत्पेक्षा इनके प्रिय अलंकार है। कूट पदों में श्लेष का चमत्कार दर्शनीय है।

2.

सूरदास की भक्ति–भावना

भक्ति काल के साहित्य में सूरदास का विशेष स्थान हैं। कृष्ण भक्ति काव्य की तरंगिनी प्रवाहित करने वाले सूरदास का नाम परम श्रृद्धा से लिया जाता है। सूरदास के आराध्य सोलह कला प्रवीण श्री कृष्ण हैं। उनके काव्य में भक्ति की पतित पावनी गंगा का मन भावन रूप प्रकट हुआ है। सूरदास के भक्त और कवि रूप पर विद्वानों में पर्याप्त चलती रही है। अधिकांश विद्वानों का मत है कि सूरदास मुख्यतः भक्त थे और भक्ति भाव में डूब कर ही अपने आराध्य के प्रति भाव अर्पित करते हुए सहज काव्य रच उठता था। उनके साहित्य में अद्योपान्त भक्ति – भाव के रूप दिखाए देते है। कहीं पर दर्शन की अभिलाषा में व्यथित मन से निकला दैन्य भक्ति भाव है तो कहीं पर पुष्टिमार्गीय उत्कृष्ट भक्ति–भाव है।

uo/kk HkfDr

सूर के काव्य में नवधा भक्ति को विकसित रूप को प्रतिष्ठा मिली है। भक्त कवि की मान्यता रही है कि श्रवण, स्मरण और कीर्तन आदि से भगवान को सहज रूप में प्राप्त किया जाता है। ऐसे में भक्तों के पाप धुल जाते हैं, सांसारिक संकट मिट जाती है। और आत्म ज्ञान होता है। सूरदास मन – मस्त होकर अपने आराध्य को यादकर उसका गुणगान करते हैं :–

अविगति गति कछु कहत न आवै,
ज्यों गूंगे मीठे फल कौ रस अन्तरगत ही भावै।
परम स्वाद सुबही सु निरन्तर अमित तोष उपजावै।
मन – बाणी को अगम – अगोचर, सो जाने खो पावै।।

सूरदास उच्चकोटि के भक्त थे। भक्त होने के साथ से सिद्ध और सफल कवि थे। उनकी भक्ति भावना में कवि सुलभ कल्पनाओं का मनोहारी योग मिलता है। नवधाभक्ति में सूरदास ने श्रवण स्मरण और कीर्तन को गंभीरता से अपनाया हैं। सूर को दृढ़ विश्वास रहा है कि भक्त जहाँ पर यशोगान होता है, प्रभु वहीं निवास करते हैं।

oUnu & vpZuk

पुष्टि मार्ग की भक्ति में पाद–सेवन, वन्दना और अर्चना को विशेष महत्व दिया जाता है। सूर के साहित्य में तीनों रूपों का प्रबल प्रभाव दिखाई देता है। भक्त कवि सूरदास ने सूरसागर के प्रारंभ में ही प्रभु के श्री चरणों की वन्दना की है।

चरन कमल वन्दौ हरीराइ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लधै, आधै कौ सब कुछ दरसाइ।
बहिरौ सुनै मूक पुनि बोलै, रैक चलै सिर छम धराइ।

सूरदास स्वामी करुनामय बार – बार बन्दौ तिन्हि पाइ।।

सूर की भक्ति का प्रबल अनुराग प्रभु के गुणगान में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

nkL; vkRefuosnu

भक्त सूरदास प्रभु की कृपा पाने के लिए उनका बहुविधि ध्यान करते हैं। सूर उनके समक्ष अनेक रूपों में अपने को प्रस्तुत करते हैं। इनमें दास्य, सख्य और आत्म – निवेदन का रूप विशेष मर्मिक है। सूरदास के काव्य में बल्लभ संप्रदाय में दीक्षित होने के पूर्व का रूप दास्य भक्ति से प्रभावित है। वे अपने को बड़ा पापी मान कर बार – बार और अनेक बार पतितोद्धारक कृष्ण को याद करते है। वे उनके सामने गिड़गिड़ाते ही नहीं कभी – कभी तो उनको पतितोद्धार के लिए आह्वान भी करते हैं।

प्रभु हौ सब पतितन को टीको ।
और पतित सब दिवस चारि के, हों तो जनमत ही कौ।
बधिक अजामिल, गनिका तारौ और पूतना ही कौ।
कोउ न समरथ उध करिबे कौ, खैच कहत हौं नीकौ।
परिमत लाज सूर पतितनि में मोहूं तैं कौ नीको।।

भक्त प्रभु के सम्मुख हाथ जोड़ कर उद्धम करने की याचना ही नहीं करना वरन् अवगुणों को ध्यान न देने का निवेदन भी करता है।

हमारे प्रभु, औगुन चित न धरौ।
समदरसी है नाम तुम्हारौ सोई पार करौ।
इक लोहा पूजा में राखत, इक धर बधिक परौ।
सो दुविधा पारस नहिं जानत, कंचन करत खरौ।
इन नदिया इक नार कहावत, मैलो नीर भरौं।
कै इनकौ निरधम् कीजिए, कै प्रन जात टरौ।

सूरसाहित्य में सख्य भाव को सुन्दर प्रतिष्ठा मिली है। श्री कृष्ण की सखा मंडली है। अनेक सखा के साथ खेलते दर्शा कर सूरदास अपने मन को प्रसन्नता से भर लेते है। इस प्रकार का विस्तृत प्रकरण संख्य भक्ति से अनुप्राणित है। सूरसागर में माखन लीला, गोवर्धन लीला, कालिया दमन लीला आदि इसी संदर्भ की भक्ति भावना से ओत – प्रोत है। इसमें मैत्री भाव का आकर्षक रूप है।

मैया हो न चरैहों गाई।
सिगरे ग्वाल धिरावत मोसों मेरे पाई पिराइ।
यह सुनि माइ जसोदा ग्वालनि, गारी देति रिसाई।
मैं पठवति अपने लीका को आवे मन बहराई।
सूर स्याम मैरो अति लड़तो मारत ताटि रिगाई।।

सूरदास की भक्ति पद्धति की विविधता से यह स्पष्ट होता है कि बल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होने से पहले उनकी वृति में वैविध्य रूप था। इसी कारण विविध रूपों में प्रभु को याद किया है। जब वे

वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित हुए तो उनकी भक्ति को एक विशेष दिशा मिल गई हैं। इसके बाद वे वात्सल्य और मधुर भाव प्रवाह की भक्ति में गतिशील हो गए हैं।

okRlY; ,o ek/kq;! HkfDr

सूर साहित्य में वात्सल्य भक्ति को प्रबल प्रतिष्ठा मिली है। हिन्दी साहित्य में वात्सल्य को चरम परिणति पहुँचाने में सूरदास का सर्वोपरी योगदान रहा है। वास्तव में वात्सल्य भक्ति में निष्काम भाव की अभिव्यक्ति होती है। इसमें कृष्ण की बाल लीला का मोहक वर्णन मिलता है। सूर बाल मनोविज्ञान के आचार्य के। इनकी पैनी दृष्टि ने कृष्ण की बाल सुलभ चेष्टाओं, क्रीड़ाओं और भावों का सुन्दर चित्र खींचा है कि विश्व साहित्य का कोई भी कवि इनकी समता नहीं कर सका है। इसके साथ ही ममता भरे मातृ – हृदय की इतनी विशद एंव सूक्ष्म वृतियों का चित्रांकन भी सूर जैसे मनोवैज्ञानिक का ही कार्य था। पालने में कृष्ण को झुलाती हुई यशोदा की सूक्ष्म अन्तर्वृतियों का चित्रण अवलोकनीय है :

जसोदा हरी पालने झुलावै,
बहलरावै, दुलरावै, मल्हरावै, जोई सोई कछुगावै।
कबहुँ पलक हरि मूँद लेत है, कबहुँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मोन है रहि रहि, करि–करि सैन बतावै।।

कृष्ण जब चलने लगते है, तो बाल लीला के अनूठे चित्र सामने आए हैं।

चलत देखि जसुमति सुख पावै ।
ठुमकि ठुमकि धरन पर रेंगत, जननी देखि दिखावै।
देहरी लौ चलि जात, बहुरी फिरि – फिरि इतही को आवै।
गिरी – गिरी परत बनत नहिं लाँघत, सुरमुनि सोच करावै।।

कृष्ण का बाल – स्वमाव, बाल – हठ, कौतुक और उत्सुकता सब कुछ सूर साहित्य में अपूर्व रूप में प्रस्तुत हुई है। कितना मोहक दृश्य है, बाल हठ में –

"मैया में चन्द खिलौना लैहों।
जैहों लोटि धरनि पर अबहीं, तेरी गोद न ऐंहों।"

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस विषय में लिखा है :–

"बाल कृष्ण की चेष्टाओं में कवि ने कमाल की होशियारी और सूक्ष्म निरीक्षण का परियच दिया है। ....यशोदा का निखिलानन्द संदोह भगवान बाल कृष्ण के प्रति एकान्त आत्मसमर्पण है अपने आपको मिटाकर सर्वस्व निछावर करके जो तन्मयता प्राप्त होती है वही श्री कृष्ण की इस बाल लीला को संसार का अद्धितीय काव्य बनाए हुए है।"

माधुर्य भक्ति श्रृंगार प्रेम की भक्ति कही जाती है। लौकिक प्रेम के रूप में अवतारी पुरूष का संदर्भ समग्ररुपेण माधुर्य भक्ति के अन्तर्गत आता है। सूर ने लौकिक प्रेम को एक दिशा देकर अलौकिकता के रंग से रंगा और उसे मधुर रस में परिवर्तित कर दिया है। यही कारण है कि सूरदास की अन्तरात्मा का अन्तः भाव राधा में प्रकट होता है। माधुर्य भक्ति में एक ओर अनन्य भाव होता हैं, तो दूसरी ओर आत्मसमर्पण का रूप होता है। सूर साहित्य में रास – लीला, दान – लीला, चीर हरण,

यह ही भाव प्रकट होता है। सूर द्वारा प्रतिपादित विरह भाव अत्यन्त प्रबल होकर सामने आया है। गोपियों का मत है कि प्रत्येक प्राणी का एक मन है। वे उसे कृष्ण के चरणों में अर्पित कर चुकी हैं। इन गोपियों का मार्ग लोक मार्यादा से आगे जा चुका है। उनका रूप कृष्णमय हो चुका है। उनकी तो प्रसन्नता उस असाध्य के ही संग संभव है।

अंखियाँ हरी दरसन को भूखी।
कैसे रहें रूप रस राँची ये बतियाँ सुन रूखी।
अवधि गनत इक टक मग जोवत जब एती नहिं झूखी।
सूर सिकत हठि नाव चलाओ ये सरीता हो गई है।

कृष्ण के अभाव में ब्रज भूमि भी दुःखदायक हो गई है।

जबकि ब्रजधाम के वास को कृष्ण की भक्ति का फल माना गया है। माधुर्य भक्ति का अत्यन्त संवेदनशील दृश्य हैं :–

"बिन गोपाल बैरीन भई कुंजैं।
तब ये लता लगति अति शीतल अब मई विषमज्वाल की पुंजैं।"

सूर काव्य में माधुर्य भक्ति का रूप अत्यन्त मार्मिक और मोहक है।

सूरदास ने वल्लभाचार्य के सानिध्य मे पुष्टिमार्ग को अपनाया है। इनकी भक्ति में सुदृढ़ होकर स्नेह भाव से भक्ति मार्ग पर गतिशील रहना होता है। इसमें जहाँ सिद्धान्त और सेवा दो पक्ष हैं वहीं भक्ति मार्ग के सेवा मे गुरू, सन्त और प्रभु सेवा का विधान बताया गया है।

गुरूज्ञान सांसारिक मोह – माया से मुक्ति दिलाता है, सूरदास श्रीनाथ मंदिर में गायन के क्रम में लगे हुए थे। इसलिए श्रीनाथ की नित्य सेवा का चित्रण मिलता है। इसमें भोग (विविध व्यंजन – भोग) राग (विविध राग) और श्रृंगार (अंग प्रत्यंग की सजावट) सेवा के तीन रूप माने गये हैं।

सूरदास की भक्ति में सत्संगति को विशेष महत्व दिया गया है। सूरदास अपने आराध्य पर अनन्य भक्ति भाव रखते हैं। यह इनकी भक्ति भावना की सच्ची पहचान है :–

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी फिर जहाज पर आवै।

निश्चय ही सूरदास श्रेष्ठ भक्त कवि हैं। उनकी भक्ति भावना भागवत से अनुप्राणित है तो वल्लाभाचार्य की मान्यताओं से विकारी कर विशिष्ट रूप पा सकी है। सूर की भक्ति में जन – सामान्य को सहज रूप में मन भावन उत्कर्ष प्रदान करने की शक्ति है।

3.

सूरदास का वात्सल्य वर्णन

सूरदास की मनोवृत्ति अपने आराध्य भगवान कृष्ण के जीवन के बाल्य और यौवन इन दोनो पक्षों के चित्रण में अधिक रमी है। तुलसी की तरह सूर का क्षेत्र बहुत व्यापक नहीं है पर उन्होंने अपने सीमित क्षेत्र के अन्दर ही वात्सल्य और श्रृंगार की धारा प्रवाहित की है। सूरदास को बाल्यभाव की भक्ति को अपनाने तथा बाल लीला संबंधी पदों की रचना करने की प्रेरणा वल्लभाचार्य से प्राप्त हुई। वात्सल्य का प्रभावशाली चित्रण सर्वप्रथम सूरदास की रचनाओं में हुआ। उन्होंने अपने काव्य मे बाल लीलाओं के संजीव एवम् हृदयग्राही चित्र अंकित किए हैं।

ckyf'k'k dk o.ku

सूरदास ने बालक कृष्ण की विविध दशाओं और चेष्टाओं का मनोमुग्धकारी चित्रण किया हैं। यशोदा गीत गाकर बालक कृष्ण को सुलाने का प्रयत्न कर रही है –

'जसोदा हरि पालनैं झुलावै।
हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ – सोइ कछु गावै।
मेरे लाल को आउ निंदरिया, काहैं न आनि सुवावै।
तू काहै नहिं बेगिहिं आवै, ताकों कान्ह बुलावै।
कबहुँ पलक हरि मूंद लेत हैं, कबहुं अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन हवै कै रहि, करि – करि सैन बतावै।
इहि अंतर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरै गावै।
जो सुख 'सुर' अमर – मुनि दुरलभ, सो नंद भामिनी पावै।

उपर्युक्त पद में बालकों की प्रकृति और माता के वात्सल्य की अभिव्यक्ति यहाँ साधारण ढंग से हुई है। परिवारिक जीवन में नित्यप्रति घटित होने वाली एक साधारण सी घटना को सूर ने अपनी दिव्य प्रतिभा द्वारा अधिक प्रभावशाली और हृदय शाली बनाने में सफलता प्राप्त की है।

सूरदास ने बाल छवि का वर्णन करते हुए शब्द, रूप व भावति तीनों के समन्वय द्वारा बालक कृष्ण की सजीव मूर्ति खड़ी करने में सफलता प्राप्त की है। ऐसे पदों में सूर बाल छवि के चतुर चितेरे के रूप में हमारे सामने आते हैं। जैसे :–

छोटी छोटी गोड़ियाँ, अंगुरियाँ छबीली छोटी,
नख – ज्योती, मोती मानो कमल – दलनि पर ।
ललित ऑगन खेलै, ठुमुकि – ठुमुकि डोलै,
झुनुक – झुनुक बोलै पैजमी मृदु मुखर ।।
किलकि किलकि हंसै, द्वै – द्वै दँतुरियाँ लसें
'सूरदास मन बसै; तोतरे बचन बन ।।

ckyd dk o.kZu

सूरदास ने बालक के बाह स्वरूप एवम शारीरिक चेष्टाओं का ही सूक्ष्म एवम् विस्तृत वर्णन नहीं किया है अपितु उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से बाल हृदय की चेष्टाओं को भी अभिव्यक्त किया है। बालक की स्पर्धा हठ, खीज, क्षोभ, चापल्य आदि का चित्रण अनेक पदों में होती है। बालक के हृदय में स्पर्धा की भावना बहुत तीव्र होती है। इसी भावना के कारण वे उन्नति करते हैं। बलराम की लंबी चोटी देखकर कृष्ण के मन में भी लम्बी चोटी इच्छा होती है। यशोदा इस भावना का लाभ उठाकर उसे दूध पीने के लिए तैयार करती है, परंतु चोटी न बढने पर बच्चे की प्रतिक्रिया देखिए –

"मैया कबहिं बढैगी चोटी ?
किती बार मोहि दूध पिवत भई यह अजहूँ है छोटी।।
तू जो कहति बल की बेनी ज्यौं हवै है लंबी मोटी।
काढ़त गुदत न्हवावत ओंछत नागिनि सी मुंई लोटी।।

बालहट अथवा किसी वस्तु के लिए मचलना बच्चे की सामान्य प्रवृति हैं 'चंद्राखिलौना' लेने हेतु बालक कृष्ण भी मचलते हैं –

'मैया! मैं तो चंद्रखिलौना लैहों।
जैहौं लोटि धरनि पर अबहीं, तेरी गोद न ऐहौं।।
सुरभी को पयदान न करिहौं, बेनी सिर न गुहैहौं।

बालक स्वभावतः अपने साथियों को चिढाने में आनन्द अनुभव करते हैं। जिस बात से बालक चिढ़ता है, उसके साथी उसे और चिढ़ाते हैं। सूरदास ने इस स्थिति का चित्र अंकित किया है –

"मैया! मोहि दाऊ बहुत खिझायो।
मोसों कहत मोल कौ लीन्हौं, तू जसुमति कब जायौ ?
कहा करौ इहि रिस के मारै, खेलन है नहीं जात।
पुनि – पुनि कहत कौन है माता, को हौ तेरौ ताता।।

ऐसे चिढ़ाने वाले बालकों के साथ न खेलना और उनसे दूर रहने की चेष्टा करना बालक की स्वाभाविक मनोवृति है। निम्नपद में बालक की यही मनोवृत्ति दिखलाई पड़ती है।

' खेलत अब मेरी जात बलैया।
जबहिं मोहिं देखत लखिन संग तबहिं खिजत बल भैया।।
मोसों कहत पूत बसुदैव कौ देवकी तेरी मैया।
मोल लियो कछु है बसुदेव को, करि – करि जतन बढ़ैया।।

दूसरों को डॉट पड़ने पर बच्चा अत्याधिक प्रसन्न होता है। बच्चे को नहलाना भी कठिन कार्य है बालक स्वभाव से ही नहाने से जी चुराता है। बालक की कहानी सुनने में अत्यधिक रूचि होती है। माता यशोदा कृष्ण को सुलाने की चेष्टा करती है।

' जसुमति लै पलिका पौढ़ावति।
मेरौ आजु अतिहि बिरूझानौ, यह कहि कहि मधुरे सुर गावति।।
पौढि गई हरूऐं करि आपुन, अंग मोरि तब हरि जभुआने ।
कर सो ठोंकि सुतहिं दुलरावति, चटपटाई बैठे अतुराने।।
पौढो लाल, कथा इक कहिहौं, अति मीठी सवनमि को प्यारी।
यह सुनि 'सुर' स्याम मन हरषे, पौढ़ि गए हंसि देत हुँकारी।।

पारिवारिक जीवन में बच्चों की उपद्रवी प्रकृति, चपलता और बुद्धिचातुरी अनेक रूपों में व्यक्त होती है। कवि ने बाल स्वभाव के मनोविज्ञान सम्मत अंगणित चित्र अपने पदों में अंकित किए हैं। एक नटखट, उपद्रवी बालक के रूप में कृष्ण अपने सखाओं के साथ मिलकर गोकुल में दूध – दही व मक्खन की चोरी करते हुए गोपियों की नाक में दम कर देते हैं। बालक कृष्ण चोरी करते हुए पकड़े जाते हैं। ऐसे अवसरों पर वे अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए जा सफाई पेश करते हैं, उसमें एक नटखट बालक की वाकचातुरी स्वाभाविक ढंग से प्रकाश में आ जाती हैः–

'स्याम कहा चाहत से डोलत ?
पूछे ते तुम बदन दुरावत, सूँधे बोल न बोलत।।
पाए आइ अकेले धर में, दधि – भाजन मैं हाथ।
अब तुम काकौ नाउँ लेओ, नाहिंन कोऊ साथ।।
मैं जान्यौ यह मेरौ घर है, ता धोखे मैं आयौ।
देखत ही गोरस मैं चीटी, काढ़न को कर नायौ।।

कृष्ण की चोरी की शिकायत जब यशोदा तक पहुँचती है तो वह स्वंय को निर्दोष सिद्ध करने हेतु जो युक्तियाँ प्रस्तुत करते हैं, वे बच्चे के बुद्धिचातुर्य को व्यक्त करने में समर्थ हैंः–

'झूठेहिं मोहि लगावति ग्वारि।
खेलत तें मोहिं बोलि लियौ इहिं, दोउ भुज भरि दीन्ही अँकवारि।।
मेरे कर अपने उर धारति, आपुन ही चोली धरि फारी।
माखन आपुहिं मोहिं खवायौं, मैं धौं कब दीन्हौं है डारि।।
कह जानै मेरौ बारौ भोरौं, झुकि महरि दै – दै मुख गारि।

बच्चों का स्वभाव होता है कि वे अपना भोजन छोड़कर दूसरों से छीनकर खाना ज्यादा पसंद करते हैं। दूसरों का हिस्सा चालाकी से छीनकर भोजन करने में इन्हें अलौकिक आनन्द आता है –

ग्वालनि कर तें कौर छुड़ावत।
जूठौ लेत सबनि के मुख कौ, अपने मुख लै नावत।।
षट्रस के पकवान धरे सब, जिन मैं रूचि नहिं लावत।
हा – हा करि – करि मांगी लेत हैं; कहत मोहिं अति भावत।।

मातृ ह्रदय का अंकनः वात्सल्य की सच्ची अनुभूति मातृ ह्रदय को होती है। सूरदास में अनेक पदों में यशोदा के पुत्र प्रेम की अभिव्यक्ति मनोवैज्ञानिक ढंग से की है। बाल – लीला संबंधी पदों में जहाँ

सूरदास एक ओर बालक का रूप धारण कर क्रीड़ा करते दिखाई देते हैं, दूसरी ओर वे माता यशोदा के रूप में भी कृष्ण के लाड लड़ाते हैं। माँ के हृदय की इच्छा देखिये यशोदा के रूप में भी कृष्ण के लाड लड़ाते हैं। माँ के हृदय की इच्छा देखिए –

'जसुमति मन अभिलाष करै।
कब मेरों लाल घुटुरवन रेंगे धरती पग द्वैक धरै।।
कब द्वै दंत दूध के देखौं कब तुतरे मुख बेन झरे।
कब नन्दहि कहि बाबा बोलै कब जननी कहि मोहि झगरैं।
कब मेरो अँचरा गहि मोहन जोइ सोइ काही मोसों झगरैं।।

बालक का थोड़ा सा संकट भी माँ के लिए असह्य होता है। वह बालक का सारा कष्ट अपने ऊपर लेकर उसे सुखी देखना चाहती है और प्रतिक्षण उसके स्वस्थ एवम् चिरंजीवी होने की कामना करती है।

'लालन तेरे मुख पर हो बारी।
बाल गोपाल लगौं इन नैननि रोगु बलाइ तुम्हारी'।।

बालक के दुख की आशंका से माँ का हृदय अधीर हो उठता है। कनछेदन संस्कार के अवसर पर यशोदा के हृदय की व्याकुलता का सजीव चित्र अंकित है –

'कान्ह कुँवर को कनछेदन है, हाथ सुहारी भेली गुर की।
विधि विहँसत हरि हंसत हेरि हेरि, जसुमति की धुकधुकी सु उर की।।'

यशोदा कृष्णा को गोंचारा के लिए अनिच्छा से भेजती है। जब कृष्ण उसे ग्वालों के कठोर व्यवहार की शिकायत करते हैं तो वह उन्हें गाली देती हुई आती है :–

'मैं पठवति अपने लरिका कौ आवै मन बहराइ।
'सूर' स्याम मेरौ अति बालक, मारत ताहिं रिंगाइ'।।

वात्सल्य का वियोग पक्षः सूरदास ने वात्सल्य के वियोग पक्ष का चित्रण भी किया है। कंस के आदेश से अक्रूर कृष्ण व बलराम को मथुरा लाने के लिए आते हैं तो यशोदा पुत्र विरह से व्याकुल हो उठती है। वह अपने पुत्र के अनिष्ट की आशंका से अधीर हो उठती है :–

'मरौ भाई निधनी कौ धन माधौ।
बारम्बार निरखि सुत मानति तजति, नहीं पल आधौ।।
छिनु – छिनु परसति अंकज लावाति, प्रेम प्रकृत हवै बाँधौ।
निसि – दिन चंद – चकोरि अंखियनि, मिटै न दससन साधौ।।
करिहैं कहा अक्रूर हमारै, दै हैं प्रान अवाधौं।
'सूर' स्यामधन है नहिं पठवों, अबहिं कँस किन बाँधौ।

कृष्ण के विदा होने पर यशोदा पुत्र वियोग जनित असह्य वेदना के कारण आत्मविस्मृत – सी हो जाती है, वह मथुरा से लौटते हुए नंद को अकेले देख भला – बुरा कहने लगती हैं। पति के प्रति यशोदा के कटु वचन ममता भरे मातृ हृदय की तीव्र वेदना को ही व्यक्त करते हैं।

'जसुदा कान्ह कान्ह कै बूझै।
फूटि न गईं तुम्हारी चारौं, कैसे मारग सूझै।।
इक तौ जरी जात बिनु देखे, अब तुम दीन्हौं फूँकि।
यह छतिया मेरे कान्ह कुंवर बिनु, फटि न भई है टूक।।
धिक तुम धिक ये चरन अहौं पति, अध बोलत उठिधाए।
सूर स्याम विधुरन की हम पै, दैन बधाई आए।

कृष्ण के विरह में यशोदा के हृदय की उत्कंठा, विवशता, दैन्य, चिन्ता, स्मृति आदि भावों की मार्मिक अभिव्यक्ति में सूर को सफलता मिली है। यशोदा ने देवकी को जो संदेश भेजा है, उसमें मातृ हृदयगत वात्सल्य, चिंता, स्मृति आदि की व्यंजना स्वाभाविक ढंग से हुई है :–

'संदेसौ देवकी सौं कहियौं।
हों तो धाय तिहारे सुत की, मया करत ही रहियौ।।
जदपि देव तुम जानति उनकी, तऊ मोहिं कहि आवै।
प्रात होत मेरे लाल लडैंते, माखन रोटी भावै।।
'सूर' पथिक मोहिं रैन दिन, बढ़यैं रहत उर सोच।
मेरों अलक लड़ैतो मोहन, हवै है करत सँकोच।।

सूरदास बाललीलाओं के वर्णन मे बाल मनोविज्ञान के एक पारखी कलाकार के रूप में हमारे सामने आते हैं। इनके बालचित्रों में स्वाभाविकता एवम् सजीवता प्रचुर परिमाण में पाई जाती है। उन्होंने बालक कृष्ण को मानवीय रूप में ही चित्रित किया है। सूरसागर वात्सल्य रस की खान है। एक ऐसा सागर है जिसमें वात्सल्य के न जाने प्रकार प्रकार के अनमोल मोती पड़े हैं। यशोदा के बहाने सूरदास ने मातृ हृदय का ऐसा स्वाभाविक, सरल और हृदयग्राही चित्र खींचा है कि आश्चर्य होता है। सूरदास जहाँ पुत्रवती जननी के प्रेमपलव हृदय को छूने में समर्थ है, वहाँ वियोगिनी माता के करूणा विगलित हृदय को भी उसी सतर्कता से छू सके हैं।

डा० सूर्यकांत ने सही कहा है –

बालमीकि के पश्चात् किसी ने भी बालक के अस्फुट अधरों को नही परखा, उसके विरल गीतों को नहीं सुना, उसके धूल – धूसरित देह प्रसून को नहीं पोंछा और उसे माटी खाने से नहीं हटाया। हजारों वर्षों से रमणी अपने आत्मज को भूल गयी थी, अन्य की पूजा में लगी थी। ....सूर ने उसे फिर एक बार सरलता की प्रतिमा बालक के लालन पालन में लगाया"

4.

सूरदास का वियोग वर्णन

सूरदास श्रृंगार रस के काठी है; इन्होंने मानवीय भावों को पूरी तरह से समझा और उन्हें अपने काव्य में सूक्ष्मता से चित्रित किया। इनका विरह वर्णन में मानवीय भावों की व्यापकता है। इनका वियोग वर्णन सागर की भाँति व्यापकता व गहराई से सुसज्जित है। डॉ० मुंशीराम शर्मा का यह कथन अक्षरशः सत्य है।

"सूर के हृदय की जो धड़कन और तड़पन विप्रलंभ के वर्णन में प्रकट हुई है उसमें मानों समस्त विश्व का हृदय योग दे रहा है।" यह विरह वर्णन इतना व्यापक है कि इसका न तो कोई किनारा है और न कोई हद्‌यो – हिसाम। वियोग की जितनी अंर्तदशाएँ हो सकती है, जितने ढंगों से उन दशाओं का साहित्य मे वर्णन हुआ है और सामान्यतः हो सकता है वे सब उसके भीतर मौजूद है।

काव्यशास्त्र में विरह की ग्यारह अवस्थाएं मानी गई हैं :–

अभिलाषा, चिंता, स्मृति, गुणकथन, उद्‌वेग, प्रलाप, व्याधि, उन्माद, जड़ता, मूर्च्छा, मरण आदि। अकेले भ्रमरगीत में ये सभी अवस्थाएँ देखी जा सकती है। यथा –

'नयन सजल कागद अति कोमल कर अंगुली अति ताती।
परसत जरै विलोकत भीजै दुहूँ भाँति दुःख छाती।।

काण्यशास्त्रीय दृष्टि से सूरकाव्य में गोपियों और कृष्ण का विरह प्रवास जन्य है। कवि का विरह वर्णन तीन रूपों में मिलता है –

1. नंद – यशोदा का वात्सल्यजनित विरह।
2. गोपियों का दांपत्य जनित विरह।
3. नायक कृष्ण का वात्सल्य, दाम्पत्य, जन्मभूमि आदि से उत्पन्न विरह।

1. **नंद यशोदा का वात्सल्यजनित विरह :** वियोग वात्सल्य में सूर ने कृष्ण के मथुरा गमन पर, मथुरा से नंद के लौटने पर तथा मथुरा में कृष्ण के निवास पर बड़ा हृदयद्रावक वर्णन किया है। माँ यशोदा की यह वेदना, चित्त को सीधे चीर देती है :–

   'जसोदा बार बार यों भाखै।
   है कोई ब्रज में हितू हमारौ, चलत गोपालहिं राखै।
   कहा करै मेरे छगन मगन को, नृप मधुपुरी बुलायौ।
   सुफलक सुत मेरे प्रान हनन कौं; कालरूप होई आयौ'।।

कृष्ण के विरह में यशोदा के हृदय की उत्कंठा, विवशता आदि भागों की मार्मिक अभिव्यक्ति की गई है। वह देवकी को संदेश दे रही है :–

'संदेसौ देवकी सौ कहियौं।
हाँ तो धाय तिहारे सुत की, मया करत ही रहियौ।
जदपि हेव तुम जानति उनकी, तऊ मोहि कहि आवै' ।।

xkfi;k dk nkEiR; tfur fojg

सूर की गोपियों का कृष्ण प्रेम साहचर्य पर आधारित हैं। यह किसी की रूपचर्चा सुन या अकस्मात किसी की झलक पाकर नहीं हुआ। यह प्रेम जीवनोत्सव के रूप में है। बाल्यकाल का रागात्मक संबंध न तो आसानी से भूला जात है और न आगे चलकर छोड़ा जा सकता है। यह प्रेम दूर – दूर हृदय मे गहरी जड़े जमा लेता है। इसमें उपदेश व्यर्थ प्रतीत होते हैं। सब कुछ जानने मानने पर भी चित्त कहीं अटका रहता है और व्यक्ति स्वभावतः ही विवश और निरूपाय बनकर रह जाता है। गोपियों की यही स्थिति है –

लरिकाई को प्रेम कहौं, अलि।
कैसे करिके घूटत।

विरह की एक स्थिति होती है – खीझ । यह भाव अपने ही लगने वाले व्यक्ति के प्रति जागृत होता हैं। इसमें प्रिय की उदासीनता या उपेक्षा के विरूद्ध क्रोध सक्रिय रहता हैं और दूसरी और अगाध प्रेमी भी फलतः क्रोध की गुरुता और प्रेम की स्निग्धता से यह मनोभाव जन्म लेता है। गोपियाँ कृष्ण को संदेश भेजती रहती हैं कि वे ब्रज वापिस लौटे, परन्तु वे वापिस नहीं आए। इस खीझ में वे कहती है :–

संदेसनि मधुबन कूप भरे।
अपने तो पठवत नहि मोहन, हमरे फिरि न फिरे।।
जिते पथिक पठए मधुबन कौं, बहुरि न सोध करे।
कै वै स्याम सिखाइ प्रमोधे, कै कहुँ बीच मरे।।

श्याम के बिना गोपियों को कुछ अच्छा नहीं लगता है। प्रियतम के अभाव में सब सूना लगता है।

कहा करौं सुनों यह गोकुल हरि बिनु कछु न सुहाई।
सूरदास प्रभु कौन चूक तै स्याम सुरति विसराई।।

श्याम के बिना रात काली नागिन के समान लगती हैं यथा –

पिया बिनु सांपनि कारि राति।
कबहुँ जामिनी होत सुनहैया उसि उलटी हवै जाति।।

गोपियाँ विरह में इतने संदेश लिखती हैं कि स्याही कागज सब कुछ समाप्त हो गया है। वे रात दिन रोती रहती हैं। तथा आँसुओं के नाले बह रहे हैं :–

'निसि दिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहति पावस रितु हम पर, जब तैं स्याम सिधारे।।

दृग अंजन न रहत निसि बासर, कर कपोल गए कारे।
कंचुकी – पट सूखत नहिं कबहूँ, उर बिच बहत पनारे'।।

नारी की स्थिति विवश व निरुपाय हो जाती है –

"ऊद्धो : और कछु काहवे को ?
सो कहि डालो पा लागो, हम सब सुनि साहबै को"

fojg e! Øk/kko'k & fo'k"kr

सौतिया डाह से प्रेरित – में नारी विनोद करती है, उपालंभ देती है और वाचाल हो जाती है भ्रमरगीत की गोपियों की यही दशा है –

1. **विनोदः** तुम्हे दियो बहराय इते को, वह कुब्जा सौं अटकें।
2. **उपालंभः** 'काहे को गोपीनाथ कहावत।

   जो पै मधुकर कहत हमारे गोकुल काहे न आवत?'
3. **वाचालताः** अपना स्वारथ को सब कोऊ।

   'चुप करि रहौ, मधुप रस लंपट।
   तुम देरपि अरू बोऊ।।'

गोपियों की वियोग दशा का धाराप्रवाह वर्णन हैं, उसमें न जाने कितनी मानसिक दशाओं का संचार उसके भीतर है। उनका विरह वर्णन भी 'बैरिन भई रतियां' तक न रहकर प्रकृति के खुल क्षेत्र के बीच दूर – दूर तक फैला है। कवि ने वृंदावन और उसके विविध उपमानों यथा – यमुना, गाय, बछड़ें, कुंज, वन, कूपवन, चन्द्रमा, मधुवन, बादल, वर्षा आदि न जाने कितने उपमानों का सहारा लिया हैं। इससे एक तो कवि का व्यापार वर्णन बढ़ गया है और दूसरी और उक्ति मे रसात्मकता की वृद्धि हुई है। स्वंय प्रकृति विरह में व्यथित प्रतीत होती है, सच तो यह है कि जिस दिन से कृष्ण गये हैं, उस दिन से मोरों ने वर्षा ऋतु में बोलना तक छोड़ दिया, मृग वंशी – ध्वनि नहीं सुनते और वृंदावन हराभरा नहीं होता। यही नहीं, यमुना तक काली पड़ गई है। यही स्थिति पशुपक्षियों की है। यथा –

'ऊधो! इतनी कहियो जाय।
अति कृसगात भई हैं तुम बिन दुखारी गाय।।
जल समूह बरसत आंखियन ते हूंकत लीने नांव।
परति पछार खाय तेहि तेहि थल अति व्याकुल ह्वै दीन'।।

कृष्ण गोपियों को सांत्वना देने हेतु अपने मित्र ऊद्धव को गोकुल भेजते हैं। उद्धव उन्हें कृष्ण को छोड़कर निर्गुण ब्रह्म की उपासना करने के लिए कहते हैं। तो वे कहते हैं कि हमारे दस बीस मन नहीं हैं।

उनका एक ही मन था जिसे कृष्ण अपने साथ ले गए। उन्हें कृष्ण के दर्शन चाहिए –

'अखिया हरि दरसन की भूखी।
कैसे रहैं रूप रस राँची ये बतियाँ सुन रूखी।
अवधि गनत इकटक मग जोवत तब एसी नहिं सूखी।
अब इन जोग संदेसन ऊधौ अति अकुलाती दूखी।।'

उनका कहना है कि यह उनका दोष नहीं है। मथुरा नगरी ही ऐसी है। जो वहाँ से आता है। वह काला ही आता है।

'विलग जनि मानहुं, ऊधौ प्यारे।
ता मथुरा काजर की कोठरि जे आवहि ते कारे।
तुम कारे, सुफल कसुत कारे, कारे मधुप भंवारे।
तिनके संग अधिक छवि उपजत कमलनैन मनिआरे।।'

गोपियों ने अपने तसौं के माध्यम से उध्द्धव के निर्गुण ब्रह्म को निकृष्ट साबित किया।

सूरदास के काव्य विरह की ग्यारह दशाएं मिलती हैं कुछ प्रमुख दशाएँ निम्नलिखित हैं :–

1. **अभिलाषा :–** 'ऐसे समय जो हरि जू आवहि।
निरखि निरखि वह रूप मनोहर नैन बहुत सुख पावहि।'

2. **स्मृति :–** 'मेरो मन इतनी सूल रही।
वे बतियां छतियां लिखी राखी, जे नंदलाल कहीं।।'

3. **उद्वेग :–** 'तुम्हारी प्रीति किधौ तरवारि।
दृष्टिधार धरि हति नु पहिलै, घायल सब ब्रज नारि।।'

4. **उन्माद :–** 'ऊधो! इतनी कहियो जाय।
अति कृसगात भई है तुम बिन परम दुखारी गाय।।'

5. **मूर्च्छा :–** 'तब तैं इन सबहिनी सच पायों।
जब तैं हरि संदेश तुम्हारौ सुनत तांवरौ आयो।।'

6. **मरण :–** 'अति मलीन बृषभानु कुमारी।
घूटै चिकुर बदन कुम्हलाने, ज्यौ नालिनी हिमकर की मारी।
हरि सदेश सुनि सहज मृतक भई, इक विराहिनी दूजे अति जारी।।'

नायक कृष्ण का वात्सल्य, दामपत्य, जन्मभूमि प्रेम आदि से उत्पन्न विरहै –

कृष्ण गोकुल से मथुरा आ जाते हैं। यहाँ सब कुछ विद्यमान है, परंतु उन्हें अपने बचपन के मित्र गोपियों, यशोदा, नंद बाबा आदि की याद आती है, वे अपने माता – पिता के विषय में कहते हैं :–

"तनक – तनक तै पालि बड़े किए बहुतै सुख दिखलाए।
गोचारन को चलत हमारे पाछे कोसक धाए।।
बहुरि विधाता जसुमति जू के हमहिंन गोद खिलाए।"

कृष्ण को ब्रज की स्मृतियाँ पेरशान कर देती हैं वे अपने मित्र उध्द्धव से कहते हैं :–

'उधो! मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।
हंससुता की संदर कगरी, अरु कुंजन की छाहीं।।
वै सुरभि वै बच्छ दौहनी, खारिक दुहावन जाहीं।
ग्वाल बाल सब करत कुलाहल माचत गहि गहि बाही।।
जबहिं सुरति आवति का सुख की, जिस उमगत, तनु नाहीं।।'

कृष्ण गोपियों की विरह दशा के बारे में उद्धव को बताते हैं तथा शीघ्र गोकुल जाने की सलाह देते हैं :–

'वेगि ही ब्रज जाहु।
सुरति संदेस सुनाय मैटौ वल्लभिन को दाहु।
काम पावक तूलमय तन विरह स्वास समीर।
भसम नाहिंन होत पावत लोचननि के नीर।
अजौं लौ यहि भाँति ह्वै हैं कुछक सजग सरीर।।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सूरकाव्य वियोग श्रृंगार का एलबम हैं। इसमें एक और काव्यशास्त्र में वर्णित दशाएं, उद्धीपन आदि के दृश्य हैं, तो दूसरी ओर खीझ, हठ, मान, उपालंभ, विवशता आदि न जाने कितनी मनःस्थितियों का जीता जागता अंकन उपस्थित है। मूलतः यह विरह प्रवासजन्य है। अकेला भ्रमरगती ही विश्व के श्रेष्ठतम विरह काव्यों में से एक हैं। इनका यह वर्णन स्वाभाविक, मनोवैज्ञानिक, काव्यात्मक तथा पाठक को छूने व तरंगित करने वाला है।

5.

सूरदास की काव्यकला

प्रत्येक कवि भावु होता है और अपने काव्य से दूसरों के हृदय में भी भावोदेक करता है। सूर महाकवि हैं। वे सरल हृदयभक्त थे। इनके द्वारा प्रणीत तीन प्रमाणिक काव्य ग्रंथ हैं – सूरसागर, सूरसारावली और साहित्य लहरी। सूर का समस्त कृतित्व कृष्णाश्रित है। डॉ० हरवंशलाल शर्मा ने लिखा है कि "पिष्टप्रेषित – सी प्रतीत होने वाली कृष्णा कथा मे सूर ने अपने भावरस का सम्मिश्रमण कर कल्पना के दिव्य सांचे में ढलकर उसे इतने सुंदर रूप में जनता के सम्मुख रखा कि वह उनके आराध्य युगल की दिव्य सौंदर्यमयी सफल प्रतिकृति प्रतीत होती हैं।"

dk0;dyk d! nk i{k gkr! g! & Hkkoi{k o dyk i{k

भावपक्ष में कवि की विभिन्न प्रवृतियों को तथा कला पक्ष में भाषाशैली, छंद, अलंकार आदि का विवेचन किया जाता है।

Hkkoi{k

1. **संयोग श्रृंगारः** संयोग का अर्थ है। नायक – नायिका का साथ रहना। सूर – काव्य के कृष्णराधा इसी के आलंबन हैं। दोनों का लरिकाई का प्रेम वृंदावन के हास – परिहास से प्रारंभ होता है। दधिलीला, मुरलीमाधुरी, रासलीला, मानलीला आदि मे विकसित होकर यही प्रेम संयोग की नाना स्थितियों को स्वाभाविक बनाकर मुखर होता जाता है।

2. **वियोग श्रृंगारः** वियोग का अर्थ है – नायक – नायिका का बिछुड़ना। सूर का वियोग संयोग से अधिक स्वाभाविक है। कृष्ण के मथुरा चले जाने के बाद वियोग की दशा का अद्भुत चित्रण किया है। मार्मिकता, स्वाभाविकता और संगीतात्मकता ने इनको रागोत्प्रेरक बना दिया है। उदाहरणार्थ – साहचर्य जानी प्रेम की स्थिति देखिए –

   लरिकाई को प्रेम कहौ अलि, कैसे करिकै छूटे।

विरहान्तर्गत नारी मन का असूया, सपत्नी – ईर्ष्या, खीझ, झुंझलाहट, उपालंभ मान और स्वविवशता आदि स्थितियाँ न जाने कितने रंगरूपों में भरी पड़ी है। यथा –

"ऊधो! और कछु कहिबे के?
सो सहि डालो, पा लागौं, हम सब सुनि सहिबै को"

कृष्ण के वियोग में गोप – गोपिकाएँ के साथ ब्रज की संपूर्ण प्रकृति व्यथित है –

"गोपी, ग्वाला, गाय, गोसुत – सब मलिन बदन, कृत गात।
परम दीन जनु शिशिर–हेम–हत, अम्बु जगत् बिनु पात।

जो कोहू आवत देखत सब, मिलि बूझत कुसलात।
चलन न देत प्रेम आतुर उर, फिरि चरनन लपटात" ।।

3. **वात्सल्य रस :** सूरदास ने कृष्ण के बाल रूप में इतने रंग भर दिये कि हिन्दी में वात्सल्य को अलग रस मानना पड़ा। नांदयशोदा विषयक बाल लीला के पदों में कवि ने इसके भी श्रेंष्ठ रस युक्त चित्र दिए हैं। इनमें मातापिता का पुत्र के प्रति तथा पुत्र का माता – पिता के प्रति वात्सल्य मिलता है। ये अंश एक ओर तो संवादात्मकता, दूसरी ओर बोली की मिठास और तीसरी और अगाध वात्सल भाव के कारण अत्यंत मार्मिक बन गए है।

   यशोदा कृष्ण को पालने में झुलाती है। जब कृष्ण घुटनों के बल चलते हैं तब माँ का हृदय खुशी से भर उठता है –

'किलकत कान्ह घुटुरूवनि आवत।
मनिमय कनक नंद कै आंगन, बिंब पकरिबे धावता।

बच्चे के दूध के दाँत देखकर माँ की प्रतिक्रिया देखिए –

'सुत – मुख देखि जसोदा फूली।
हरषित देखि दूध की दंतियाँ, प्रेम मगन तन की सुधि भूली।'

कृष्ण के माध्यम से कवि ने बालमनोविज्ञान का सूक्ष्मता से चित्रण किया है। वे माखन चुराते है, गोपियों से छेड़छाड़ करते हैं और जब उनकी शिकायत की जाती है तो वे अपनी सफाई देते हैं :–

मोहिं कहती जुबती सब चोर।
खेलत कहूँ रहों मैं बाहिर, चितै रहतिं सब मेरी ओर।
बोलि लेतिं भीतर घर अपने, मुख चुमतिं भरि लेति अंकार।
माखन हेरि देति अपनै कर, कुछ कहि विधि सौं करति निहौरों।

बाल्यकाल में रूठना, मनाना आदि क्रियाओं का सुंदर चित्रण है। कवि ने मातृ हृदय का अदभुत वर्णन किया है। कृष्ण की बाल लीलाओं को देखकर माँ यशोदा फूली नहीं समाती। माता बच्चे की हर हरकत पर प्रसन्न होती है।

"अरबराइ कर पानि गहावत, डगमगाई धरती धरे पैया।
कबहुँ सुंदर बदन विलोकति, उर आनंद भरि लेत बलैया।।
कबहुँ कुल देवता मनावति, चिर जीवहु मैरों कुंवर कन्हैया।
कबहुँ बल के टेरि बुलावति, इहि आंगन खेलौ दोउ भैया"।।

यही माँ, अपने पिछडे बेटे के लिए धाय तक बनने के लिए तैयार है।

'संदेशों देवकी सो कहियो।
हौं तो धाय तिहारे सुत की, कृपा करत ही रहियो।'

रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है –

"वात्सल्य और श्रृंगार के क्षेत्रों का जितना अधिकार उद्‌घाटन सूर ने अपनी बंद आँखों से किया है उतना और किसी कवि ने नहीं। इन का क्षेत्रों का कोना – कोना वे झाँक आये।

HkfDr Hkkouk

सूरदास सगुणोपासक थे। वल्लभाचार्य से भेंट से पूर्व वे दास्य भक्ति करते थे। बाद मे बल्लभचार्य ने इन्हें शुद्धद्वैतवाद पुष्टिमार्ग का अनुयायी बनाया। कवि की भक्ति भावन निम्नरूपों में प्रकट होती है।

1. **प्रेमाभक्ति :** सूर ने गोपियों को प्रेमाभक्ति का आश्रय मानकर उनके माध्यम से प्रेमाभक्ति का प्रतिपादन किया है। भ्रमरगीत की गोपियाँ कृष्ण से अनन्य प्रेम करते हैं। उसे पाने के लिए वे सब कुछ न्यौछावर करने को तैयार हैं। वे स्पष्टतया कहती है –

   नयननि वहै रूप जो देख्यो
   तौ ऊधौ यह जीवन नग को साधु सफल करि लेख्यो।।
   लोचन चारू चपल खंजन, मनोरंजन ह्रदय हमारे।।

   प्रेम की सर्वोत्तम अवस्था है – विरह। गोपियाँ भी कृष्ण के विरह में त्रस्त है। परंतु वे उसे छोड़ना नहीं चाहती –

   "ऊधो। विरहों प्रेम करै।"

2. **सख्य भक्ति :** सख्य भक्ति सखा भाव से की जाती है। 'सूरसागर' में गोप–ग्वाले ऐसे भक्त हैं। गोपियाँ कृष्ण के प्रति सख्य भाव रखती हैं। इनकी संयोगकालीन स्मृतियाँ, कृष्ण का सौंदर्य और गोपियों के उस पर आसक्त होने के विवरण भी उसी की पुष्टि करते हैं –

   'अखियाँ हरि – दरसन की भूखी।
   कैसे रहें रूप रस रांची, ये बतियाँ सुनि रूखी।'

   गोपियों का यह सरब्य भाव भ्रमरगीत में उभरकर आता है। गापियाँ उद्धव व भ्रमर के माध्यम से कृष्णा को उलाहना देती है। वह यह मानती है कि प्रेम के आदान – प्रदान मे सब बराबर हैं :–

   'काहे को गोपीनाथ कहावत?
   जो ये स्याम कूबरी रीझे सो किन नाम धरावत?'

3. **दास्य भवित :** सूददास के विजय संबंधी पदों में दास्य भक्ति का रूप मिलता है। वे कृष्ण से प्रार्थना करते हैं। कि वे उनका उद्धार करें :–

   'अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल
   कामक्रोध को पहिर चोलना कंठ विषय की माल।
   सूरदास की सबे अविद्या, दूरि करौ नंदलाल।।'

   इस भक्ति में कवि अपनी आलोचना, पश्चाताप आदि को व्यक्त करता है तो दूसरी तरफ प्रभु की महिमा का गुणगान करता है।

सूर का काव्य भक्ति और भक्ति रस से परिपूर्ण है जिसको पुष्टिमार्गीय भक्ति से सजाया गया है।

4. **हास्य व्यंग्य :–** 'सूर' में हास्य–व्यंग्य अपनी परिपूर्णता और उच्चकाव्यात्मकता से युक्त रूप में मिलता है। गोपियों की वाचालता, स्पष्टवादिता और केंन्द्राभिभूत गुण ने इसको प्रभावशाली बनाया है तो ह्रदय पीड़ा, नारीमय स्वभाव ने स्वाभाविक व सहज। वक्रोक्ति के सहारे तीक्ष्ण हास्य व्यंग्य उत्पन्न होता है। जैसे :–

'तुम्हे दिये बहराय इतै को, वह कुब्जा सौ अटके।।'

यह हास्य कहीं मार्मिक बन जाता है तो कहीं खीझ, झुझलाहट और नारी सुलभ रोष कटु व्यंग्य बन जाता है। जैसे :–

'जाय कहो बुझि कुसलात।
जाके ज्ञान न होय सो मानै, कहीं तिहारी बात।।
कारों नाम, रूप पुनि कारों, कोर अंग सखा सब बात।
जो भले होत कहुँ करि, तौ कर बदलि सुता लै जात।।'

f'kYi i{k

श्रेष्ठ कवि अथवा उसके काण्य का अर्न्तवाह्य सब कुछ मधुर होता है। सूरदास का काव्य इसी कोटि का है। इनके काव्य की शिल्पगत विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:–

1. **भाषा :–** सूरदास ब्रजभाषा के कवि हैं। यह तत्कालीन जनसमाज की लोकभाषा थी जिसे सूर ने भाषा का नाम दिया –

'सूरदास सोई कहे पद भाषा, करि गाई'

कवि ने ब्रजभाषा की लोकप्रियता शब्दावली का प्रयोग किया है जैसे :–

आंखि, सोई, पतिआरौं, दोऊ, ऐए, मुआल आदि। भाषा को अधिकाधिक स्वाभाविक बनाने के लिए कहीं तोड़ा गया है। जैसे किलकी, मिलकी तो कहीं शब्दों में व्यंजनादि बदल दिए गए हैं। यथा रिसि, रिचा। कवि ने अन्य भाषाओं के शब्दों का भी इस्तेमाल किया है :–

संस्कृत : अंबुज, अधोमुख, कमल, निरालंब, वसुधा, अवज्ञा, करम, पिनारू, राका, गृह आदि तत्सम शण्द।

तद्भवशब्द : भोजन, परतीति, मरजाद, स्वारथ, औसर, कान्ह, पंखी, हियरों, अटारी।

देशजशब्दः करतूति, उकावे, मूंड, लाहा, खोही, छाक, बागरि आदि ।

अरबी – फारसी : तरवारि, दिवासी, दागना, हद, ताख, गुमान आदि।

कुछ पूर्वी व पंजाबी भाषा के शब्दों का प्रयोग किया गया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ठीक ही कहा हैः– 'सूर में चलती भाषा कोमलता है भाषा की स्वाभाविक में बाधा नही पड़ने पाई है।'

सच तो यह है कि भाव सम्राट सूर ने मनोदशा विशेष के चित्रण में भाषा को भाव के समानान्तर लाने के प्रस्तुत्य प्रयास किया है।

2. **मुहावरे – लोकोक्तियाँः** मुहावरों से भाषा की अर्थव्यंजना बढ़ती है। इसके अतिरिक्त, समाज का संचित अनुभव और मनोवैज्ञानिकता जैसे गुण भी इसमें मिलते है। सूर की भाषा इन गुणों से युक्त है। सूर द्वारा प्रयुक्त अधिकांश मुहावरे ब्रजप्रदेश मे प्रचलित रहे हैं। कुछ मुहावरे इस प्रकार हैं।

   गगन के तारे गिनना, चाम के दाम चलाना, एक डार के तोरे, इक दुख दूजे हँसी, जरे पर नारत, पोच करना, धतूरा खाये फिरना, बारह बाने आदि।

   लोकोक्तियों का प्रयोग वचनवक्रता के लिए किया गया है। सूर का लोकोक्ति प्रयोग दो प्रकार से है। प्रथम, इन्होंने इसका सटीक प्रयोग किया हैं –

   "ले आये हो नफा जानि के सबै वस्तु अकरी।
   कहौ कौन पै कढत कनूका जिन अठि भूसी पछोरी"

दूसरे, इन्होने कुछ लोकोक्तियों का निर्माण भी किया है यथा –

1. सूरी के पातन के बदल को मुक्ताहल दै है।
2. सूरजदास दिगम्बर पुर तैं रजक कहा त्यौहाइ।

इन्होने भ्रमरगीत में लोकोक्तियों का अत्यधिक प्रयोग किया है। जैसे :–

"अपने स्वारथ के सब कोउ, अपनी दूध छाड़ि को पीवे खार कूप के वारि"

काकी भूख गई मन जाडू, जे आवें ते कारे, तुमसौ प्रेमकथा का कहिबो मनहु काटिणो घास आदि।

3. **शब्दशक्ति :** सूरदास ने अभिधा, लक्षण व व्यंजना शब्दशक्ति का सशक्त प्रयोग किया है। इन्होंने लक्षण व व्यंजन का अत्याधिक प्रयोग किया है। यथा –

   (क) 'उधो! तुम सब साथी मोरे ।
   मेरे कहे बिलग मानोगे, कोटि कुटिल लैं जोर।'

   (ख) 'प्रकृति जोइ जाके अंग परी।
   स्वान पूंछ कोटिक जा लागै सूधि न काहु कारि।'

4. **संगीतात्मकता :** सूरसागर के सभी पद विविध रागरागनियों से बंधे हुए हैं। उनकी लययुक्त शब्दावली, संक्षिप्त आकार और भाव–परिपूर्णता आदि भी उनकों पूर्णता गेय बना देती है। कवि ने प्रसाद गुण का प्रयोग किया। इन्होंने दंत्य वर्णों की बहुलता और सानुनासिक ध्वनि के संयोग से गेयत्व सधन कर दिया है।

5. **अलंकारः** सूरकाव्य अलंकारों का सागर है। इनके अलंकार स्वाभाविक है। इन्होंने शब्दालंकार व अर्थालंकार दोनों का प्रयोग किया है। सूरदास ने उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, वक्रोक्ति, विभावना, संगति, संदेह आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। उदाहरण :–

   अनुप्रास – 'ऊधो। कोकिल कूजत कानन।'

   वक्रोक्ति – 'मधुकर। त्याग जोग संदेसों'।

   भली स्याम कुसलात सुनाई सुनताहिं भयो अंदेसों।'

   अतिशयोक्ति – 'नयन सजल, कागद अति कोमल, कर अंगुली अति ताती।

   परसत जरै, विलोकन भीजै, दुहं भांति दुख छाती।'

   उत्प्रेक्षा – 'देखियत चहुं दिखि ते धन घोर।

   मानों मत्र मदन के हथियनु बलकरि बंधन तोरे।।'

   सूरदास जब अपने प्रिय विषय का वर्णन शुरु करते हैं तो अलंकारशस्त्र हाथ जोड़कर उनके पीछे – पीछे दौडा करता है।

6. **छंदः** सूर के सभी पद गीतात्मक है। अधिकांश पद षट्पदी है जिनमें सवैया, रोला और छप्पय का स्वतंत्र व मिश्रित रूप मिलता है। कहीं – कहीं लोकछंदों यथा होली, विरवा, कजरी आदि का उदाहरण मिलता है।

7. **वाग्वैदग्धयः** सूरदास में जितनी भावुकता है, उतनी ही चतुरता व वाग्वैदधता भी है। गोपियों के कथनों से यह बात स्पष्ट होती है।

   'संदेसनि मधुबन कूप भरे।
   जो कोउ पथिक गए हैं ह्योत फिरि नहि गवन करे।
   के वै श्याम सिखाय समोधे, कै वे बीच मरे"?

कवि की इसी विशेषता के कारण वे एक वर्ण्य विषय से संबंधित होने पर भी एकरसता का आरोप नहीं लग पाया। गोपियाँ कभी ज्ञानमार्ग के व्यावहारिक पक्ष की कठिनाइयों की ओर संकेत करके तो कभी ज्ञानोपदेश की शैलीगत दुर्बोधता को लक्ष्य करके उद्धव को छकाती है। यही प्रवृत्ति सूर के विनय के पदों और वात्सल्यमय पदों पर सही उतारता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सूरदास अपने ढंग के निराले कवि है। जो सूर कहना चाहते है, वह इतना सुंदरता के साथ कि उसके आगे कहने को कुछ नही रह जाना। जो कुछ सूर ने कहा, वह कहने की इति थी।

6.

व्याख्या

fou;

ऊविगति – गति .... पद गावै ।। 1 ।।

शब्दार्थः अविगति – निराकार, ईश्वर, प्रभु; गति – दिशा; अन्तगत – हृदय में, परम स्वाद अलौकिक अनुभूति, अमित – अनन्त; तोष – प्रसन्नता; अगोचर – इन्द्रियों से परे; जुगति – युक्ति, उपाय; निरालम्ब – आश्रय विहीन, कित – किधर, कहाँ; धावै – दौड़े; तातें – इसलिए।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्य पुस्तक 'काव्य शिखर' के सूरदास के 'विनय' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें सगुण की उपासना करने के आधार को स्पष्ट करते हुए उसका गुणगान किया गया है।

व्याख्या : सूरदास कहते हैं कि निर्गुण निराकार ब्रह्म की दशा के विषय में कुछ कह पाना कठिन है। उनका कहना है जैसे गूंगा गुड़ खा कर उसके स्वाद से प्रसन्न तो हो जाता है, किन्तु उसका वर्णन नहीं कर पाता है उसी प्रकार निर्गुण का उपासक अपूर्व आनन्द तो प्राप्त करत है। ऐसे ब्रह्म का ज्ञान मन तथा वचन से असंभव है, इन्द्रियों से परे है। इसके विषय में वही जानता है, जिसने उस ईश्वर का दर्शन किया है। यह ईश्वर का रूप, रंग, आकार जाति से परे है। इस कारण उसे प्राप्त करने का उपाय भी नहीं दिखता है। इस प्रकार बिना आधार के उस ईश्वर पाने के लिए कहाँ जाएँ, कुछ समझ में नहीं आता है।

अन्त में सूरदास ने स्पष्ट किया है कि निर्गुण ब्रह्म को सब प्रकार से अगम और अप्राप्य समझ कर वे सगुण लीला के पदो का गायन कर प्रसन्न रहते हैं।

विशेषः

1. निर्गुण ब्रह्म की उपासना की कठिनाई व्यक्त की है।
2. सगुण ब्रह्म को सुलभ कह कर याद किया गया है।
3. 'कछु कहत' , 'स्वाद सबीह सु' , 'अगम – अगोचर' , 'रूप रेखा', 'जाति–जुगति' , 'सूर सगुन' में अनुप्रास अलंकार है।
4. गीत रस का आकर्षक परिपाक है।
5. सुन्दर लयात्मकता और गेयता है।

"जा दिन .... जनम गवैहै " ।। 2 ।।

शब्दार्थः पंक्षी – पक्षी, प्राण; तरूवर – पेड़; पात – पत्ता; झरीजैंहैं – गिर जाएंगे; गरब – गर्व; गिध – गिद्ध; कृमि – कीड़ा; विष्टा – मल; खाक – धूल; राख; नेह – प्रेम; घिनैहैं – घृणा करेंगे, सबारे – तुरन्त; बपू – शरीर; भगवन्त – ईश्वर।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्य पुस्तक 'काव्य – शिखर' के 'सूरदास' के 'विनय' शीर्षक पद से ली गई है। इनमें मानव शरीर के क्षणभंगुर होने के तथ्य को स्पष्ट करते हुए ईश्वर भक्ति में मन लगाने की बात कही गई है।

व्याख्याः सूरदास लिखते हैं कि हे मनुष्य जिस दिन तुम्हारे शरीर से प्राण रूपी पक्षी उड़ जाऐंगे, उस दिन तुम्हरे संबंध रूपी सभी पत्ते झड़ जाऐंगें। इस क्षणभंगुर शरीर पर गर्व नहीं करना चाहिए क्योंकि इसे गीदड़, कौवे और गिद्ध खाएंगे। मृत शरीर मिट्टी में दबा दिया जाएगा, कीड़े खाएंगे और अंत में मल बन जाएगा। यदि शरीर जलाया गया, तो राख या धूल बन कर उड़ेगा। इसके बाद शरीर की वह चमक, वह सौन्दर्य रूप–रंग सब गायब हो जायेगा। जिन लोगों से प्रेम रहता रहा है, वे ही देख कर डरेंगे। मौत के पश्चात घर के ही लोग तुरन्त निकालने के लिए कहते हैं और यह भी कहते हैं यदि घर से तुरन्त न निकाला गया, तो भूत बन कर घर वालों को तंग करता रहेगा। जिन पुत्रों पर सबसे ज्यादा विश्वास किया जाता रहा है और उनके लिए देवी–देवता की पूजा की जाती थी, वे ही बांस से खोपड़ी को फोड़ते हैं। इसलिए हे मूर्ख, जितना समय बीत गया उसकी चिन्ता छोड़ कर आगे सज्जनों की संगति करो, उन्हीं से कुछ मिल सकता है। यदि मानव शरीर पाकर भी भगवान का भजन न किया, तो मौत ही तुम्हे अवश्य गले लगा लेगी। सूरदास कहते हैं कि दुर्लभ मनुष्य शरीर भी भगवान के भजन बिन निरर्थक हो जाऐगा। इसलिए भगवान का भजन अवश्य करें।

विशेषः

1. अटल भक्ति भावना का चित्रण है।
2. मानव जीवन की नश्वरता का चित्रण है।
3. भारतीय संस्करों में अन्तिम संस्कार का संदर्भ है।
4. 'मन–पंक्षी', 'तन–तरूवर' आदि में रूपक अलंकार है।
5. 'तेरे तन तरूवर', 'रंग रूप', 'सतसंगति संतनि' आदि में अनुप्रास अलंकार है।
6. या देही ....खाक उड़ै" है में वीभत्स रस है।
7. पद में शांत रस का सुन्दर परिपाक है।
8. आकर्षक गेयता और लयात्मकता का स्वरूप है।

"प्रभु है .... को नी को"।। 3 ।।

शब्दार्थः पतितन – पतितों; जनमत – जन्म से ही; बधिक बध करने वाला; तारों – उद्धार किया; मोहि – मुझे, छाँडि – छोड़कर; उधारे – उद्धार किया; जी – हृदय; समरथ – समर्थ, अंध–पाप; मरीमत – मरता है।

संदर्भ – प्रसंग : प्रस्तुत पद पाठ्य पुसतक 'काव्य – शिखर' के 'सूरदास' के 'विनय' शीर्षक से लिया गया है। इसमें भक्त अपने भगवान को उद्धार करने के लिए निवेदन करता है।

व्याख्याः सूरदास कहते हैं, हे प्रभु, मैं संसार के सभी पतितों में सबसे बड़ा पतित हूँ। सारे पतित कुछ दिनों के हैं किन्तु मैं तो जन्म से ही पतित हूँ। सुना है आप ने अजामिल, बधिक गणिका और पूतना

आदि पतितों का उद्धार किया है। आपने मुझे छोड़कर अन्य पतितों का कल्याण किया है यह सोचकर मेरे मन में बहुत कष्ट हैं। मैं पूरे दावे से कह रहा हूँ कि आपने जितने पतितों का उद्धार किया है, वे सभी मेरे सामने बहुत कमजोर पतित हैं। सूरदास कहते हैं: हे पतितपावन, मैं लज्जा से मरा जा रहा हूँ कि सबसे बड़ा पतित होने पर भी मेरा उद्धार नहीं हो पा रहा है।

विशेषः

1. भक्ति भावना का आकर्षक रूप है।
2. सूर की अद्‌भुत अभिव्यंजन का स्वरूप है।
3. 'पतितन को टीकौ', 'दिवस चार के', 'जी को सूल', 'खैंचि कहत लीको', मरीयत लाज आदि मुहावरों का आकर्षक प्रयोग है।
4. ब्रज भाषा का सरल और मधुर रूप है।
5. आकर्षक गेयता और लयात्मकता है।
6. आराध्य की उपासना है।
7. सूक्ष्म भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति है।

"अब मैं नाच्यौं .... करो नन्दलाल" ।। 4 ।।

शब्दार्थ : पहिरि – पहनकर; चोलना – वस्त्र; नूपुर – घुंघरू; रसाल – मीठे; पखावज – मृदंग; तृष्णा – प्यास; कटि – कमर; फैंटा – लुंगी; भाल – मस्तक; कोटिक – करोड़ों; नन्दलाल – कृष्ण

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत पद पाठ्य पुस्तक 'काव्य शिखर' के 'सूरदास' के 'विनय' शीर्षक से लिया गया है। इसमें सांसारिक मोह माया से परेशान भक्त ईश्वर – कृपा का अभिलाषी है। वह अविद्या नाश के लिए ईश्वर का सानिध्य चाहता है।

व्याख्याः सूरदास कहते हैं कि हे प्रभु इस संसार के चक्कर में पड़ कर बहुत परेशान हो चुका हूँ। काम और क्रोध तो कपड़े की तरह पहन चुका हूँ। विषय – वासना गले में लटक गई है। छूटती ही नहीं है, सांसारिक मोह सदा अपनी और खींचती रहती है, दूसरों की बुराई (निंदा) में बहुत ही मजा आता है। भ्रम में डूबा मन सदा उड़ता रहता है ओर सदा ही गलत रास्ते का ही राही बनता है। अनेक प्रकार की प्यास शरीर को नचाती रहती है। माया तो अधोवस्त्र की तरह शरीर की शोभा बन गई है और लोभ को अपनी विशेषता मान कर सिर पर तिलक की तरह शोभा – बिन्दु बना लिया है। इस प्रकार करोड़ों कलाएँ सामने आती है। और जल थल का ज्ञान भी खो गया है। सूरदास बहुत संकट में हैं और अपने आराध्य भगवान कृष्ण को इन अविद्याओं से मुक्त कर ज्ञान देने की विनती करते हैं।

विशेषः

1. भक्ति – भावना का प्रबल रूप है।
2. आत्म ग्लानि के साथ निवेदन का आकर्षक भाव है।
3. काम – क्रोध, 'कोटि कला काछि' में अनुप्रास अलंकार है।

4. मुहावरों का सतत प्रयोग है।
5. ब्रज भाषा का आकर्षक स्वरूप है।
6. शांत रस का परिपाक है।
7. सुन्दर लयात्मकता और गेयता है।

मेरा मन .... कौन दुहावै ।। 5 ।।

शब्दार्थ : अनत – अन्यत्र; जहाज – पृथ्वी; पच्छी – पक्षी, महातम – महिमा; गंग – गंगा; पियासौ – प्यासा; दुरमति – मूर्ख; कूप – कुआ; मधुकर – भौंरा; तजि – छोड़कर; छेरी – बकरी।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्य पुस्तक 'काव्य – शिखर' के 'सूरदास' के 'विनय' के पद से ली गई हैं। इनमें भक्त द्वारा अपने आराध्य प्रभु के गुणसम्पन्न रूप की चर्चा करके उनके प्रति अटल भक्ति दर्शाई गई है।

व्याख्या : सूरदास कहते हैं कि मेरा मन प्रभु के चरणों के अतिरिक्त कहीं ओर लगता ही नहीं है। जिस प्रकार पक्षी धरती से उड़कर आसमान की और जाता हैं और अंत में वापस धरती पर आ जाता है। कमलनयन प्रभु कृष्ण की महिमा के सामने किसी देव की याद आती ही नहीं है। कौन ऐसा बुद्धिहीन व्यक्ति होगा, जो पतित पावनी गंगा के पास रहकर कुंए का निर्माण कराएगा। जिस भँवरे ने कमल के मनमोहक रस का स्वाद ले लिया है वह जंगली कहुए फल करोल को क्यों चखेगा। सूरदास ने स्पष्ट किया है कि जिसके पास कामधेनु गाय होगी वह बकरी के दूध की इच्छा क्यों करेगा अर्थात् भगवान कृष्ण पर ही अपनी अटल भक्ति रखेंगे। उनका मन अन्यत्र कहीं जा ही नहीं सकता है।

विशेषः

1. अटल भक्ति का स्वरूप है।
2. 'मेरो मन', 'क्यों करील' में अनुप्रास अलंकार है।
3. 'उडि जहाज ....आवै', 'परमगंग ....खनावै', 'जिहिनधुकर ....फलमावै', 'कामधेनु .... दुहावै' कहावतों का आकर्षक प्रयोग।
4. ब्रजभाषा का सुबोध प्रयोग।
5. उत्तम लयात्मकता और गेयता है।

"हमारे प्रभु .... जात टरौ ।। 6 ।।

शब्दार्थ : औगुन – अवगुण, बुराई; समदरसी – सब को समान दृष्टि से देखने वाला; इक – एक; पारस – वह पत्थर जिसके छूने से लोहा सोना बन जाता है, नार – नाला, बिगरौ – बिगड़ गया; प्रन – प्रण; टरौ – खत्म होना, हट जाना।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत पद पाठ्य पुस्तक 'काव्य शिखर' के 'सूरदास' के 'विनय' शीर्षक से लिया गया है। इसमें प्रभु से याचना की गई है कि बिना बुराई देखे अपनी शरण में ले लीजिए।

व्याख्या : सूरदास कहते हैं कि हे प्रभु, मै धरती का ही प्राणी हूँ और आप का भक्त हूँ इसलिए मेरी कमियों को ध्यान न दीजिए। आपका नाम समदर्शी है। सबका हित समान रूप से करते हैं अतः मेरा उद्धार कीजिए। वह भगवान को पारस पत्थर के रूप याद करता है कि पारस पत्थर बधिक के घर के लोहे और एक पूजा में प्रयुक्त होता हैं, दोनो जब पारस पत्थर से छूते हैं तो सोना बन जाते हैं। पारस पत्थर, दोनो में अन्तर नहीं करता है। पानी नदी में और नाले में भी बहता है। दोनो जब गंगा में मिलते हैं तो सब गंगा ही हो जाते है। सूरदास कहते हैं कि ब्रह्मांश – शरीर की आत्मा माया से मिल कर बिगड़ गई है। आप पतित पावन हैं। इसका उद्धम कीजिए, अन्यथा आपका 'पतित पावन' नाम निरर्थक सिद्ध हो जाएगा।

विशेषः

1. अनूठी भक्ति भावना का चित्रण है।
2. दैन्य भक्ति का स्वरूप है।
3. सूर का वाक्‌चातुर्य है।
4. 'कंचन करत' में अनुप्रास अलंकार है।
5. दृष्टांतों का प्रभावी प्रयोग है।
6. ब्रज भाषा का मधुर रूप है।
7. अनुकरणीय गेयता और लयात्मकता है।

"चकई री .... की आस ।। 7 ।।

शब्दार्थः चकई – चकोरी, जीवात्मा; चरन–सरोवर – प्रभु चरण रूपी सरोवर; निसा – रात्रि सामर – सागर, ईश्वर; निमिष – पल; निगम – वेद; बिहंगम – पक्षी; सोमित – शोभित; सुहात – अच्छा लगना; आश – आशा।

संदर्भ – प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश पाठ्य पुस्तक 'काव्य – शिखर' के 'सूरदास' के 'विनय' के पदों से लिया गया है। इसमें प्रभु के महिमा मंडित सानिध्य की चर्चा की गई है। भक्त का मन प्रभु के श्री चरणों में रम गया है।

व्याख्या : सूरदास कहते हैं कि हे जीवात्मा रूपी चकोरी तुम प्रभु के पावन चरणों रूपी सरोवर में विहार के लिए चलो, जहाँ पर वियोग की छाया नहीं होती है। वहाँ पर भ्रमरूपी रात कभी नहीं आती ऐसा ईश्वर रूपी सागर का अतल जल है। वहाँ पर सनकादि ऋषि, शिव आदि देवता रूपी हंस मुनि रूपी मछलियाँ और प्रभु के श्री चरणों के नख की चमक रूपी सूर्य विद्यमान है। वहाँ भक्त रूपी कमल सदा खिले रहते हैं। वहा चन्द्रमा अर्थात् माया का एक पल के लिए भय नहीं रहता है। वहाँ भक्त रूपी भ्रमर सदा वेद – ध्वनि उच्चारण करते रहते हैं। इस सरोवर में शुभ कर्मों के फल आधार पर

अमृत रस का पान करते हैं। उस सरोवर को छोड़कर मूर्ख रूपी पक्षी, संसार के मायावी आंगन में विचरण करते हैं।

सूरदास कहते हैं कि भगवान वहाँ लक्ष्मी सहित विहार करते है। अब मुझे यह मायावी संसार नहीं सुहाता है और उसी महिमा मंडित समुन्द्र की आश है।

विशेषः

1. ईश्वर के प्रति अनन्य भक्ति है।
2. अन्योक्ति का आकर्षक रूप है।
3. 'चरन – सरोवर', 'भ्रम – निशा' आदि में रूपक अलंकार है।
4. ब्रज भाषा का सरल सहज रूप है।
5. प्रसाद, माधुर और ओजगुण सम्पन्न शैली है।
6. भक्ति रस का सुन्दर परिपाक है।
7. सूक्ष्म भाव की स्पष्ट अभिव्यक्ति है।

cky &yhyk

जसोदा ही .... अभिनि पावै" ।। 8 ।।

शब्दार्थः पालने – झूला; हलरावे – टिलावें; दुलराइ – दुलार करे; निदरिया – नींद; सुवावै – सुलाओं; बंगिही – जल्दी; सैन – इशारा; इहि अन्तर – इसी बीच; दुरलभ – दुर्लभ, भमिनी – पत्नी।

संदर्भ – प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश पाठ्य पुस्तक 'काव्य – शिखर' के 'सूरदास' के 'बाल लीला' शीर्षक से लिया गया है। इसमें कृष्ण के बाल रूप की लीला का मनमोहक चित्रण किया गया है।

व्याख्या : भक्ति काल के महान कवि सूरदास लिखते हैं कि बालक कृष्ण पालने में लेटे हुए हैं। माता यशोदा खुश होकर झुला रहीं है। ऐसे में कभी हिलाती है, कभी दुलारती है। तो कभी थपकी देते हुए मनमोहक गीत गाती हैं। वे नींद को बुलाती हुई कहती है कि आकर मेरे बालक कृष्ण को सुला दो। "तू जल्दी आ जाओं, कृष्ण तुम्हे बुला रहा हैं अर्थात वह सोना चाहता है।" बालक कृष्ण कभी तो आँखें बंद कर लेते है, कभी होठों को फड़फड़ाने लगते हैं। जिससे माता यशोदा समझे कि बालक सो गया है। कृष्ण को सोता समझ कर यशोदा चुप रहती है और सभी से संकेत में ही बात करती है। इसी बीच बालक कृष्ण एकाएक हडबड़ा कर आकुल हो जाते हैं, तो यशोदा उन्हें पुनः सुलाने के लिए मधुर – मधुर लोरी गाने लगाती है।

सूरदास कहते हैं कि जो सुख सुर और मुनियों को भी दुर्लभ है, वह यशोदा माता को सहज रूप में मिल रहा है।

विशेषः

1. कृष्ण की मधुर बाल लीला का वर्णन है।
2. वात्सल्य का सहज – स्वाभाविक चित्रण है।
3. वात्सल्य रस का आकर्षक परिपाक है।
4. 'सुख – सूर' में अनुप्रास अलंकार है।
5. 'कणी – कणी' में पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार है।
6. ब्रजभाषा का आकर्षक रूप है।
7. सुन्दर गेयता और लयात्मकता है।

"कर पग .... पगु खेलत" ।। 9 ।।

शब्दार्थः कर – हाथ; गहि – पकड़कर; मेलत – डालते हैं; पौढ़े – लेटे हैं; विधि – ब्रहना; वट – अक्षयवट, कल्पवृक्ष विड़ी – उमड़कर, भव – संसार; सहसों – सहस्र; सकट – शकट

संदर्भ – प्रसंग : प्रस्तुत पद पाठ्य पुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'सूरदास' के 'बाल–लीला' शीर्षक से लियाा गया है, इस पद में बालक कृष्ण की अलौकिक और अनूठी लीला का वर्णन किया गया है। उनकी यह लीला शिव और ब्रह्मा को भी सोचने के लिए विवश करती है।

व्याख्याः सूरदास बालक कृष्ण की आश्चर्य चकित करने वाली लीला का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि कृष्ण अपने हाथों से पैर का अंगूठा पकड़ कर मुँह में डाल रहे हैं। वे झूले में अकेले लेटे हुए हैं और अपने में मस्त होकर खेल रहे हैं। इनकी इस अनोखी लीला को देख कर शिव विचार करने लगे हैं, ब्रह्म तर्क – वितर्क में खो गए हैं, कल्पवृक्ष विस्तार पा गया है। सागर में ज्वार की ऊँची – ऊँची तरंगे उठ रही हैं। आसमान के बादल प्रलय की आशंका से बिखर गये हैं। दिशाओं के स्वामी दिशाओं के हाथियों को इकट्ठा करने में लग गए हैं। मुनिगण मन में भयभीत हो गए हैं, शेषनाग के सहस्र फन कंपने लगे हैं इससे संसार कंपायमान हो गया है। गोकुल वासियों को भी इस रहस्य का पता नहीं चल रहा है, भक्त सूरदास समझ गए हैं कि यह आन्दोलन इसलिए दिखाई दे रहा है कि कृष्ण ने शकरासुर राक्षस को मारने के लिए अपना पैर उठा लिया है।

विशेषः

1. अनोखी बाल – लीला का वर्णन है।
2. कृष्ण के दृश्य रूप का चित्रांकन है।
3. शंकट असुर के प्रसंग की स्पष्ट प्रस्तुति है।
4. वात्सल्य रस का परीपाक है।
5. ब्रज भाषा का सरल रूप है।

6. 'प्रभु पौढ़े पालनै' 'दिगपति दिग – दंतीति' 'समुझे सूर संकट' में अनुप्रास अलंकार है।
7. 'हरषि – हरषि' में पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार है।

"शोभित कर ....कल्प जिये" ।। 11 ।।

शब्दार्थः नवनीत – मक्खन; घुटुरून – घुटनों के बल; रेनु – धूल; मण्डित – सुशोभित; दधि – दही; चारू – सुन्दर; कपोल – गाल; लोल – चंचल; मत्त – मस्त; मधुप – भँवरे; केहरि – शेर; नख – नाखून; रूचिर – सुशोभित; सत – सैकड़ों।

संदर्भ – प्रसंग : प्रस्तुत पद्य पाठ्य पुस्तक 'काव्य – शिखर' के 'सूरदास' के 'बाल – लीला' से लिया गया है। इसमें बालक कृष्ण की सहज और मनोहारी लीलाओं का सुन्दर चित्रण किया गया है।

व्याख्याः सूरदास ने कृष्ण की बाल – सुलभ लीलाओं का वर्णन करते हुए लिखा है कि वे हाथों में मक्खन लिए हुए बहुत ही सुन्दर लग रहे हैं। जब वे धरती पर घुटनों के बल चलते हैं तो शरीर की शोभा धूल लगने से बढ़ जाती है और मुख पर लगा हुआ दही उनकी सुन्दरता को और बढ़ा देता है। सुन्दर गाल, चंचल आँखे और मस्तक पर गोरोचन का तिलक बहुत सुन्दर लग रहा है। माथे पर लटकती हुई ऐसी लगती है मानों भवरों का समूह मुख की मादकता को पीने के लिए मँडरा रहे हैं। माता यशोदा द्वारा किसी की नजर न लगे इस हेतु पहनाए गई गले से लटकती कंठी और शेर का नख ह्रदय पर सुशोभित है।

सूरदास भगवान कृष्ण के इस मनमोहक रूप को एक पल देखकर सैकड़ों कल्प वाले जीवन को इस पर न्योछावर कर देते हैं।

विशेषः

1. सहज और स्वाभाविक बाल – चित्रण है।
2. वात्सल्य रस का अपूर्व रूप है।
3. 'लोल लोचन', 'लर लरकनि', 'मानों मत मधुप', 'मादक मदहि', 'कठुला कंठ', 'राजत रूचिर' आदि में अनुप्रास अलंकार है।
4. 'लट लटकनि मानो मत्त मधुप ....पिये' में उत्प्रेक्षा अलंकार है।
5. ब्रजभाषा का मधुर रूप है।
6. अनूठी गेयता, लयात्मकता है।

"सिखवत चलत ....बालक नंदरैया" ।। 11 ।।

शब्दार्थ : मैया – माता; अरबाइ – अचानक; पानि – हाथ; धरनी – धरती; पैंया – छोटे छोटे पैर; बिलोकति – देखती है; बलैया – संकट से मुक्ति की कामना; टेरि – जोर से आवाज देना; इहि – इस; चिरजीवों – चिरंजीवी

संदर्भ – प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश पाठ्य पुस्तक 'काव्य – शिखर' के सूरदास के 'बाल–लीला' से लिया गया है। इसमें कृष्ण की बाल सुलभ लीला का वर्णन है। माता यशोदा के सम्मुख कृष्ण की बाल लीला का मनमोहक रूप है।

व्याख्याः सूरदास अपने आराध्य बाल कृष्ण की लीला के विषय में लिखते हैं कि यशोदा माता बालक कृष्ण को चलना सिखा रही हैं। अपना हाथ कृष्ण के हाथों में देखकर उन्हें आगे बढ़ने का संकेत करती हैं तो वे अपने नन्हें – नन्हें पैरों को लड़खड़ाते हुए आगे बढ़ते है। माता बालक कृष्ण के सुन्दर मुख को देख कर मुग्ध हो जाती हैं और किसी की नज़र न लगे, इसलिए ईश्वर से ऐसी कामना करती है। कभी बलराम को आवाज देकर बुलाती है कि आ जाओ और दोनों भाई मिलकर इस आँगन में खेलों। माता यशोदा कभी अपने कुलदेवता से प्रार्थना करने लगती है, कि हे इष्ट देव, मेरा बालक कृष्ण चिरंजीवी बने ऐसा आर्शीवाद दो।

सूरदास कहते हैं कि नन्द का यह प्रतापी बालक हर तरह से सुखदायक है।

विशेषः

1. बालक कृष्ण का अद्‌भुत रूप है।
2. वात्सल्य रस का सुन्दर परिपाक है।
3. 'धरनी धरैं', 'बदन बिलोकति', 'कबहुँक कुल', 'सब सुखदायक' में अनुप्रास अलंकार है।
4. ब्रजभाषा का सहज सरल रूप है।
5. अद्‌भुत गेयता और लयात्मकता है।
6. मातृ – भावों का मार्मिक चित्रण है।
7. भक्ति का अनुकरणीय रूप है।

"हरि अपने .... मन भावत" ।। 12 ।।

शब्दार्थः कछु – कुछ; तनक तनक – छोटे छोटे; रिझावत – खुश करते हैं; धौरी – सफेद; काजरी – काली; गैयन – गाय; नावत – डालते है; लवनी – मक्खन; भावत–अच्छे लगते हैं।

संदर्भ – प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश पाठ्य पुस्तक 'काव्य शिखर' के 'सूरदास' के 'बाल–लीला' से प्रस्तुत है। इसमें बालक कृष्ण की सहज गतिविधियों का मनमोहक चित्रण किया गया है। ऐसी बाल लीला को देखकर माता यशोदा धन्य हो रही है।

व्याख्याः सूरदास ने कृष्ण की बाल–लीला का वर्णन करते हुए लिखा है कि कृष्ण अपने आँगन में मस्त होकर गा रहे हैं। अपने छोटे – छोटे पैरों की थिरकन के साथ नाच भी रहे हैं और मन ही मन गद्‌गद हो रहे हैं। अपने हाथों को ऊपर उठा कर अत्यन्त प्रेम भाव से काली और सफेद गायों को आवाज देकर बुला रहे हैं। कभी वे बाबा नन्द को बुलाते हैं और कभी घर में चले जाते हैं। अपने छोटे – छोटे हाथों से थोड़ा सा मक्खन उठाकर अपने मुँह में रखते हुए बालक कृष्ण बहुत अच्छे लगते हैं। वे कभी खंभें मे अपनी छाया देख कर उसे मक्खन खिलाते हुए बहुत अच्छे लगते हैं। यशोदा माता दूर से ही यह सारी बाल लीला देख कर मुग्ध हो जाती है और उनके हृदय में खुशी का सागर उमड़

पड़ता है। सूरदास लिखते हैं कि कृष्ण की यह बाल लीला नित प्रति देख कर मन मुस्कराता रहता है।

विशेषः

1. सूर की अपूर्ण भक्ति भावना है।
2. वात्सल्य रस का सुन्दर परिपाक है।
3. 'तनक – तनक' में 'पुररूक्ति प्रकाश' अलंकार है।
4. ब्रजभाषा का आकर्षक रूप है।
5. सुन्दर गेयता और लयात्मकता है।

: i & yko.;

"देख सखी .... पावत पार || 13 ||

शब्दार्थः चोरत – चुराता है; कटाच्छ – कटाक्ष; विवि – दोनों; निरखत – दिखाई देना; अहिनी – नागिन; मलयज – चंदन; गंग – गंगा; जमुन – यमुना; सोभा – शोभा।

संदर्भ – प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश पाठ्य पुस्तक "काव्य – शिखर' के 'सूरदास' के 'रूप–लावण्य' से लिया गया है। इसमें कृष्ण के माधुरी रूप के प्रभाव का सुन्दर चित्रण किया गया है।

व्याख्याः सूरदास कृष्ण के मोहन रूप की गंभीर चर्चा गोपियों के मुख से कराते हैं। राधा अपनी सखिओं से कहती है कि सखी देखों कितना मोहक है इसीलिए मन को चुरा लिया है। मेरा मन उन्हीं में लगा रहता है। उनकी तिरछी चितवन मन को मोह लेती है। उनकी घूमती हुई दोनों भौंहें बहुत अच्छी लगती है। उनके मस्तक पर लगा चन्दन का तिलक देखकर अपूर्ण आनन्दानुभूति होती है। मस्तक पर उभरता अर्ध चन्द्र ऐसे लगता है मानों मुखचाँद से शीतलता चुराने के लिए नागिन आ गयी है। मस्तक का चन्दन – तिलक और दोनों तिरछी भौंहों की रेखाएँ देख कर ऐसा लगता है जैसे गंगा और यमुना तिरछी धार बहा रहीं है। सूरदास लिखते हैं कि गोपियों का कहना है कि उनकी भृकुटि की सुन्दरता को शोभा को समुद्र भी नही पा सकता है, सूरदास कृष्ण के स्वरूप की चर्चा करके अति प्रसन्न हैं।

विशेषः

1. भक्ति भावना का आकर्षक रूप है।
2. अनुकरणीय चित्रात्मकता है।
3. 'मानहुं अर्ध ...." 'मनों एकसंग ....' दोनों पंक्तियों में उत्प्रेक्षा अलंकार है।
4. 'भाल भृकुटि', 'सोमा सागर' में अनुप्रास अलंकार है।
5. श्रृंगार का आकर्षक चित्रण है।

6. ब्रजभाषा का सरल रूप है।

7. सुन्दर लयात्मकता है।

"सोभा सिंधु ....लाइ गहीरी ।। 4 ।।

शब्दार्थः सोभा – शोभा; लहीं – मिलना; बीथिनु – गलियाँ; सहसहुँ – हजारों; जसुमति – यशोदा; उर – हृदय; गही – पकड़ी

संदर्भ प्रसंगः प्रस्तुत पद पाठ्य पुस्तक 'काव्य शिखर' के 'सूरदास' के 'रूप लावण्य' से लिया गया है। इसमें कृष्ण के अलौकिक सौन्दर्य की चर्चा की गई है। ऐसे आकर्षक सौन्दर्य की ओर सभी मोहित हैं।

व्याख्याः सूरदास कृष्ण के सौन्दर्य का पान कर तृप्त होना चाहतें है। उन्होंने लिखा है कि राधा अपनी सहेलियों को संबोधित करती हुई कहती है, हे सखी, श्री कृष्ण के रूप – सागर का वर्णन कर पाना असंभव है। उनके सौन्दर्य का प्रभाव नन्द के आंगन से निकल कर ब्रज की गलियों में फैल गया है। अर्थात् श्री कृष्ण जिधर निकलते हैं उधर सौन्दर्य की अनूठी छटा फैल जाती है। आज ब्रज की गलियों में दही बेचते हुए उनके सौन्दर्य को देखा है। उस सौन्दर्य का वर्णन मैने कई तरह से करना चाहा है। मेरा विश्वास है उस अनूठे सौन्दर्य का वर्णन हजारों मुख भी नहीं कर सकते हैं। यशोदा माता के आन्तरिक सौन्दर्य से ही श्री कृष्ण को यह अनुपम सौन्दर्य मिला है। ऐसा ही विचार अनगिनत लोगों से सुना है।

सूरदास का कथन है कि मनमोहन कृष्ण इन्द्र नीलामणि के समान हैं। इसी सौन्दर्य ने गोपियों के मन को मोह लिया है।

विशेषः

1. रूप – सौन्दर्य का आकर्षक चित्रण है।
2. 'सोभा सिन्धु', 'बनाई बहुत बिधि', 'ब्रज बनिता' में अनुप्रास अलंकार है।
3. घर – घर पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार है।
4. ब्रज भाषा का सुबोध रूप है।
5. आकर्षक बिम्ब विद्यमान है।
6. अनूठी गेयता है।
7. श्रेष्ठ लयात्मकता है।

ejyh & ek/k;l

जब हरि .... सुखहिं लहव ।। 5 ।।

शब्दार्थः अधर – ओष्ठ; खग – पक्षी; जूथ – समूह; मदन – कामेदव; तृन – तिनका, तनिक – थोड़ा।

संदर्भ – प्रसंग: प्रस्तुत पद पाठ्य पुस्तक 'काव्य शिखर' के 'सूरदास' के 'मुरली–माधुर्य' से लिया गया है। इसमें मुरली की ध्वनि पर सारा संसार मोहित होते हुए दिखाया गया है।

व्याख्या: सूरदास ने मुरली की महिमा का गुणगान करते हुए लिखा है कि कृष्ण जैसे ही मुरली को अपने होठों पर रख कर स्वर निकालते हैं। सारा वातावरण मोहित हो उठता है। उनकी प्रथम ध्वनि से आस–पास की स्थिर वस्तुएँ गतिशील हो जाती हैं और गतिशील वस्तुएँ स्थिर हो जाती हैं। पवन की गति भी मंद पड़ जाती है। उस सुरीली ध्वनि को सुन कर यमुना का जल स्थिर हो जाता है। उनकी मुरली की ध्वनि इतनी मोहक है कि पक्षी मोहित हो जाते हैं। मृगों का झुंड भ्रमित हो जाता है। कामदेव भी इनके सौन्दर्य के समक्ष फीके पड़ जाते हैं। जानवर भी मोहित होकर देखते रह जाते है, सुरभी भी थक कर रुक जाती है। पशु जो भी घास मुंह में लिए रहते हैं वह वैसे का वैसा मुँह में रुक जाता है। मुरली की ध्वनि सुनकर शुक्रदेव और सनकादि सभी मुनि मोहित हो जाते है। उनका ध्यान पूर्ण रूपेण टूट जाता है। उन्हे ध्यान लगान कठिन हो जाता है। सूरदास कहते हैं कि वे सब बहुत भाग्यशाली है, जो वंशी की ध्वनि सुनकर मस्त हो रहे हैं।

विशेष:

1. भक्ति भावना की सुन्दर अभिव्यक्ति है।
2. वंशी – ध्वनि की महिमा प्रदर्शित है।
3. 'जमुना जल', 'सुन सनकादि सकल' में अनुप्रास अलंकार है।
4. पूरे पद में अतिशयोक्ति अलंकार है।
5. ब्रज भाषा का सरल, बोधगम्य रूप है।

"मुरली तऊ .... सीस हुलावति

शब्दार्थ : भावति – अच्छी लगती है; पाइ – पैर; जनावति – प्रकट करती है; कनौड़े – कृतज्ञ; आपुन – अपने आप; पौढ़ि – लेटकर; पलुटावति – दबवाती है, कुटिल – टेंढ़ी; नसा – नासिका; कोप – क्रोध; डुलावति – धुमाती है।

संदर्भ – प्रसंग : प्रस्तुत पद्य पाठ्य पुस्तक 'काव्य – शिखर' के 'सूरदास' के 'मुरली–माधुर्य' से लिया गया हैं। इसमें मुरली की महिमा दर्शाई गई है। मुरली पर श्री कृष्ण किस प्रकार मोहित है? इसका मार्मिक चित्रण किया गया है।

व्याख्या: सूरदास लिख रहे हैं कि गोपियों के द्वारा कृष्ण की मुरली–आसक्ति पर विचार व्यक्त किया जा रहा है। हे सखी मुरली लगातार श्री कृष्ण को अनेक प्रकार से नचा रही है। फिर भी वह उन्हें बहुत प्यारी लगती है। वह उन्हें एक पैर पर खड़ाकर अपना एकाधिकार प्रकट करती है। जब कृष्ण वंशी बजाते हैं तो एक पैर पर खड़े होते हैं। श्री कृष्ण का शरीर कोमल है। इसलिए टेढ़ा हो जाता है। उन्हें उसकी आज्ञा का पालन करना पड़ता है। श्री कृष्ण को कृतज्ञ समझ कर उनकी गर्दन भी टेढी करा देती है। कृष्ण जब वंशी बजाते हैं तो तृभंगी रूप हो जाता है। एक पैर पर खड़े होते हैं, कमर और गर्दन आपस में विपरीत दिशा में टेढ़ी हो जाती है। वंशी तो उनके ओठों की सेज पर लेट जाती है और कृष्ण अपनी उंगलियाँ उस पर ऐसे फेरते रहते हैं, मानों शरीर दबवाती है। ऐसे में हम पर टेढ़ी भौंहो , नसा–पुट से क्रोध प्रकट करवाती है।

सूरदास लिखते हैं कि गोपियों पर एक भी क्षण की प्रसन्नता देख कर उनका धड़ दूसरी और घुमवा देती है।

विशेषः

1. मुरली महिमा का चित्रण है।
2. गोपियों की वंशी के प्रति ईर्ष्या–भाव है।
3. 'नंदलालहि नाना', 'अति अधीन', 'नार नवावति', 'नैन – नासिक', 'कोप करावति' में अनुप्रास अलंकार है।
4. अक्षर–पल्लव, अधर–सज्जा में रूपक अलंकार है।
5. सुन्दर गीतात्मकता है।
6. ब्रज भाषा का सरल रूप है।

feyu

"खेलत हरी ....परी ठगोरी ।। 17 ।।

शब्दार्थः निकरने – निकले; कटि – कमर; सुवननि – कान; दसन – दाँत; रवि तनया – यमुना; लसति – सुन्दर लगती है; विशाल – बड़ी; औचक – अचानक; रोरी – गोली; फरिया – लहंगा की भाँति वस्त्र; लरिकिन – लड़कियाँ; इत – इधर; ठगोरी – ठगे से रहना

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत पद पाठ्य पुस्तक 'काव्य – शिखर' के 'सूरदास' के 'मिलन' शीर्षक से लिया गया है। इसमें श्री कृष्ण और राधा के प्रेम भरे मिलन की प्रेरक चर्चा है। दोनों एक दूसरे पर मोहित हो गये हैं।

व्याख्याः सूरदास कहते हैं कि कृष्ण खेलते – खेलते ब्रज की गलियों की ओर निकल गए हैं। वे पीताम्बर को कमर से बांधे हुए हाथ में लट्टू और उसकी डोरी लिए हुए हैं। उनका मन मोहिनी रूप मोर के पंख लगे मुकुट, कानों में कुंडल और चमकते हुए दाँतों से बिजली की चमक मात कर रही है। श्याम वहाँ से घूमते – घूमते यमुना तट पहुँच जाते हैं। उनके शरीर से चंदन की सुगंध चारों ओर फैल रही थी। अचानक राधा उनके सामने आ गई, उनकी बड़ी – बड़ी आँखें और मस्तक पर लगी रोली देखते ही बनती थी। नीलवस्त्र और कमर से फरीया पहने हुए बालों की चोटी पीठ पर मचलती हुई उनकी शोभा को कई गुना बढ़ा रही थी। कम उम्र की गोरी राधा लड़कियों के साथ खेलती – खेलती इधर निकल आयी थी। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण ने इस गोरी को देखा और देखते ही मोहित हो गए। जब दोनों की आँखें आपस में मिली, तो दोनों ठगे से एक दूसरे को देखते रह गए।

विशेषः

1. कृष्ण – राधा प्रेम का मार्मिक चित्रण है।
2. 'मोर मुकुट', 'दसन, दमक दामिनी', 'सूर स्याम' आदि में अनुप्रास अलंकार है।

3. 'नैन – नैन' में पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार है।
4. श्रृंगार रस का सुन्दर परिपाक है।
5. ब्रजभाषा का आकर्षक रूप है।

"बूझत श्याम .... राधिका मोरी ।। 18।।

शब्दार्थः बूझत – पूछते हैं; काभी – किसकी; पौरी – दरवाजे; स्रवननि – कानों; ढोटा – बेटा; सिरोमनि – श्रेष्ठ; भुराइ – बहका लेना

संदर्भ – प्रसंग : प्रस्तुत पद पाठ्य पुस्तक 'काव्य शिखर' के 'सूरदास' के 'मिलन' शीर्षक से लिया गया है। इसमें राधा और कृष्ण के प्रेम संदर्भ का चित्रण किया गया है।

व्याख्याः सूरदास ने कृष्ण और राधा के प्रथम मिलन पर एक दूसरे से संवाद करते हुए प्रस्तुत किया है। कृष्ण ने राधा से पूछा कि ये गोरी तुम्हारा परिचय क्या है? तुम कहाँ रहती हों, किसकी बेटी हो, मैंने आज तक तुम्हे ब्रज की गलियों में भी नहीं देखा है। राधा ने उत्तर में कहा कि मैं ब्रज की गलियों में क्यों आऊँ, मैं तो अपने आँगन में ही खेलती रहती हूँ। मैंने तो यह सुना है कि नन्द का बेटा दही और मक्खन की चोरी करता फिरता रहता है। यह सुनकर कृष्ण ने कहा मै तुम्हारी क्या चीज चोरी कर सकता हूँ। आओ साथ – साथ मिलकर खेलें । सूरदास लिखते हैं कि रसिक श्रेष्ठ कृष्ण कन्हैया ने बातों – बातों में भोली राधा को बहका लिया ।

विशेषः

1. कृष्ण – राधा मिलन का सहज वर्णन है।
2. श्रृंगार रस का सुन्दर परिपाक है।
3. संवादक शैली का मधुर प्रयोग है।
4. ब्रज भाषा का सहज, बोधगम्य रूप है।
5. आकर्षक गेयता और लयात्मकता है।

Hkej xhr

"उद्धव! बेगि .... बिनु मीनु ।। 9 ।।

शब्दार्थ : बेगि – शीघ्र; जाहु – जाओ; बललमिन – गोपियां; दाहु – दाह, विरह की आग; पावक – आग; तूलमय – रूईसी; समीर – हवा; मसम – भस्म; तिय – स्त्री; धीर – धैर्य; प्रवीन – चतुर; मीन – मछली।

संदर्भ – प्रसंग : प्रस्तुत पद पाठ्य पुस्तक 'काव्य – शिखर' के 'सूरदास' के 'भ्रमर गीत' शीर्षक से लिया गया है। इसमें गोपियों की विरह – कथा को दूर करने के लिए कृष्ण इस उद्धव को ब्रज भेजने की योजना बनाई गई है। कृष्ण उद्धव को शीघ्र ब्रज जाने के लिए प्रेरित कर रहे हैं।

व्याख्याः सूरदास लिखते हैं कि श्री कृष्ण उद्धव को यथाशीघ्र ब्रज गमन के लिए प्रेरित करते हुए कहते हैं। हे उद्धव! तुम बहुत जल्दी ही ब्रज के लिए प्रस्थान करो। ब्रज की गोपियाँ विरह में दुःखी हो रही है उनको मेरा संदेश दे कर उनका कष्ट दूर करो। उनका रूई सम हल्का शरीर विरह की तपन और विरह श्वास से जलने को है, किन्तु आँखों से लगातार बहती हुई आँसू से जलने से बच जाता हैं। इसी तरह उनका शरीर अब तक कुछ चैतन्य हैं। यदि ऐसी विपरीत अवस्था में उन्हें सान्त्वना न दी गई तो उनका धैर्य टूट सकता है। तुम मेरे चतुर सखा हो, इस विषय में और अधिक क्या बताऊँ। तुम्हें स्वंय विचार कर निर्णय लेना चाहिए कि पानी की मछली पानी के अभाव मे कैसे जीवित रह सकती हैं।

विशेषः

1. गोपियों के विरह संदर्भ की उद्धव से चर्चा है।
2. गोपियों के प्रेम का चित्रांकन है।
3. वियोग श्रृंगार रस का सुन्दर परिपाक हैं।
4. 'सुरति संदेश सुनाय' , 'सुर सुमति' आदि में अनुप्रास अंलकार है।
5. ब्रजभाषा का सरल स्वरूप है।
6. अनुकूल आकर्षक लयात्मकता है।

"गोकुल सबै .... तजै गुनरासी" ।। 20 ।।

शब्दार्थ : उपासी – उपासक; बसत – रहते हैं; धरननि – चरणों की; रस रासी – रस में डूबी; गरासी – ग्रसित; गुनरासी – गुण का खजाना।

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्य पुस्तक 'काव्य शिखर' के सूरदास के 'भ्रमरगीत' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें कृष्ण के मथुरा चले जाने और उद्धव के गोकुल आने के बाद ब्रज की विरही स्थिति का मार्मिक चित्रण किया गया है।

व्याख्याः सूरदास ने कृष्ण के मथुरा चले जाने के बाद गोपियों के द्वारा ब्रज की स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा गया है। कृष्ण के अभाव में सारा गोकुल उदास हो गया है। उद्धव के द्वारा योग – साधना की बात कहने पर गोपियाँ स्पष्ट करती हैं कि योग साधना करने वाले शिव नगरी काशी में निवास करते हैं। हमारे लिए योग साधना बेकार है। यद्यपि कृष्ण हमें छोड़ कर अनाथ बना गए हैं किन्तु हम तो उनके चरणों की ही दासी है। जिस प्रकार चाँद को राहु ग्रस अवश्य लेता हैं, किन्तु चाँद अपनी शीतलता नहीं छोड़ता है। इसी प्रकार हम सब विरह में घायल है, किन्तु कृष्ण प्रेम – में अटल है। हमसे क्या भूल हुई है, कि उन्होंने प्रेम–भजन को छोड़ कर योग साधना के लिए लिखा है। सूरदास लिखते हैं कि कृष्ण के प्रेम की विरहणी गोपियाँ कहती है कि कौन प्रेम वियोगनी होगी जो गुण सम्पन्न कृष्ण को छोड़ कर मुक्ति चाहेगी अर्थात् ऐसा कोई नहीं चाहेगी। गोपियाँ कृष्ण – प्रेम नहीं छोड़ सकती हैं।

विशेषः

1. गोपिया की विरह दशा का मार्मिक चित्रण है।
2. पिलंभ श्रृंगार चित्रण है।
3. ब्रज भाषा का बोधगम्य मधुर रूप है।
4. आकर्षक लयात्मकता और गेयता है।
5. गोपियों का वाक्‌पटुता का चित्रण है।

"विलग जनि .... गुन न्यारे" ।। 21 ।।

शब्दार्थ : विलग – विपरीत, बुरा; जनि – न; कोठरि – कोठरी; सुफलकसुत – अक्रूर; मनिआरे – मणिधर; पखारे – धोए; कालिंदी – यमुना; न्यारे – अनोखा।

संदर्भ – प्रसंग : प्रस्तुत पद पाठ्य पुस्तक 'काव्य – शिखर' के 'सूरदास' के 'भ्रमरगीत' से लिया गया है। इसमें उद्धव के गोकुल पहुँच कर गोपियों को उपदेश देने पर गोपियों की उलाहना की मार्मिक प्रस्तुति है। उनका कहना है कि उद्धव का कोई दोष नहीं है। मथुरा काली नगरी है, वहाँ से जो आएगा वह काला ही होगा।

व्याख्या : हे उद्धव ! तुम हम गोपियों की बात को अन्यथा न लेना। तुम तो मथुरा से हमें उपदेश देने आये हो। मथुरा तो काली नगरी है। वहाँ से जो भी आएगा वह काला ही होगा। तुम काले, अक्रूर काले और भँवरे भी काले हैं। उनके साथ कमलनैनी श्याम भी सर्वाधिक आकर्षक और मनमोहक है। श्याम तो मणिधर सर्प के समान हैं उन्होंने अपने दंश से हम सब को बेहोश कर दिया है। मुझे तो ऐसा लगता है। इन लोगों को काले घड़े से निकाल कर यमुना नदी में धोया गया है। इसीलिए यमुना का पानी भी नीला हो गया है।

सूरदास लिखते हैं कि गोपियों का कथन है कि इन काले लोगों की यही विशेषता है कि ये स्वंय काले और दुःखी है दूसरों को काला और दुःखी कर देते है।

विशेषः

1. विपलभ श्रृंगार का चित्रण है।
2. गोपियों की वाक्‌पटुता की प्रस्तुति है।
3. 'काजर की कोठरी' , 'सूर स्याम' में अनुप्रास अलंकार है।
4. 'मानहुँ नीज .... पखारे' में उत्प्रेक्षा अलंकार है।
5. ब्रज भाषा का सहज रूप है।
6. श्रेंष्ठ लयात्मकता और गेयता है।

"अखियाँ हरि .... है। सूखी ।। 22 ।।

शब्दार्थ : दरसन – दर्शन; राँची – हुई; रूखी – सूखी; इकटक – लगातार देखना; जोवत – इन्तजार करना; झूखी – दुखी; पय – दूध; पतूखी – पत्तों का दोना; सिकत – रेत

संदर्भ – प्रसंगः पस्तुत पंक्तियाँ पाठ्य पुस्तक 'काव्य – शिखर' के सूरदास के 'भ्रमरगीत' से ली गई है। इसमें गोपियों की हृदयस्पर्शी वियोग – दशा का चित्रण है। वे उद्धव के संदेश के बाद भी बाद भी एक बार कृष्ण का दर्शन करना चाहती है।

व्याख्या : सूरदास लिखते है कि उद्धव के आगमन पर गोपियाँ कहती है कि हे उद्धव, हमारी आँखे अपने प्रभु के दर्शन की प्यासी हैं जो उनके रूप को देखकर मस्त रहती थी वे इन रूखी योग की बातों को कैसे सह पाएंगी। तुम्हारे योग के संदेश से मन और आँखें विह्वल हो रही हैं। तुम से प्रार्थना है कि एकबार, बस केवल उस कान्हा का वह रूप अवश्य दिखवा दो, पत्तों के दोनों में दूध दुह कर पीते हुए।

सूरदास लिखते हैं कि गोपियाँ उद्धव से निवेदन करती हैं कि यह नदी सूख चुकी है, इस रेत में नाव चलाना तुम्हारी जिद्द ही होगी। अर्थात् हम सब योग – साधना के रेत के टीले के समान हैं, जिसमें इसको कोई स्थान नहीं मिल सकता है।

विशेषः

1. गोपियों का कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम है।
2. विप्रलंभ शृंगार का सुन्दर चित्रण है।
3. 'पय पियत' और 'सूर सिकत' में अनुप्रास अलंकार है।
4. ब्रज भाषा का बोधगम्य रूप है।
5. आकर्षक लयात्मकता और गेयता है।

"निर्गुण कौन ....मति नासी ।। 23 ।।

शब्दार्थः सौंह दे – सौगन्ध देकर, बूझति – पूछती है; साँच – सत्य बात; वरन – वर्ण, रंग; वासी – निवासी; गाँसी – कपट की बात; नासी – नष्ट हो गई; मति – बुद्धि

संदर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्य – पुस्तक काव्य – शिखर के सूरदास के 'भ्रमर गीत' प्रसंग से उद्द्धत की गयी हैं। इस प्रसंग में कृष्ण के मथुरा प्रवास तथा गोपियों की विरहावस्था का मार्मिक वर्णन किया गया है। उद्धव ब्रज आकर गोपियों को निर्गुण ब्रहन का उपदेश देते हैं। इस पर गोपियां उद्धव से निर्गुण ब्रहन परिचय पूछती हुई उनकी हँसी उड़ा रही हैं, इसी प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए सूरदास जी कहते हैं कि –

व्याख्या : गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि जिस निर्गुण ब्रह्म की चर्चा आप इतनी देर से किए जा रहे हैं, ज़रा उसका परिचय तो बता दीजिए। बताइये कि उसका निर्गुण ब्रह्म किस देश का वासी है। हम तो अपने ब्रह्म के स्थान से परिचित हैं और आपको उसकी सभी गतिविधियों से परिचित कर सकती हैं

क्या आप हमें उसका कुछ परिचय बतायेंगे? हम आप की हंसी नही कर रहीं है। हे मधुकर! तुम हमें अपने निर्गुण ब्रह्म का परिचय प्रसन्न मन से हँस–हँस कर दो हम उससे परिचय कराना चाहती हैं। यह बात सच्ची है, हम आपको बना नहीं रही हैं। बताइये कि आप के ब्रह्म का पिता कौन हैं? उसकी माँ कौन है? उसकी पत्नी तथा दासी कौन है? किस तरह का वर्ण है अर्थात् गोरा है या काला है ? तथा यह किस रस में आनन्द लेता है अर्थात उसका कार्य व्यापार कैसा है? वे उद्धव को सचेत करते हुए कहती हैं कि यदि उद्धव तुम हमें अपने ब्रह्म का सही परिचय न देकर इधर – उधर की बात करोगे तो समझ लो तुम खुद ही पाप के भागी बनोंगे अर्थात तुम्हें अपने किए का फल भुगतना पड़ेगा। सूरदास जी कहते हैं कि गोपियाँ के इस सहज प्रश्न उत्तर दे सकने में असमर्थ उद्धव ठगे से रह गये और उनकी सारी बुद्धि नष्ट हो गयी।

विशेषः

1. विप्रलंभ श्रृंगार रस का सुन्दर परिपाक किया गया है।
2. गेयता का गुण विद्यमान हैं।
3. ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग है।
4. 'समुकाय सौंह' 'की कहियत कौन' में अनुप्रास अलंकार हैं।
5. सुन्दर गेयता और लयात्मकता है।

"बिनु गोपाल .... ज्यों गंजै ।। 24 ।।

शब्दार्थः बैरिन – दुश्मन; कुंजै – लताएँ; विषम – भयंकर; पुंजै – समूह; धनसार – कपूर; दधिसुत – चाँद; भंजै – मून देती है; लुंजै – अपंग कर देना; बरन – रंग; गुंजै – गुंजा, घुंघची।

संदर्भ – प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्य पुस्तक 'काव्य – शिखर' के सूरदास के 'भ्रमरगीत' से ली गई है। इसमें गोपियों की विरह व्यथा का हृदय स्पर्शी चित्रण किया गया है। सारा वातावरण उनकी विरह को उद्दीप्त करता हुआ दिखाई देता है।

व्याख्या : सूरदास कहते हैं कि कृष्ण के मथुरा चले जाने और उद्धव के द्वारा उन्हें भुला कर योग – साधना करने के संदेश से उनका विरह अत्यन्त कष्ट दायक हो गया है। बिना गोपाल के ये लताएँ जो आनन्दित करती रही है। अब दुश्मन की तरह कष्ट देने लग गई हैं। तब ये लताएँ मन – मस्तिष्क को शीतलता प्रदान करती हैं। अब तो ये भयंकर ज्वाला उत्पन्न करने वाली बन गई है। पहले सारा वातावरण अच्छा लगता था, अब तो यमुना का बहना, पक्षियों का बोलना, कमल का खिलना और भंवरों का गुंजन सब कुछ निरर्थक प्रतीत होता हैं। शीतलता प्रदान करने वाली, हवा, पानी, कपूर संजीवनी, चांद आदि अब तो सूर्य की तपती किरणों के समान कष्टदायक हो गए हैं। गोपियाँ उद्धव से प्रार्थना करती है कि जाकर कान्हा से कहो कि विरह की दूरी से वार कर हम सब को क्यों घायल कर रहे हैं ? सूरदास लिखते है कि गोपियाँ कहती हैं कि मोहनी मूर्ति की प्रतीक्षा में अंखिया इतनी दुःखी हो गई है कि इनका रंग गुण फल की तरह रक्तिम हो गई हैं।

विशेषः

1. गोपियों की विरह – व्यथा का मार्मिक चित्रण है।

2. विप्रलम्भ शृंगार चित्रण है।
3. प्रकृति का उद्दीपन रूप है।
4. 'लता लगति', 'पवन पानि', 'मानु भई भुंजै' में अनुप्रास अलंकार है।
5. ब्रज भाषा का आकर्षक रूप है।

"ऊधौ मन .... करेंगी सोम" ।। 25 ।।

शब्दार्थः सिधारे – गए; नातरू – नहीं तो; ल्याए – लाए; पठाए – भेजे, सपथ – शपथ

सन्दर्भ – प्रसंगः प्रस्तुत पद पाठ्य पुस्तक 'काव्य – शिखर' के 'सूरदास' के 'भ्रमरगीत' से लिया गया है। इसमें वाक्पटु गोपियाँ अपने प्रेम के गंभीर भाव के समक्ष उद्धव को हस्तप्रभ कर देती हैं। उनकी विरह का मार्मिक रूप सामने आता है।

व्याख्याः सूरदास ने गोपियों विचारों को अपने शब्दों में व्यक्त करते हुए लिखा है – हे उद्धव, मन मेरे हाथ में नहीं है। जब कृष्ण ब्रज से मथुरा की ओर गए, उसी समय हमारा मन भी रथ पर बैठ कर साथ – साथ ले गए। अन्यथा तुम्हारे द्वारा इतनी गंभीर इच्छा से लाए गए योग को हम अवश्य अपना लेती । हम सबको तो कृष्ण की करतूत पर विशेष दुःख हो रहा है कि हमारा मन तो स्वंय ले कर चले गए और योग को यहाँ भेजा है।

हे उद्धव यदि हमें अपना मन मिल जाए, तुम ऐसा कुछ उपाय करो, तो निश्चय ही शपथ खा कर, हम सब कह रही हैं कि तुम जो भी कहोगे वही करूंगी।

विशेषः

1. गोपियों की वाक् पटुता का आकर्षक रूप है।
2. विप्रलंभ शृंगार है।
3. 'सूर सपथ', 'कहाँ – करेंगी' में अनुप्रास अलंकार है।
4. ब्रज भाषा का सरल और बोधगम्य रूप है।
5. प्रसाद, माधुर्य और ओजगुण सम्पन्न शैली है।
6. आकर्षक लयात्मकता और गेयता है।

r|y lhnk l

जन्मः 1532 ई० मृत्युः 1623

l eh{kk

1.

गोस्वामी तुलसीदास का साहित्यिक परिचय

भगवान राम के पावन चरित्र वर्णन से जहां तुलसी ने आत्मकल्याण किया वहां उन्होंने भारतीय समाज, संस्कृति एवं धर्म का वह उपकार किया है जो आज तक भी हिन्दी का साहित्यकार नहीं कर सका। निःसंदेह ठीक ही है।

भारी सब सागर में उतारतै कौन पार,
जो पै यह रामायण तुलसी न गावतो।।

thou&o`r

पन्द्रह सौ चौउन बिसे, कालिंदी के तीर, श्रावन शुक्ला सप्तमी, तुलसी धरयौ शरीर। इस दोहे अनुसार इस महाकवि का जन्म बाँदा जिले के राजापुर नामक स्थान में सन् 1490 ई० में हुआ था। पिता का नाम पं० आत्माराम तथा माता का नाम हुलसी था। ये सरयू पारीण बाह्मण थे। जल श्रुति के अनुसार अभुक्त मूल वदात्र पैदा होने के कारण माता–पिता ने इन्हें त्याद दिया था। इधर से उधर भटकते हुए आथ बालक तुलसी का बाबा नरहरिदास ने पालन–पोषण किया, गुरु मंत्र दिया तथा इन्हें संस्कृत का अध्ययन कराया। इसके पश्चात् ये काशी चल गए, वहां विधिवत् शास्त्रों का अध्ययन किया और वहां से फिर राजापुर लौट आये। दीनबंधु पाठक की कन्या रत्नावली के साथि इनका विवाह हुआ। इनकी अनुपस्थिति में मायके चले जाने पर जब ये भी पत्नी के पीछे वहाँ पहुँच गए तब रत्नावली की ज्ञान पूर्ण वाली ने तुलसी के नेत्रों को सदैव के लिए खोल दिया। शब्द ये थे–

अस्थि चर्म मय देहमय, ता में जैसी प्रीति,

तैसी जो श्री श्राम में, होति न तब भय भीति।।

प्रभाव यह हुआ कि तुलसी ने गृह त्याग कर संन्यास धारण कर लिया और काशी चले गए। वहां रहकर फिर शास्त्रों का मंथन किया और साथ–साथ पर्यटन भी। रामेश्वर, जगन्नाथ, अयोध्या, चित्रकूट, मथुरा आदि सभी तीर्थों का परिभ्रमण किया। फिर अयोध्या, आकर इन्होंने अपने विश्व–विश्रत महाकाव्य 'रामायण' की रचना प्रारम्भ की। कुछ समय पश्चात् ये काशी चले गये और प्रहलाद घाट पर रहने लगे। यहीं इनके इस महाकाव्य की परिसमाप्ति हुई। यहीं रहकर दोहावली, विनय पत्रिका आदि ग्रन्थों

की भी रचना की। यहीं रहते हुए सन् 2623 ई० में इस महापुरुष का स्वर्गवास हुआ। मृत्यु के संबंध में यह दोहा प्रसिद्ध हैः–

सम्वत् सोलह सो असी, असी गग के तीर।

श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यौ शरीर।।

jpuk;s

तुलसीदास जी ने सवा सौ वर्ष का दीर्घ जीवन प्राप्त किया था। यही कारण है कि इतने अधिक समृद्धिशाली साहित्य से हिन्दी की रिक्त प्राय गोद को भरने में समर्थ हो सके। तुलसी का समस्त जीवन साहित्य–साधना एवं कष्टों का जीवन था। रचनायें इस प्रकार हैः–

1. रामचरित्रमानस
2. गीतावली
3. कृष्ण गीतावली
4. दोहावली
5. कवितावली
6. रामाज्ञा प्रश्नावली
7. वैराग्य संदीपनी
8. पार्वती मंगल
9. रामलता नहछू
10. जानकी मंगल
11. हनुमान बाहुक
12. विनय पत्रिका

dk0;xr fo'ks"krk,¡

भाव–तुलसी का काव्य लोक–कल्याण की चार पवित्र भावनाओं से प्रेरित है। सर्वप्रथम–भक्ति भावना, द्वितीय–समाजिक आदर्शो की स्थापना, तृतीय–धार्मिक समन्वय, चतुर्थ–दासता से मुक्ति का संदेश।

HkfDr&Hkkouk

तुलसी की भक्ति अनन्य भाव को भक्ति थी। ये स्मार्त वैष्णव और विशिष्टाद्वैतवादी थे। राम उनके जीवन सर्वस्व है। अपने ईष्टदेव भगवान राम के पावन चरित्र, उन्ही महानता और विशालता तथा अपनी दीनता और दास्य भाव का विशद एवं विस्तृत, कल्याणकारी एवं मनोहारी वर्णन किया है। तुलसी की अनन्यता इससे अधिक क्या हो सकती है। कि जिस देवता से यदि कुछ माँगा भी तो यही माँगा कि राम मेरे मन में निवास करे :–

'माँगत तुलसीदास कर जोरे, बसहिं राम सिय मानस मोरे' तुलसीदास की दीनता और अनन्यता अपने स्थान पर अद्वितीय है, कितना भी कठोर स्वामी क्यों न हो सेवक की इन बातों से जरुर पिघल जाएगा।

रावरे को दूसरो न द्वार राम दया धाम।
रावरी ही गति बले, विभव विहीन की।।

lkekftd vkn'kZ dh LFkkiuk

तत्कालीन समाज की स्थिति अस्त–व्यस्त एवं अव्यवस्थित हो चुकी थी। तुलसी ने मर्यादा पुरूषोत्तम राम का अनुकरणीय आदर्श चरित्र समाज के आगे रखा। समाज को स्वस्थ एवं सुनियंत्रित बनाने के लिए राम के आदर्श चरित्र के माध्यम से समाज का नीति निर्देश एवं पथ–प्रदर्शन किया। लोक मंगल की भावना सें ओतःप्रोत तुलसी का काव्य मानव–जीवन के अनन्त कर्तव्यों से भरा पड़ा है जिससे समाज आज भी नियन्त्रित और अनुप्रणित हो रहा है।

/kkfeZd leUo;

तुलसी महान समन्वयवादी थे। विश्रृंखलित समाज में उस समय धर्म का स्वरूप विकृत होता जा रहा था। अनेकों वाद, सम्प्रदाय और मत मतान्तर पारस्परिक विद्वेष और धृणा फैला रहे थे। इस वैषय को दूर करने के लिए तुलसी ने अपने काव्य में बड़ा बुद्धिमतापूर्वक सभी को एक दूसरे से मिलाने का और पास लाने का सफल प्रयत्न किया।

nklrk ls eqfDr dk lans'k

विदेशी विजेताओं ने भारत में जमकर अपना राज्य स्थापित कर लिया था। जन नायक के अभाव में जनता राह भूले राहगीर की भाँति भटक रही थी, मुक्ति का मार्ग दूर–दूर तक दिखाई न देता था। तुलसी ने इस अभाव की पूर्ति की। जनता को संगठन और सुसंगठित शक्ति का महान संदेश दिया।

भाषाः तुलसी की भाषा अवधी एवं ब्रज है। राम चरित मानस अवधी भाषा में तथा विनय पत्रिका, कवितावली, दोहावली, गीतावली आदि ब्रज भाषा में लिखित काव्य है। इनकी दोनों भाषाएं भावों को प्रकट करने में पूर्णतया समर्थ है। संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग किया गया है। कहीं अरबी और फारसी के सरल शब्द भी पाए जाते है। शब्द चयन व्यवस्थित है। भाषा में अपूर्व प्रवाह है। भाषा ओज, प्रमाद और माधुर्य गुणों से युक्त है।

शैली तुलसी ने अपने समय तक हिन्दी काव्य जगत् में प्रचलित समस्त शैलियों में विद्वता पूर्वक रचना करके सभी शैलियों का प्रतिनिधित्व किया है। भिन्न–भिन्न शैलियाँ तथा रचनाएँ इस प्रकार है।

1. चन्द की छप्पय शैली–कवितावली में।
2. कबीर की दोहा शैली–कवितावली में।
3. सूर की पद शैली–गीतावली तथा विनयपत्रिका में।
4. जायसी की चौपाई शैली–कवितावली में।
5. रहीम की बरवैशैली–बरवै रामायण में।
6. मोहर शैली–ग्राम्य एवं लोकगीतों में।

j l] NUn o vy/dkj

महाकवि तुलसी के काव्य में सभी रसों का सफल एवं सुन्दर परिपाक हुआ है। परन्तु प्राधान्य करूण और शान्त रस का है। तुलसी का शृंगार अत्यन्त मर्यादित एवं शिष्ट है। संयोग शृंगार की एक झलक पात्र देखिए–

"राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछाही, याते सवैं सुध भूलि गई कर टेक रही पल टरति नाहीं।।" छन्द योजना तुलसी की अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक है। इन्होने युग की प्रचलित सभी शैलियों एवं छन्दों का प्रयोग अपने काव्य में किया था। परन्तु दोहा, चौपाई कविता सवैया तथा पद तुलसी को अधिक प्रिय थे।

तुलसी को अलंकारों की चिंता नहीं थी। इन्हें सच्चे भाव की आवश्यकता थी। इस पर भी जहाँ आप की दृष्टि जाएगी वहाँ आपको कोई न कोई अलंकार अवश्य मिल जाएगा। तुलसी के काव्य में अलंकार भावों के पीछे–पीछे सहायक बनकर चले है। फिर भी उपमा, रूपक, सांगरूपक, उत्प्रेक्षा आदि का स्वाभाविक एवं सफल प्रयोग दर्शनीय है।

2.

तुलसीदास की भक्ति भावना

तुलसीदास सगुणोपासक रामभक्ति थे। उन्होंने युगधर्म को पहचाना और गुण की आवश्यकतानुसार राभक्ति का आदर्श प्रस्तुत किया। वे व्यक्तिगत मोक्ष के साथ ही लोक–कल्याण के भी अभिलाषी थें। इनकी भक्तिभावना की निम्नलिखित प्रवृतियां दृष्टिगोचर होती है।

1. अनन्य प्रेम
2. पूर्ण समपर्ण
3. निष्कामना
4. धर्म के प्रति स्वभाविक प्रवृति
5. आलंबन में अनंत सौदयर्य, शील व शक्ति की प्रतिष्ठा।
6. नवधा भक्ति

vuU; ize

तुलसी राम के अनन्य भक्त है। राम उनके लिए माता। पिता, गुरु, स्वामी, सखा आदि सब कुछ है। उन्होनें तों स्पष्ट ही कहा है कि मेरे तेरे अनेक नाते है, जो अच्छा लगे, वह मान ले। उनकी तो मान्यता ही यह है। कि ''जाउँ कहाँ तजि चरन तिहारे'' अथवा जरि जाइ सों जीह जो जाँचत औरे।''

अनन्य प्रेम का आदर्श गोस्वामीजी ने चातक प्रेम को लक्ष्य करते हुए उन्होंने सुंदर उक्तियां कही है।

एक भरोसो एक बात एक आस बिस्वास।
एक राम धनश्याम हित चातक तुलसीदास।।' (दोहवली)

उनकी सुदृढ़ धारणा है।

'मति रामहिं सों गति रामहिं सों रति राम सों रामहिं को बल है।
सब की न कहै तुलसी के मते इतनो जगजीवन को फलु है।। (कवितावली)

i.kZ leiZ.k

प्रभु के महत्व के नाना रूपों और अपने लधुत्व की अनुभूति से उत्पन्न अनेकोनेक भाव तरंगों की स्थिति परस्पर बिंब प्रतिबिंब भाव से स्थित रहती है, फलतः लधुत्व महत्व में विलय होना चाहता है। वह अपने आपको प्रभु के भरोसे छोड़ देता है। पुष्टि मार्ग में प्रभु की भक्ति की प्रप्ति साधन–साध्य न होकर प्रभु की कृपा पर ही अवलम्बित होती है। तुलसी ऐसे ही मार्ग पर चलने वाले भक्त थ। इन्होने

'विनय पत्रिका' में कई स्थलों पर इस प्रकार के भाव व्यक्त किए है कि मैं आपके द्वार पर पड़ा हुआ हूँ चाहे अपना लें, चाहे ठुकरा दें। यथा–

कहाँ जाऊँ, कासों कहो और ठौर न मेरो।
जनम गँवायो तेरेहि, ध्वार मैं किंकर तेरो।।

प्रेम कर हौ हठि आज तें राम हवार परयो हौं।
तू मेरो यह बिन कहै उठि हैं। न जनम भरि, प्रभु की सौ करि निवरयो।

fu"dkeuk

तुलसी की भक्ति भावना सर्वथा निष्कामना की है। उसमें स्वार्थ संधि की गंध कहीं नहीं है। तुलसी राम से भक्ति इसलिए करते है। कि राम उन्हें अच्छे लगते है। इसलिए नहीं कि राम उन्हें बदले में मुक्ति या भक्ति प्रदान करेंगें। यथा

जो जगदीस तौ अति भलो जो महीस बड़ भाग।
तुलसी चाहत जनम भरि, रामचरन अनुराग।।

'रामचरितमानस' में कवि ने भक्ति की भूमिकाओं का निरूपण करते हुए अन्ततः निष्काम हृदय को भगवान का निजगेह बताया है

जिन कहूँ कछू न चाहिए तुम सन सहज सनेह।
बसहु निरंतर तासु उर सो राउर निज गेह।।

भक्ति का चरम फल भक्ति ही है। तुलसी ने भरत की वाणी में भक्ति की यह निष्कामना मुखरित हो उठी है।

अरध न धरम न काम रूचि गति न चहहुँ निरबान।
जनम–जनम रति राम पद यह वरदानु न आन।।

/ke! d! i!fr LokHkkfod i!—fr

तुलसी का भक्ति–लक्षण शील है। शील व सदाचार का नित्य संबंध उन्होंने बड़ी ही भावुकता के साथ व्यक्त किया है। शील हृदय की वह स्थाई स्थिति है जो सदाचारी की प्रेरणा स्वतः करती है ंशील और सदाचार की प्रतिष्ठा के द्वारा मनुष्यता को पहुँचा हुआ हृदय रामभक्ति के प्रति अवश्य आकर्षित होगा।

'सुन सीतापति सील सुभउ
गोद न मन, तन पुलक नयन कत सो नर केहर रवाड़।। (विनयपत्रिका)

इसी कारण उनका कहना है कि राम की भक्ति की प्राप्ति का लक्षण है–

मन का अपने आप सुशीलता की ओर ढलना। तुलसी के मन में राम की भक्ति का अंकुर स्थायी रूप से जम गया है। इसका मानदंड वे स्वयं निर्धारित करते है।

'तुम अपनायों तब जानिहों जब मन फिरि परि है। (विनय पत्रिका)'

सुशीलता की ओर मन के ढलने को रामभक्ति की प्राप्ति का लक्ष्य गोस्वामी ने शील को अपने व्यापक भक्ति क्षेत्र में अंतभूर्त कर लिया है। इनकी श्रुतिसम्मत एवम् संजुल विरति विवेक हरिभक्ति वही है जिसका लक्ष्य शील है।

''प्रीति राम सों नीति पथ चलिए, राग रिसि नीति। तुलसी संतन के गेतं है भगति की रीति।।''

इनके अनुसार, धर्म का विरोध राम का विरोध है। जिसे राम प्रिय नहीं उसे धर्म प्रिय नहीं। इसीलिए इनका कहना था।

जाके प्रिय न राम वैदेही।

सो नर तजिय कोटि वैरी सम जधपि परम स्नेही।।'

राम के शील के अंतर्गत शरणागत की रक्षा को तुलसी ने प्रधानता दी है। इसका अभिप्राय यह है कि बड़े से बड़ा पापी भी अपने उदधार भी आशा कर सकता है। इस प्रकार तुलसी द्वारा प्रतिपादित राम–भक्ति वह भाव है जिसका संचार होते ही अंतकरण शुद्ध और मन निर्मल हो जाता है। भक्ति के अभाव में अन्तकरण शुद्ध नहीं हो पाता।

'तुलसीदास ब्रत दान ग्यान तय शुद्धि हेतु श्रुत्रि गावै।
रामचरन अनुराग नीर विनु मल अति नास न पावै।।''

कवि का मत है कि भक्ति के बिना शील आदि समस्त गुण निराधार है जैसे–

'सूर सुजान सपूत सुलक्ष्छन गनियत गुन गरूआई।
बिनु हरिभजन इंद्रासन के फल तजत नहीं करूआई।।
कीरत्रि कुल करतूति भूमि भति भति सील सरूप सलोने।
तुलसी प्रभु अनुराग रहित जस सालन साग अलोने।।

vkyEcu e: vur Ikn;] 'kfDr o 'khy dh ifr"Bk&

तुलसी के राम इष्ट देवता है। ये राम अंनत सौंदर्य की साक्षात प्रतिमा है। तीनों लोकों के सौदंर्य का चरम उत्कर्ष उनके रूप में अभिव्यक्त होता है। तुलसी के राम सौन्दर्य के सार है।

'नील सरोज नीलमणि नील नील धर श्याम।
लाजहिं तन सोभा निराखि कोटि सत काम।।

राम की स्तुतियों में उनका नखशिख वर्णन उनके सौंदर्य को निरुपित करता है। वन जाते समय राम के सौंदर्य का वर्णन प्रभावशाली हैं। ऐसी अनंत रूपराशि के सामीप्य लाभ के लिए उसके प्रति सुदृढ़ भाव प्रदर्शित करने के लिए जी ललचाता है–

'कहि है जग पोच न सोच कुछ
फल लोचन आपन तौ लाहिहै।

राम की शक्ति अपरंपार है। वह खरदूषण व त्रिलोक विजयी रावण जैसे महाबली राक्षसों को मारकर वह पृथ्वी का भार हल्का करने वाले है। राम शील की साक्षात मूर्ति है दया, कृपा, क्षमा, कृतज्ञता आदि गुणों की वे खान हैं। उनके प्रति किए गए राई भर उपकार को वे पर्वत के समान मानते हैं। उन्होने हनुमान से कहा मैं तुमसे उऋण नहीं हुँ। तु ही मेरा बोहरा है चाहे तो रूक्का लिखवाले और अपने कायों के विषय में सोचते है कि विभीषण को लंका का राज्य भी देकर कुछ नहीं दिया। यह बेचारा न जाने क्या–क्या लेकर आया था। यथा

जो सम्पदा सिव रावमणिहि दीन्ह दिए दस माथ।
सो संपदा विभिषनहिं सकुचि दीन्ह रधुनाथ।।

रामचंद्र शुक्ल का कथन है–

'भगवान का जो प्रतीक तुलसीदास जी ने लोक के सम्मुख रखा है.................उसमें सौंदर्य के प्रभाव से ह्रदय का वशीभूत करके भक्ति के अलौलिक प्रदर्शन से उसे चकित करते हुए अन्त में वे इसे शक्ति या धर्म के रमणीय रूप की ओर अपने आप अकर्षित होने के लिए छोड़ देते हैं। जब इस शील के मनोहर रूप की ओर मनुष्य आकर्षित हो जाता है और अपनी वृतियों को उसके मेल में देखना चाहता है। जब जाकर वह भक्ति का अधिकारी होता है। यथा–

कबहुँक हौं यदि रहनि रहौंगो?
श्री रधुनाथ–कृपालु कृपा ते संत सुभाव महौंगों।।

परिहरि देह जनित चिंता दुःख सुसमवुहधि सहौंगो।
तुलसीदास प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरि–भक्ति लहौंगो।। (विजपत्रिका)

भक्त अपने दोषों को झुक–झुक कर देखता ही नहीं है, बल्कि उठा–उठा कर दिखाता भी है। इस उच्च मनोभूमि की प्राप्ति अत्यंत कठिन है क्योंकि लोक की सामान्य प्रकृति तो ठीक इसके विपरित होती है जिसे अपनी ही मानकर तुलसी कहते है कि

'जानत हू पाप जलधि जिय, जल–सीकर, सम सुजत लरो'।
रज सम पर अवगुन सुमेरु करि, गुन गिरि सम रजत निदरों।''

स्वदोणानुभूति की इस कृति को 'रामचरितमानस' में कहा गया है

'गुन तुम्हार समुझइ निज दोखा। जेहि भाँति तुम्हार भरोसा।
राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बएहु सहित वैदेही।।'

नवधाभक्ति– तुलसी के काण्य में नवधा भक्ति प्राप्त होती हैः–

श्रवण– श्रवण का अर्थ है– शब्द का कान हवाए ग्रहय तथा बोध।

तुलसी का कथन है कि जो कान भगवान का गुणगान नही सुनते, वे साँपों के बिल के समान हैं।

'जिन्ह हरि क्था सुनी नहिं काना।
श्रवनरंध्र अहिभवन समाना।।

1. कीर्तन–सगुण भक्त के लिए भगवान के नाम, लीला, गुण धाम आदि का उचारण कीर्तन है। जो राम का नाम नहीं लेते, उनकी जिह्वा मेंढ़क के समान है–

2. स्मरण–भवसागर पार करने हेतु भगवान के नाम, रूप, गुण का स्मरण माना पर्याप्त है–

'सुमिरत श्री रधुवीर की बाहैं।।
होत सुगम भव उदधि अगम अति कोउ लाँघत कोउ उतरत थोहिं।।'

पादसेवन–भगवान और उसके भक्तों की सेवा, मंदिर गमन, तीर्थयात्रा आदि पादसेवन है। जैसे–

कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस ह्रदय नहि दूजा।।
चरन राम तीरथ चलि जाही। राम बसहु जिन्ह के मन माहीं।।

अर्चन– तुलसी की कृतियों में भगवान की पूजा के अनेक स्थल है। स्वयं राम ने शिव का विधिवत् पूजन किया है–

पूजि पारधिव नायेउ माथा।

3. वन्दन– तुलसी ने रामचरितमानस, विनयपत्रिका आदि में बहुसंख्यक वंदनाएँ व स्तुतियाँ दी है।

4. दास्य–भगवान को स्वामी और स्वयं को दास समझना दास्यभाव है। तुलसी के आदर्श भक्त सदैव इसी मनःस्थिति की कामना करते हैं–

अस अभिमान जाइ जनि भेरें। मैं सेवक रधुपति पति मोरे।।

5. सख्य– इस भक्ति में आराध्य के प्रति बंधुभाव का प्राधान्य रहता है। राम के सखाओं की भक्ति भी दास्य विशिष्ट है।

6. आत्मनिवेदन–भक्त के द्वारा भगवान के प्रति सर्वतोभवेन आत्मसर्मपण ही आत्मनिवेदन है। तुलसी के राम ने शबरी को नवधाभक्ति का उपदेश दिया है–

नवधा भगति कहौं ताहि पाहीं। सावधान सुनि धरू मन माहीं।।
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।

तुलसी लोकदर्शी में, उन्होंने व्यक्ति कल्याण के साथ लोककल्याण करने वाले भक्ति मार्ग का उपस्थापन किया। उन्होंने लोकधर्म विरोधी भक्ति पद्धतियों का खरेपन के साथ विरोध किया। आचार्य शुक्ल के शब्दों में–

''उनकी वाणी के प्रभाव से आज भी हिंदु भक्त अवसर के अनुसार सौंदर्य पर मुग्ध होता हैं, सन्मार्ग पर पैर रखता है, विपत्ति में धैर्य धारण करता है। कठिन कर्म में उत्साहित होता है, दया से आर्द्र होता है, बुराई पर ग्लानि करता है, शिष्टता का अवलंबन करता है और मानवजीवन के महत्व का अनुभव करता है।''

3.

तुलसीदास की सामाजिक चेतना

समाज में उच्च मनोवृत्ति के पुरूष समाज के प्रवाह को सही दिशा में मोड़ने का प्रयास करते हैं महाकवि तुलसीदास मुगल सम्राज्य की सुखशान्ति से उसके ऐश्वर्य वैभव के चकाचौंध से प्रभावित होकर आश्वस्त होने वाले व्यक्ति न थे। तुलसी का सारा प्रयास जनता जनार्दन के मानसपरिष्कार हेतु था। वह जिस समाज की कल्पना करके चले, वह स्वार्थ त्याग और बलिदान सिखाने वाला था। उन्होंने जिस राज्य की कल्पना की थी वह लोकाराधन के लिए राज्य, सुख, राग आदि सबको निछावर कर देने वाला था। तुलसी की समाजिक चेतना के विविध आयाम है।

1. आदर्शराज की भावना।
2. राजा–प्रजा संबन्ध।
3. प्रचीन वर्णाश्रम धर्म की प्रतिष्ठा।
4. पारिवारिक जीवन का आदर्श।
5. मर्यादावाद।
6. समाज में स्त्रियों का स्थान।
7. प्राचीन नियमों व विश्वासों का वर्णन।

vkn'kjkt dh Hkkouk

तुलसी के आदर्श राज्य का नाम रामराज्य है। इस राज्य की सवौपरि विशेषता था– प्रजा में पारस्परिक ऐक्य। ऐक्य के अभाव में वैर की कृद्धि अनिवार्य हैं यदि राजा प्रतापी हो वहाँ विषमता का परिहार हो जाता है। रामराज्य में–

> *'बयरू न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई।।'*

जहाँ विषमता नहीं वहाँ सुख और शान्ति का विकास होता ही है प्रजा निर्भय अशोक और नीरोग रहती है–

> *'रामराज राजत सकल धरम निरत नर नारि।*
> *राग न रोष न दोष दुख सुलभ पदारथ चारि।।*

रामराज्य में अल्पमृत्यु, रोग, दरिद्रय आदि का अभाव होता है। राजा और प्रजा के लिए धर्म अर्थात् कर्त्तव्यनिष्ठता सर्वोपरि होनी चाहिए। रामराज्य में सभी सदाचारी, धर्मप्राण, गुणज्ञ, कृतज्ञ, ज्ञानवान् और पंडित थे। 'यथा राजा तथा प्रजा' के अनुसार जब राम को प्रजा इस रूप में देखती थी–

> *'कोटिन्ह बाजिमेध प्रभुकीन्हें। दान अनेक द्विजन्ह कहुँ दीन्हें।।*

स्त्रुतिपथ पालक धर्म धुरंधर' गुजातीन अस भोग पुरंदर।।

जहाँ एक नारीव्रत राम राज्य करत थे वहाँ की पूजा भी वैसी ही होगी।

jktk&i:tk dk l:cU/k

तुलसीदास प्रजा के प्रति राजा की वात्सल्य भावना को ही ठीक समझते हैं। वात्सल्य की भावना से स्वामित्व का अहंकार अपने आप लीन हो जाता है।राजा के लिए प्रजा प्रिय है। राजा को उसका प्रेमी होना चाहिए। प्रजा में भी राजा का प्रियत्व जगे, इसके लिए राजा को प्रयत्नशील होना चाहिए। राजा अपने किस आचरण से प्रियत्व प्राप्त कर सकता है, इसके अनेक सुझाव दोहावली में दिए गए है। राजा की समता पिता से की गई हैं। यों तो राजा को सबके लिए समदर्शी होना चाहिए, पर उसके लिए समान वितरण आवश्यक नही है। वह मुखिया है

'मुखिया मुख सों चाहिए खान पान को एक।
पातइ पोपइ सकल अंग तुलसी सहित विवेक।।'

तुलसी कहते है कि राजा को प्रजा से इस प्रकार कर लेना चाहिए कि उन्हें कर वसूली का पता न चले। जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों से जल खीचता है। पर यह कोई नहीं देख पाता कि जल कैसे आकाश में चला गया, पर जब वही जल वृष्टि के रूप में लौटता है तो सभी को प्रत्यक्ष दिखाई देता है–

'बरखत हरषत लोग सब करषात लखै न कोय।
तुलसी प्रजा सुभाग तें भूप भानु सो होय।।'

तुलसीदास प्रजातंत्र प्रभाली चाहते थे। वे ऐसे राजा को भी तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं जो प्रजा को प्राणप्रिय नहीं समझता। उनका रामराज्य प्रजाराज्य ही है। वे लोकाराधन ही चाहते थे।

i:kphu o.kkJe /ke: dh i:fr"Bk

गोस्वामी जी को पारस्पाकि रूप में वर्णव्यवस्था मान्य थी, परंतु वे उसके कट्टर समर्थक न थे। वे भक्ति के साथ ज्ञान और कर्म को भी मानते थे। ज्ञान की मान्यता के कारण वे वेद का तिरस्कार नहीं करते थे और कर्म की मान्यता के कारण अर्थव्यवस्था को भी मानते थे। समाज की मर्यादा तोडकर कोई नया पंथ नहीं चलाना चाहते थे, इसी से उन्होंने वर्णव्यवस्था का प्रत्यक्ष खंडन नहीं किया।

'मानस' में पात्रों के द्वारा उन्होंने वर्णाश्रम धर्म का समर्थन इसी से कराया। विनयपत्रिका में कहा गया है

'जाके प्रिय न राम वैदेहि।
सों त्यागिये कोटि बैरी सम जघपि परम सनेही।।''

तुलसी जन्मना की बात को परम्परानुसार स्वीकार कर लेते है, पर कर्मणा के लिए उस व्यवस्था के गुण कर्म का नियोजन करके भक्ति का विनियोजन करते है। वे भक्ति को समाजिक भूमिका पर ले

आना चाहते थे। केवल व्यक्तिगत साधना के लिए उनकी भक्ति नहीं है ओर न केवल लोकसाधना के लिए है। वह दोनों का योग है। वे यही चाहते है–

–तुलसी घर बन बीच ही राम प्रम पुर छाइ।'

तुलसी ने आश्रमों में से गृहस्थाश्रम पर ही विशेष बल दिया है। कवि ने मानस तथा अपने अन्य काण्यों का निर्माण जीवन के लिए, चलित जीवन के लिए ही किया है और भारतीय समाज में मुख्य है–गृहस्थी। जो व्यक्ति परिवार के लिए कुछ दे सके, उनकी मानसिक बुमुक्षा की शान्ति कर सके, वह बहुत कुछ कर चुका।

अनुसूया ने सीता को पतिव्रत की जो शिक्षा दी है, वह भारतीय समाज की पारंपरिक स्थिति का ध्यान रखकर कवि के द्वारा कहलाई गई भक्ति है।

ikfjokfjd thou dk vkn'k

तुलसी ने विनयपत्रिका में भारतीय परिवारों में आए हुए विकारों को बताया हैं। मानस में रामपरिवार में सिद्धांत रूप में उन्होंने इसे व्यावहारिक रूप में दिखा दिया। मानस में रामचरित के भीतर रामपरिवार में उन्होने उसके स्वरूप की पूर्व अभिव्यक्ति की हैं वे भाई–भाई, पति–पत्नी, पिता–पुत्री, माता–पुत्र, स्वामी–सेवक आदि के संबन्धों और उनके निर्वाह की जैसी झलक दिखाते हैं उसमें सम्मिलित परिवार शैली का पूर्व समर्थन निहित है जैसे–

'अनुचित उचित विचार तत्रि जे पालहिं पितु–बैन।
ते भजन सुख–सुजस के बसहिं अमरपति ऐन।।'

कवि ने व्यक्ति–साधना और जागतिक व्यवहार में अंतर किया हैं विमाता के प्रति मातृवत व्यवहार उन्होंने जागतिक परम्परा के रूप रखा। कवि ने कैकेयी को बचाने के लिए 'गिरा' का प्रयोग करके उसकी कार्यवाही से तटस्थ–सा कर दिया है तथा चित्रकूट में उसका घोर पश्चाताप दिखाकर उसकी शालीनता प्रकट की है।

तुलसी ने सेवक–सेव्यभाव की भक्तिपक्ष में महत्ता भी स्वीकार की है। उन्होने सेवक के गुण–धर्मो का उल्लेख किया है। इन्हें परिवारिक भाव से जोड़ा गया है। भंधरा से कैकेयी का संबन्ध इसी प्रकार लक्षित कराया गया है। कैकयी जब मंथरा पर बिगड़ती है और इस संबंध का अतिरेक करके उसे सचमुच नीची श्रेणी का मानकर उसके साथ वैसी ही शब्द व्यवहार करने लगती है तो वह व्यक्ति होकर उपनी वास्तविक स्थिति कहती है–

'कोड नृप होइ हमहिं का हानी।
चेरी छाँदि अन होव कि रानी।।'

कवि ने पशुपक्षियों के साथ भी आत्मीयता का परिचय दिया है। शुक और सरिका के संवाद में तुलसी ने गीतावली में इसकी चरम अभ्व्यिंजना की है। वे राम के वियोग से पीड़ित होकर कहते है।

'हम पँख पाइ पींजरनि तरसत अधिक अभाग हमारो।'

e;knkokn

भारत में ही नहीं, अपितु जगत् में समाज का निर्माण मर्यादा बंधन के लिए किया गया। समाज ने सभी को एक समान माना है तथा समाज चलाने हेतु सभी के कर्तव्य व अधिकार निश्चित किए गए है। तुलसी ने समाज की मर्यादा का अधिक ध्यान रखा है। उन्होनें धर्म को लक्ष्य करके मर्यादावाद के लिए सतत प्रयत्न किया है। मानस में सर्वत्र मर्यादा का पालन किया गया है। कवि ने धर्म पालन की महत्ता समाज के सामने रखी है। क्षमा के साथ–साथ दंड का विधान भी है। जिनमें दृवृति प्रकृतिस्थ है। जिनमें दुर्वृति आरोपित है, उन्हें क्षमा करना राम की मर्यादा है। भक्तों यह विशेष आकर्षक है–

"जेहि अध वधेउ व्याध जिमि वाली।
पुनि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली।।
सो करतूति कविभीषन केरी।
सपनेहु सो न राम हियँ हेरी।।
इसके साथ ही यह भी श्रुतिमार्ग है
जो सठ दंड करउँ जहिं तोरा। भ्रष्ट होई श्रुति मारग मोरा।।"

तुलसी का मर्यादावाद समाजिक है, लौकिक है तथा उसमें उचित की सब प्रकार से समाई है।

lekt e fL=;k dk LFkku

तुलसी ने कवि रूप में नारियों के विभिन्न स्वरूपों की कल्पना की और उनका अपने प्रबंध में यथास्थान चित्रण किया। समाज–संस्कार की दृष्टि से उन्होंने नारी के संबन्ध में वह धारणा ग्रहण की जो परंपरा से चली आ रही थी। साधक की दृष्टि से उन्होंने नारी को बहुत ही गर्हित कहा।

तुलसी मर्यादावादी थे। उनका विचार था कि समाज संचालन में नारी के लिए पतिव्रता होना जरुरी है। कवि ने नारी जी पूजा के बदले उसके अपावनत्व और जड़त्व आदि का उल्लेख अधिक किया है। रामपरिवार की महिलाओं का उन्होंने जैसा चित्रण किया है। वह नारीगत उनकी भावना का परिहार नहीं हैं। वे 'पुत्रवती युवती जग सोई। रधुवर भगत जासु सुत होई।' को ही ठीक समझते है। यद्यपि कैकेयी के पुत्र भरत की चरमभक्ति राम में थी, पर व्यक्तिगत रूप से कैकेयी ने राम के प्रति जैसा व्यवहार किया, उसकी दृष्टि से वे सुमित्रा को कैकयी ने राम के प्रति जैसा व्यवहार किया, उसकी दृष्टि से वे सुमिश्र को कैकेयी से उत्तर मानते हैं नारी के संबंध में कवि की धारणा अच्छी नहीं है।

'नारि बिस्व माया प्रगट'।

उनके अनुसार' संसार में फँसाये रहने वाली नारी ही है। यदि कोई नारी से छुट जाए तो वह संसार के बंधन से शीध्र छुट सकता है। परंतु कहीं कहीं नारियों की समाजगत पराधीनता के कारण उनके ह्रदय में करूणा की भावना जग जाती है–

'कत विधि सृजी नारि जगमाही।
पराधीन सपनेहुँ सुख नाही।।।

ikphu fu;ek o fo'okl k dk o.ku

तुलसीदास ने अपने समय के अंधविश्वासों नियमों आदि का वर्णन किया है। कवि की इनमें निष्ठा रही हो। ऐसी बात नहीं। भगवदभक्त के लिए ये कुछ महत्व नहीं रखते। एक भक्त ने कहा है–

'सबै धरी सुभधरी है सबै बार सुभबार।
भरनी भद्रा ताहि दिन जब रूठै करताए।।'

भक्त के लिए भगवत् प्रेरणा ही सब कुछ है। मुहूर्त–चिंतन और शकुन विचार कुछ नहीं। तुलसीदास ने स्पष्टतया इनका विरोध किया है। वे दोहावली में कहते हैं–

'कब कोढ़ी काया लही जग बहराइच जाई।।

प्राचीन युग में जीवन संचालन हेतु कुछ नियम बनाए गए।

वे साध्य रूप में थे। धीरे–धीरे वे दुरूह होते गए। तुलसी ने इनका बार–बार उल्लेख किया है। वैराग्यसंदीपनी में इन्होंने इन का उल्लेख किया है। कवि ने कवितावली में अपने समय की खराब हालत का वर्णन किया है। तत्कालीन समाज विपन्नता की स्थिति में था। दरिद्रता रूपी रावण ने सब पर कब्जा कर रखा था।

'खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि।
बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।।
जीविका विहीन लोग सीधमान सोच बस।
एक एकन सों 'कहा जाई, का करी?
बेदहूँ पुरान कही, लोकहूँ विलोकिअत।
साँकरे सवै पै, राम। रावरें कृपा वरी।।
दारिद्र–दसानन दबाई दुखी दीनबंधु।
दुरित–दहन देखि तुलसी हहा करी।।

तत्कालीन समाज में कर्त्तव्य भावना लुप्त हो चुकी थी। सभी जातियों के लोग स्वार्थपूर्ति लगे हुए थे। वे अपना विवेक खो बैठे थे तथा कल्पवृक्ष व बबूल में अंतर नहीं कर पा रहे थे।

'बबुर बहेरे को बनाइ बागु लाइवत।

रूबिवेको सोइ सुरतरू काटियत है।।'

निष्कर्षतः कहा जा सकता है। कि प्रत्येक कवि अपने समाज का अंग होता है। समाज में हुए परिवर्तन उस पर अवश्य प्रभाव डालते है। कवि तुलसी भी अपने युग से प्रभावित हुए। उन्होने उस समय का चित्रण करने के साथ–साथ कुछ आदर्शो की स्थापना भी की जिनसे समाज चल सके। उन्होने रामराज्य की परिकल्पना की। वे सुसंगठित व स्वस्थ समाज के पक्षधर है।

4.

तुलसीदास की कलागत विशेषताएँ

काव्य का चरम लक्ष्य रससिद्धि है। इसके लिए कवि में भावप्रवणता अपेक्षित है भावप्रवणता तभी सफल व सार्थक होती है जब उसकी सफल एवमं भावपूर्ण अभिव्यक्ति हो। गोस्वामी तुलसीदास सच्चे अर्थो में भारतवर्ष के लोककवि है। राम के शील, शक्ति और सौंदर्य की प्रतिष्ठा के कारण, भक्ति की स्वातंत्रय चेतना की स्थापना के कारण, युगधर्म और युगनिरूपण के कारण समन्वय की विराट चेष्टा के कारण उनका साहित्य देशजयी और कालमी बन गया है।
तुलसी के काव्य के दो पक्ष है– भावपक्ष व कलापक्ष।

Hkkoi{k

तुलसी मानस के प्रारम्भ में ही अपने काव्य के उद्देश्यों की व्यंजना करते हैंः–

'स्वांतः सुखाय। तुलसी रधुनाथ गाथा।
भाषा निबंध मति मंजुल मातनोति।।''

तुलसी भक्त है। उनका काव्य भक्ति का काव्य है। उनकी भक्ति सगुण कोटि की है और उस भक्ति के अलम्बन राम और वैदेही है। इन्होंने भक्ति का आधार प्रीति और प्रतीति को अंगीकार किया है। यह भक्ति किसी धर्म, जाति या व्यक्ति विशेष के लिए सीमित नही है।

तुलसी के काव्य में शंकर के अद्वैत और रामानुज के विशिष्टाद्वैत की विशेषताएँ में सांप्रदायिकता की संभावना से परिचित थे। ये तत्वदर्शी भक्त आक्र लोकमंगल के समर्थक थे। इन्होंने शंकाचार्य के पारमार्थिक और रामानुचार्य के व्यवहारिक दृष्टिकोणों का समन्वित उपयोग किया है।

तुलसी का काव्य समाजिक चेतना से ओतप्रोत है। इन्होंने रामराज्य की अभिकल्पना की है। इस राज्य में किसी का उत्पीड़न शोषण नहीं होता। इनके रामराज्य का समाज भारत के लिए नहीं, वरन् समग्र संसार के लिए सर्वथा अनुकरणीय है क्योंकि यह रामराज्य समता , समानता, मित्रता, सद्भाव, सुख, शान्ति का संस्थापक है। इन का कहना है–

''रामराज बैठे त्रयलोका। हरषित भये गये सब सोका।
बयरू न कर काहू सन कोई । रामप्रताप विषमता खोई।।'

वे एक ऐसे समाज की कामना करते हैं जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य हो,

परहित–निरत हो, दुख–दरिद्रय विहीन हो और स्वधर्म व स्वकर्म में रत हो।

dyki{k

तुलसी अपने आपको कवि नहीं मानते,

कवि न होहूँ नहिं चतुर कहावहुँ, मति अनुरूप रामगुण गावउँ।
कवि न होहुँ नहिं वचन प्रवीनू। सकल कल सब विद्या हीनू।।
कवित विवेक एक नहिं मोरें। सत्य कहऊँ लिखि कागद कोरें।।

तुलसी ने नाना काव्यांगो पर विचार करते हुए कविता को गंगा के समान मंगल विधायिनी स्वीकार किया है। वे कविता की सरलता व सहजता के पक्षधर है। गोस्वामी ने प्रबन्ध काव्य व मुक्तक काव्य की सर्जना की, भक्ति के साथ अन्यान्य रसों की व्यापक व्यंजना की, प्रसंगानुकूल छंदों की अवतारणा की अवधी, ब्रज, संस्कृति आदि भाषाओं में काव्यरचना से यह पुष्ट कर दिया कि तुलसी की कला से कविता धन्य हो गई–

'कविता करके तुलसी न लसे।
कविता लसी पा तुलसी की कला।।''

तुलसी के अभिव्यक्ति पक्ष की निम्नलिखित विशेषताएँ हैः–

- भाषा
- अलंकार
- छंद
- काव्यशैलियां
- चित्रात्मकता
- उक्ति वैचित्रय

Hkk"kk

तुलसी का ब्रज व अवधी पर समान अधिकार था। इन्होने दोनो भाषाओं के परिनिष्ठित व लोकप्रचलित रूपों में उच्चकोटी की रचनाएँ प्रस्तुत की। विनयपत्रिका, गीतावली और श्री कृष्ण गीतावली–उनकी संस्कृतिनिष्ठ ब्रजभाषा की रचनाएँ है। कवितावली चलती हुई ब्रजभाषा में लिखी गई है। रामचरितमानस में सुसंस्कृत पश्चिमी अवधी के दर्शन होते हैं। पूर्वी व लोक व्यवहार की अवधी में पार्वतीमंगल, जानकीमंगल और रामललानध्धू की रचना की गई। इस प्रकार तुलसी के काव्य में संस्कृ तनिष्ठ शब्दावली भी है और ठेठ ग्रामीण अथालोकप्रचलित शब्दावली भी।

तुलसी की भाषा प्रसंगानुकूल व पात्रानुकूल परिवर्तित होती चलती है। परशुराम के क्रोधी स्वभाव के अनुकूल ओजमयी भाषा का प्रयोग किया गया है।

'बाल ब्रह्मचारी अति कोही। विस्वविदित छत्रिय कुल दोही।।
भुजबल भूमि भूप बिनु किन्ही। विपुल बार महि देवन्तन्ही।

इसी प्रकार कवितावली में दास्यभाव की भक्ति का उल्लेख किया गया है। कवि के दीन भावों का अत्यंत विनम्र भाषा में प्रकटीकरण हुआ है जैसे–

'श्रुति रामकथा, मुख राम को नामु, हिएँ पुनि रामहि को थलु है।
मति रामहि सो, गति रामहिं सों, रति रामसों रामहि का बलु है।।

श्यामसुंदरदास ने कहा है–

'इन दोनों भाषाओं को संस्कृत की परिपक्व चाशनी की पाग देकर उन्होंने उन्हें अदभुत मिठास प्रदान की। इन दोनों भाषाओं पर उनकी रचनाओं से इतना अधिकार दिखाई देता है कि जितना स्वयं सूरदासजी का ब्रजभाषा पर और जायसी का अवधी पर न था।'

शब्दों ने प्रयोग में तुलसी की नीति उदार की। इन्होंने अपनी भावाभिव्यक्ति को प्रत्येक प्रकार से सरल बनाने का प्रयत्न किया है। इन्होने स्वयं कहा है–

'सरल कवित कीरति बिमल, सोई आदरहिं सुजान।
सहज वयस विसराइ रिपु, जो सुनि करहिं बखान।

vy;dkj

तुलसी का अलंकार विधान स्वाभाविक है। इनके काव्य में प्रायः शब्दोलकारो एवम् अर्थालंकारों का स्वाभाविक प्रस्फुटन दिखाई देता है। अलंकारों के लिए इन्हें प्रयत्न नहीं करना पड़ता वरन् वे स्वयं ही भावाभिव्यक्ति में होकर आते हुए दिखाई देते है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में, 'अलंकारों की योजना उन्होंने ऐसे मार्मिक ढंग से की है कि वे सदैव भावों या तथ्यों की व्यंजना को प्रस्फुटित करते हुए पाए जाते है।'' इन्होने दैनिक जीवन के देखे सूने पदार्थो और व्यापारों से अपने उपमानों, रूपकों एवम् प्रतीकों का चयन किया है। इन्होंने अप्रस्तुत विधान के लिए लोक को ही माध्यम बनाया। इस कारण उनके अलंकार विधान में भावाभिव्यक्ति की तीव्रता सहज ही निखर उठती है।

सौंदर्य के चित्रण में उपमा अलंकार का महत्त्वपूर्ण उपयोग होता है। जैसेः– सीता में सौंदर्य का चित्रण कवि ने किया है–

'सरिवन्ह मध्य सिध सोहते कैसी। छवि गन मध्य महाछवि जैसी।।
कर सरोज जयमाल सुहाई। विश्व विजय सोभा जेहि छाई।।''

रूपक का उदाहरण देखिए–

'जाकें बिलोकत लोकप होत, बिसोक लहैं सुरलोग सुगैरहि।
सो कमला तजि चंचलता, करि कोटि कला रिझवै सुरमौरहि।
ताको कहोई, कहै तुलसी, तु लताहि न मागत कूकुर कौरहि।
जानकी–जीवन को जनु हवै जरि जाए सो जीह जो जावत औरहि।।

छंद– तुलसी की छंद योजना भाव व विषयानुरूप है। उन्होने अवधी की कविता में दोहा–चौपाई और बरतै छंद का प्रयोग किया। भाव की क्रमबद्ध अभिव्यक्ति के अवसरों पर छप्पय, हरिगीगिका जैसे लंबे छंदो का प्रयोग किया है। मानस की प्रबंध्रूपता के निर्वाह हेतु अवधी का प्रचालित छंद चौपाई का प्रयोग किया गया है। राजपति दीक्षित ने कहा है–

'गोस्वामी जी की प्रबंध धारा मानो संस्कृत वर्णिकों के शुभ हिम शिला खंड से प्रस्तुत होकर चौपाइयों की समभूमि में सहज स्वाभाविक गति से चलती हैं। मार्ग में दोहा सोरठों के मोड़ पर विश्राम करती

हुई समय–समय पर प्रसंग व भागवेश रूप वायु के झकोरों से विलौड़ित होकर अपनी मनमोहक लहरों मे सजीव चित्र दिखाने के लिए हरिगीतिका, चौपया, त्रिमंगी, ताटक आदि के क्षेत्र में अपनी इठलाहट दिखाती, कलकल नाद करती हुई उत्तरोत्तर रामसागर में विलीन हो जाती है।''

चौपाई छंद का उदाहरण देखिए–

'जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई।।
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा।।
नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरत मन महिमा।।
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरी रति मम कथा प्रसंगा।।

dk0;'kfy;k

तुलसी के काव्य में समस्त काव्यशैलियों का प्रतिनिधित्व उपलब्ध होता है। उन्होंने अपने समय में प्रचलित लगभग सभी काव्य शैलियों का प्रयोग किया है। जैसे–

1. **छप्पय शैली–** रामचरितमानस में कुछ छंद उपलब्ध हैं।
2. **पद शैली–** इसमें इन्होने विनयपत्रिका, गीतावली और कृष्णगीतावली की रचना की। विनयपत्रिका का संस्कृत पदविन्यास गीतगोविन्दम से किसी प्रकार कम नही है।
3. **कवित्त सवैयाशैली–** गंग आदि कवियों की इस शैली में कवि ने कवितावली की रचना की। इसमें नाना रसों का सन्निवेश अत्यंत विशद रूप में किया है।
4. **सूक्ति शैली–** यह शैली अपभ्रंश काल से चली आ रही है। इस पर कवि ने रामचरितमानस व दोहावली में दोहे लिखे है जो धर्म, भक्ति, प्रेम तथा लोकव्यवहार पर आधारित है।
5. **दोहा चौपाई शैली–** इस पर इन्होंने अपने अमर काव्य 'रामचरितमानस' की रचना की।
6. **बरवै शैली–** इस में कवि ने बरवै रामायण की रचना की।

fp=kRedrk

तुलसी की वर्णन शैली अत्यंत प्रभावशाली है। वे जिस दृश्यभाव स्थिति या चरित्र का वर्णन करते है। उसका सजीव रूप हमारे सामनें उपस्थित हो जाता है। वे व्यर्थ विषय को चित्रात्मकता प्रदान करके गतिमान कर देते है। जैसे–

'जटा मुकुट कर सर धनु संग मारीच।
चितवनि वसति कनखियनु आँखियनु बीच।। (बरवें रामायण)

तथा–

तुलसी मन रजन रंजित अंजय नैन सुखंजन जातक से।
सजनी ससि में समसील उमै नवनीत सरोरूह से विकसे।।'' (कवितावली)

इस तरह के चित्र रामवनगमन, लक्ष्मणमूर्छा आदि अनेक प्रसंगों में उभर कर सामने आते है।

mfDr o'fp«;

तुलसी का उक्ति वैचित्रण भावाभिव्यक्ति को उत्कर्ष प्रदान करने वाला है। ऐसे स्थलों पर कविजन लक्षणा, व्यंजना शब्द शक्तियों का सहारा लेते है। पर्यायोक्ति अलंकार का उदाहरण देखिए–

सीता–हरण तात जनि, कहेउ पिता सन जाइ।
जो मैं राम तो कुल–सहित कहाहि दसानन आइ।।''

प्रश्नोत्तर व विरोधाभास रूप में नारी की कुटिलता का यह स्वरूप दृष्टव्य है–

'काह न पावक जारि एक, काह न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल केहि जग काल न खाइ।।'

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उक्तिवैचित्र्य का स्पष्टीकरण निम्न उदाहरण से किया है–

'बेग–बल, साहस सराहत कृपानिधान, भरत की कुसल अचल या चात्रिक यहाँ तुलसी के एक ही क्रिया 'लाए चालिके' के दो ऐसे कर्म–भरत की कुसल और पर्वत लाए है। जो परस्पर अत्यंत विजातीय होने के कारण अनूठे लगते है।

रस–तुलसी ने विभिन्न रसों का वर्णन किया हैं। कवि ने संयोग व वियोग श्रृंगार का वर्णन किया है। यह वर्णन अभद्र नहीं है। जैसे

'विरह के दगध कीन्ह तन माठी। हाड़ जराइ कीन्ह अस काठी।।
नन नीर सो पीता किया। तस मद चुवा बरा जस दिया।।'

वीर रस का वर्णन मुख्यतः लंकाकांड में हुआ हैं परंतु बालकांड में क्रोधित लक्ष्मण को कहना पड़ा–

'तोरउँ छात्रक दंड जिमि, तब प्रताप बल नाथ।
जो न करउँ प्रभुपद सपथ मुनि न धरउँ धनुहाथ।।'

हास्य, रौद, भयानक, वात्सकय, शांत आदि रसों का यथास्थान प्रयोग किया गया है। तुलसी ने अपनी रचनाओं में विरोधी रसों का कहीं भी मिश्रण नहीं किया है। उन्होने परस्पर सहायक रसों को ही मिलाया है। उदाहरण के लिए भयानक एवमं अदभूत रस के स्वतंत्र रूप का मिश्रण देखिए।

'महि परत उठि भर भिरत मरत न करत माया अति धनी।
सुर डरत चौदह सहस प्रेत बिलोकि एक रधुकूल मनी।।
सुर मुनि समय प्रभु देखि माया नाथ अति कौतुक कटेउ।
देखाहिं परसपर राम करि संग्राम रिपु दल लरि मरेउ।।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भक्ति, दर्शन, समाज, संस्कृत, कला के क्षेत्र में उपजी समन्वयवादी विराट चेष्टा के कारण तुलसी ने कालजयी व देशजयी रचनाएँ प्रदान की है।

5.

तुलसीदास की प्रासंगिकता

पुण्यभूमि भारतवर्ष में जब हम आदर्श मानव की कल्पना करने लगते है तो अन्य विभूतियों के अतिरिक्त गोस्वामी तुलसीदास की मूर्ति सजीव हो उठती है। उनका व्यक्तित्व एवम् कृतित्व गंगा के पवित्र जल की भाँति अनेक लाकोपकारी मंगलों की सृष्टि करता है और आज के विघटनकारी तत्वों से पूर्ण जीवन में समन्वयात्मक दृष्टि प्रदान करता है। तुलसीदास ने सैंकड़ो वर्ष पहले जो कुछ रचा, वह आज भी प्रसंगिक है। इनकी प्रसांगिकता निम्नलिखित विषयों पर आधारित है:–

jkejkT; dh ifjdYiuk

स्वतंत्र भारत के राजनैतिक जीवन में राज्य की परिकल्पना महत्वपूर्ण है। रामराज्य की परिकल्पना तुलसीदास ने मानस में की थी। रामराज्य एक ऐसा आदर्श जनतंत्र है जहाँ परस्पर मतभेद सहर्ष स्वीकार किया जा सकता है। उसमें व्यक्ति की गरिमा स्थापित होती है और अल्पसंख्यकों के मत का भी आदर किया जाता है। इतना ही नहीं कि रामराज्य की धारणा लौकिक सुख–साधन और, वैचारिक स्वतंत्रता के आदर्श की धारणा ही है, वरन उसके अन्तगर्त न तो वर्ग संधर्ष हैं और न शोषण वह वर्गभेद मिटाकर, हिंसात्मक साधनों को मिटाकर साधन और साध्य की पवित्रता में विश्वास करता है। तुलसी दास का कहना है–

'दैहिक दैविक भौतिक तापा।
रामराज्य काहू नहिं व्यापा।।
अल्प मृत्यु नहिं कवनेउ पीरा।
सब सुंदर सब विलय सरीरा।।
नहिं दरिद्र काउ दुखी न दीना।
नहिं काउ अबुध न लक्षनहीना।।
सब निर्दभ धर्मरत पुनी।
नर अरू नारी चतुर सबगुनी।।
सब गुनय पंडित सब ज्ञानी।
सब कृतग्य नहीं कपर सयानी।।

रामराज्य से वसुधैव कुटुम्बकम की कल्पना साकार हो उठती है और मनुष्य–मनुष्य के बीच का भेदभाव मिटाकर संसार के सभी देश अपनी–अपनी भौगोलिक सीमाओं का अतिक्रमण करने की कल्पना रूपायित कर सकते है। इसके साथ ही, परिवार, समाज, राष्ट्र और जनजन के बीच जो संसारव्यापी मूल्य विघटन दृष्टिगोचर हो रहा है, वह रामराज्य की स्थापना से दूर किया जा सकता है। रामराज्य हमें एक नई राजनीति, शांति, नैतिकता, आत्मबल आदि प्रदान करता है। वही आज के जीवन की विभीषिका मिटा सकता है। दुःख–दरिद्रय, युद्ध की भयंकरता, अज्ञान, अभाव, वर्गविभाजन आदि का मूलोच्छेद कर रामराज्य मनुष्य को सच्चे अर्थो में स्वतन्त्र बनाकर उसकी प्रतिष्ठा स्थापित करेगा।

e;kZnk dh Hkkouk

तुलसी ने राम के माध्यम से मर्यादा को स्थापित किया हैं।वे मर्यादा पुरूषोत्तम है। लोक व्यवहार में समाज की परिधि विभिन्न मानवीय संबन्धों से परिवेष्टित रहती है। माता–पिता–पुत्र, भाई–भाई, माता–पुत्र, गुरु शिष्य, स्वामी–सेवक, पत्ति–पत्नी आदि के आदर्श संबन्धों के आधार पर विभिन्न समाजिक संस्थाओं का संगठन होता है और इन्हीं संबंधों के आधार पर सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक मूल्यों की स्थापना होती है। उनसे मनुष्य की आसुरी वृति को नियंत्रित किया जा सकता है। आधुनिक जीवन में परिवार, धर्म, समाज, राष्ट्र के आदर्श रूपों के लिए मर्यादाओं का पालन अनिवार्य है। तुलसी के मूल्यों का अनुसरण कर आधुनिक जीवन का संत्रास और कुंठा दूर की जा सकती है और व्यक्तिगत् परिवारिक व राष्ट्रीय जीवन का विघटन बचाया जा सकता हैं।

lelo;kRedrk

तुलसी मध्यमार्गी थे। उनके समय में निगुण–सगुण ब्रह्म का विवाद चल रहा था। कवि ने समन्वय का भाव दर्शाया है–

> *''सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेदा।*
> *गावहि मुनि, पुरान, बुध, वेदा।।*

उस समय, नगरों व ग्रामों के जीवन में व्यवधान उपस्थित हो रहा था।

उस समय वैष्णव–शैव, शाक्त वैष्णव, भक्ति–ज्ञान आदि के बीच संधर्ष चल रहा था। तुलसी की समन्वयवादी विचारधारा के कारण आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है–

'लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके क्योंकि भारतीय जनता में नाना प्रकार की परस्पर विरोधिनी संस्कृतियाँ, साधनाएँ, जातियाँ, आचारनिष्ठा व पद्धति प्रचलित है''

इस समन्वय की आधुनिक भारत को आवश्यकता है। तुलसी से प्रेरणा ग्रहण कर आधुनिक भारत की अराजकता दूर की जा सकती है।

tuHkk"kk dk egRo

तुलसीदास संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। यदि वे चाहते तो उपना सारा साहित्य ब्रज व अवधी में न रचकर संस्कृत में रचते। 'अति मंजुल भाषा निबंध' रचना कर उन्होंने प्राचीन काल की ज्ञानधारा को सामान्य जन तक पहुँचाया। उन्होने जनता को उस धारा में अवगहन कराया और संस्कृत तथा लोकप्रचलित शब्दों का सुदर समन्वय कर देश के मन की जड़ता दूर की। गाँवों की कोटि–कोटि जनता तक स्वधर्म, संस्कृति और साहित्य के जिस संदेश को पहुँचाने की आवश्यकता है, वह जनभाषा से ही संभव है। किसी भी भाषा का ज्ञान प्राप्त करना है, किंतु कल्याण जनता की भाषा द्वारा ही हो सकता है। जनता की भाषा को 'भदेसभनीति' कहकर मजाक उड़ाने की आवश्यकता नहीं है। जनता के मन का अंधकार जनभाषा से ही दूर होगा।

cg|tufgrk; dh Hkkouk

तुलसीदास के काव्य का अत्याधिक महत्व है। उनके समय में समाजिक जीवन का विकास अवरूध हो चुका था। समाज धार्मिक, समाजिक, आर्थिक राजनीतिक आदि समस्याओं से घिरा हुआ था। कवि ने जनकल्याण की भावना से प्रेरित होकर रामकथा को स्वात सुखाय कहते हुए भी परांतसुखाय व बहुजनहिता के रूप में प्रस्तुत किया है। राम ने तात्कालीन उच्छृंखला और लोकपीड़कों सत्ताधारियों से लोकजीवन को मुक्ति दिलाई। गुरु वाशिष्ठ के चरणों में बैठकर राम ने जो मस्तिष्क साधना की भी। उसका उदाहरण विश्वमित्र के आश्रम में लोकपीड़को के वध में दृष्टिगोचर होता है। राम ने अनीति, आतंक को समाप्त कर अराजकता दूर की। आज के राष्ट्रीय जीवन में समन्वय व लोकहित की भावना उत्पन्न कराने में राम का जीवन महत्वपूर्ण है। यह आपसी भेदभाव मिटा सकता हैं, शासक और शासितों को एक–दूसरे के निकट ला सकता है। राजा राष्ट्र के कल्याण के लिए होता है। वह लोकपक्ष का समर्थन करता हैं। वह सत्य व धर्म का प्रवर्तक होता है। उसके सुशासन में प्रत्येक प्राणी अपने कर्त्तव्य का पालन करता हैं ।

0;kid thou /ke

कवि की महान् रचना रामचरितमानस के अनुसार कर्मयोग जीवन का दृढ़ संकल्प है। संसार की उपेक्षा न कर वह ऋषि लक्ष्ण, देवऋण और पितृऋण– इन तीनों के द्वारा जातीय संस्कृति, पितृभूमि और मानवता की यथोचित सेवा करने की प्रेरणा देता है। यह सेवा करने के बाद ही मनुष्य अपने अध्यात्म जीवन की चिंता में लग सकता है आज जब परमार्थ के स्थान पर स्वार्थ का बोलबाला है तो मानस धर्म ही हमारा उद्धार कर सकता है। आदर्श जीवन में लोक परलोक, संग्रह–त्याग, भोग–वैराग्य–दोनों का समन्वय है। वर्तमान जीवन के संदर्भ में मनुष्य का जीवन यदि दृढ़ नींव पर स्थापित हो सकता है तो धर्म के इसी व्यापक आधार पर स्थापित हो सकता है। राम आचारवान थे। आचारवान् होकर उन्होने जीवन का फल प्राप्त किया। आज के जीवन में सत्य, नियम, त्याग आदि की उपलब्धि के लिए राम की भाँति आचारवान् होना आवश्यकता है। इसी से राष्ट्र का जीवन अमर हो सकता है।

HkfDr Hkkouk

तुलसी भक्त है। इनकी भक्ति सगुण कोटि की है। उस भक्ति के आलंबन राम और वैदेही है। उन्होने कहा भी है–

> *जाके प्रिय न राम बैदेही।*
> *तजिए ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही।'*

इन्होंने भक्ति का आधार प्रीति और परनीति को स्वीकार किया है। भक्ति मार्ग पर चलकर कोई व्यक्ति जीवन की चरम सार्थकता और दुःखों से मुक्ति प्राप्त कर सकता हैं यह भक्ति ही भवसागर को पार करने का उत्तम साधन है। तुलसी को राम की भक्ति के अतिरिक्त और किसी वस्तु की कामना नहीं–

> *'धर्म न अर्थ न काम रूचि, पद न चहो निरबान।*
> *जनम जनम रति रामपद यह वरदान न आन ।''*

सामाजिक विसंगतियों का चित्रण

तुलसी ने अपने युग में फैली बेकारी, अकाल व दरिद्रता का चित्रण किया है। लोग अपनी संतान तक बेचने के लिए तैयार थें। यथा–

किसकी, किसान–कुछ, बनिक भिखारी, भाट, चाकर, चपल नट, चोर, चार पेट की पेट की पढ़त, गुन गढत चढत गिरी, अटत गहन बन अहन अरवेट की। समाज में वर्णव्यवस्था विघटित हो रही थी। सारा समाज मर्यादाहीन हो रहा था। जिसके कारण दुराचार, आचरहीनता आदि फैल रहे थे। भ्रष्टाचार के विभिन्न रूप हो गए थे, समाज में व्याभिचार, दूसरों का धन छिनना, शोषण, हत्या, बलात्कार आदि प्रवृत्तियाँ फैल रही थी। कवि कहते है–

जाहिर जहान में जमानों एक भांति भयों,
बेचिए विबुध धेनु एसभी बसाहिए।

धर्म के प्रति आस्था समाप्ति की और थी। धर्म में आडंबरों का बोलबाला था। आस्था समाप्ति की ओर थी। धर्म में आडंबरों का बोलबाला था विभिन्न उपासना पद्धधारियों में संधर्ष हो रहा था। धर्म व्यापार न गया था। धर्म के नाम पर पापाचार फल–फूल रहे थें।

'वष सुबनाई सुचि वचन कहें चुगइ जाई तौ न जरनि धरनि–धन धाम की।
कोटिक उपाय करि लगलि पालियत देह मुख कहियत गात राम ही के नाम की।
प्रगटै उपासना दुखै दुखासनहिं मानस निवास भूमि लोभ– मोह–काम की।।''

समाज में भाई–भतीजावाद, कुशासन बढ़ रहा था। तुलसी द्वारा विर्णित कलियुग वर्णन आज की स्थिति को प्रस्तुत करता है।

l!i!.k! thouck/k dh 0;k[;k

तुलसी के काव्य में विघटन, सरक्षण, विद्रोह, विखमता आदि को समाप्त करने की समार्थ्य है। कवि ने जीवन के सभी पक्षों की व्याख्या की है– चाहे वह गृहस्थी हो, संन्यासी हो, राजा या प्रजा हो, शिक्षक या व्यवसायी हो, सेवक हो या मालिक आदि। शुक्ल ने इसीलिए कहा है–

'अपने दृष्टि विस्तार के कारण ही तुलसीदास जी उत्तरी भारत की समस्त जनता के हृदय मंदिर में पूर्ण प्रेमप्रतिष्ठा के साथ विराजमान है।''

अंत में, कहा जा सकता है कि तुलसी ने जो कुछ अपने समय में लिखा, वह आज भी प्रासंगिक है। उनकी सोच आज भी महत्वपूर्ण है। उनका महान् काव्य 'रामचरितमानास' कालजयी कृति है जो विश्व की एकमात्र ऐसी रचना है। हरिऔध जी ने ठीक ही कहा है–

'बन राम रसायन की रसिका रसना रसिकों की भई सफला।
अवगाहन मानस में करके जनमानस का मल सारा टला ।
बनी पावन आका की भूमि भली, हुआ भावुक भावुकता का भला।
कविता करके तुलसी न लासे कविता लसी पर तुलसी की कला।।

कवितावली

6.

व्याख्या

mnck/ku

जाके विलोकन..जाचत औरहि। ।।"

शब्दार्थ–विलोकन–देखते ही, लोकप–लोकपाल, सुरमौरहि–देवताओं में श्रेष्ठ (विष्णु), जानकी–जीवन–जानकी के प्रियतम् अर्थात् रामचन्द्र जी, जीह–जीभ, जाचत–माँगना।

संदर्भ–प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य शिखर' के भक्त शिरामणि 'तुलसीदास' की रचना कवितावली के 'उत्तर काण्ड' से ली गई है। इसमें अपने आराध्य राम को स्मरण किया गया है।

व्याख्या: तुलसीदास कहते हैं कि जिनकी कृपा से मानव को लोकपाल का श्रेष्ठपद मिलता और देव लोक सुन्दर आकर्षक स्थान प्राप्त कर लेते है। वही कमला अपनी चंचलता को छोड़कर करोड़ों कलाओं में विष्ण भगवान स्वरूप राम को खुश करती है। ऐसे महिमा पंडित भगवान को छोड़ कर कुत्ते के समान दूसरों के टुकड़ो पर पलने वाले के ही समान अन्य देव से याचना करते लज्जा का अनुभव नहीं होता क्या तुलसीदास कहते है कि सीता–पति भगवान रामचन्द्र को छोड़ कर जो दूसरे के सामने हाथ फैला कर माँगता है उसकी जीभ जल नहीं जाती है। अर्थात सब की इच्छा पूरी करने भगवान राम की भक्ति करनी चाहिए।

विशेष:

1. भक्ति–भावना का आकर्षक रूप है।
2. रामचन्द्र की महिमा का गुण–गान है।
3. 'करी कोटिकला' 'कूकर–कौरहि' जानकी–जीवन' आदि में अनुरूप अलंकार हैं।
4. प्रसाद–माधुर्या गुण सम्पन्न शैली का प्रयोग है।
5. भक्ति रस का सुन्दर परिपाक है।

"जड़ पंच...कहा नर की ।। 2।।"

शब्दार्थ– पंच–पाँच तत्व (पृथ्वी, जल, पावक, गगन, समीर). धरनीधर–श्रीराम, जनकी–भक्त की, सचराचर–सारा संसार रमा–लक्ष्मी, जगत्पत्ति–प्रभु, श्रीराम, परवाह–चिन्ता।

संदर्भ–प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य शिखर' के तुलसीदास की रचना 'कवितावली' के 'उत्तर कांड' से ली गई हैं। इसमें श्री राम का गुणमान किया गया है।

व्याख्याः भक्त शिरोमणि तुलसीदास कहते हैं कि प्रभु रामचन्द्र की लीला अनोखी है उन्होंने पृथ्वी जल, पावन गगन और समीर पाँच तत्वों के सुन्दर योग से इस शरीर की रचना की हैं भगवान राम इस समस्त संसार की सृष्टि कर इसका पालन करते है तो उसी संसार के इस प्राणी की रक्षा क्यों नहीं करेंगे। निश्चय ही उनकी कृपा मिलेगी। तुलसीदास कहते है जिसकी सेवा लक्ष्मी करती हों उसके समान दूसरा कौन हो सकता है उन्होंने स्पष्ट किया है। जिस को संसार के रचयिता प्रभु का सहारा है उसे कोई चिन्ता को ही नहीं सकती है। अर्थात राम का भक्त सदा प्रसन्न रहता है।

विशेषः

1. आराध्यराम की उपासना है।
2. अगाध भक्ति भावना का चित्रण है।
3. अनुकरणीय गेयता हैं
4. 'कहु क्यों करि है', 'जाहि जगत्पति' 'कौ करनी था' में अनुप्रम्स अलंकार है।
5. सरल और बोधगम्य ब्रजभाषा का प्रयोग

जग जाचिऊ..कोटि कृपानहि रे।। 3।।

शब्दार्थ–जाचिऊ–याचना, माँगियें, जानकी जानहि–श्रीराम, जाचकता–गरीबी, जारति–जला देती है। जोर–बलात्, ध्वानत–जंगल की आग, कृपानहि–कृपाण के समान।

संदर्भ–प्रंसग–प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य शिखर' के तुलसीदास की 'कवितावली' रचना के 'उत्तरकाण्ड' से ली गई है। इसमें भगवान राम के महान दानी और जगत पालक के रूप में चित्रण कर उनके प्रति अपनी भक्ति–भावना प्रकट की गई है।

व्याकरणः तुलसीदास कहते हैं कि मनुष्य को जब भी कुछ मांगना है तो सर्वश्रेष्ठ दाता श्रीराम से ही माँगना चाहिए। प्रभुराम से याचना करते ही दरिद्रता का सदा–सदा के लिए साथ छूट जाता है। उनकी कृपा से दरिद्रता पूरी तरह जल कर भस्म हो जाती हैं। इस विषय में विभीषण के प्रकरण को देखिए और हनुमान के संदर्भ पर विचार कीजिए। सच है रावण के अपमान करने के बाद राम की शरण में आकर चमत्कार हुआ, हनुमान राम के पास आए तो सर्वप्रमुख भक्त की पदवी मिल गई।

तुलसीदास कहते है कि भगवान राम का ही भजन करो जो दावनल (जंगल की आग) के समान गरीबी आदि करोड़ो बाधाओं को जलाकर राख करने वाला आधार है।

विशेषः

1. भगवान राम के दयाल, कृपालुरूप का चित्रण हैं।
2. अनन्य अठिर–भावना की प्रस्तुति है।
3. सुन्दर लयात्मकता हैं।

4. 'जाचिअ जों जियँ जाचिअ जान की जानहि और जेहि जाचंत जाचकता जरि जाइ जो कारति जोर जहानहि' में मनभावन वृत्यानुप्रास अलंकार है।

5. प्रभावी ध्वन्यात्मकता और गेयता हैं।

सुनु कान..कुपंथ कुसाथहि रे।। 4।।

शब्दार्थ– नेमु–नियम, गुगाथहिं– गुण–गान, आनि–लाभ, भाथहि–तूणीर को, रसना–जिह्वा, कूर कपटी, कुसाथहि–बुरी संगति।

संदर्भ–प्रंसग–प्रस्तुत पद्यांश पुस्तक 'काव्य शिखर' के 'तुलसीदास' की रचना कवितावली के 'उत्तर कांड' से लिखा गया है। इसमें श्रीराम की भक्ति में ध्यान, चिन्तन और भजन आदि की उपलब्धियों का सुन्दर विवेचन किया गया है।

व्याख्याः तुलसीदास कहते हैं कि मनुष्य को नित्य–प्रति एकाग्रमन से जगत्पति श्री राम का भजन करना चाहिए। उनके धनुष–बाण धारण किए रूप पर जो अत्यन्त मनमोहक है पूरी तरह से ध्यान लगाना चाहिए। अपनी वाणी को अकर्षण रूप देने के लिए जानकीपति श्रीराम का ध्यान रात–दिन लगाना चाहिए। तुलसीदास कहते हैं कि मन को प्रसन्न करने तथा जीवन सफल करने के लिए बुरे लोगों का साथ छोड़ कर सज्जनों की संगति करनी चाहिए।

विशेषः

1. श्री राम के चिन्तन, भजन की महिमा का गान है।

2. अटल भक्ति–भावना की अभिव्यक्ति है।

3. 'संग सुशील सुंसतन' में वृत्यानुप्रास अलंकार का सुन्दर प्रयोग है।

4. आकर्षक गेयता हैं।

5. ब्रज भाषा का सरल बोधगम्य रूप हैं।

''सुतदार..भजु कोसलराजहि रे।। 5।।

शब्दार्थः दार–दारा, पत्नी, अगारू–घर, बिलाकु–देखों, बिगारू–बरबाद करना, जनि–मत, लालुप–लालची, कूकरू–कुत्ता, भजु–भजन करना।

संदर्भ–प्रसंगः पूर्ववत्

व्याख्या– तुलसीदास ने कहा हैं कि इस संसार में भक्ति साधना करने वाले को पुत्र, पत्नी, घर, मित्र और सकल परिवार को बाधक समाज के रूप में ही जानना चाहिए क्योंकि इनके साथ लग कर सच्चा सुख या आन्नद नहीं मिल सकता है। इनके आकर्षण को पूरी तरह छोड़कर समरस बन कर सज्जनों की संगति में जाना चाहिए। वही आत्मिक सुख मिल सकता है, तुलसी कहते हैं, हे गँवार मनुष्य। अपने क्षणभंगुर शरीर पर कुछ विचार करों, ऐसा करके तुम अपने कार्यो को मत बिगाड़। अर्थात् मोह माया से जीवन–लक्ष्य मिलना असंभव है।

तुलसी दास कहते है कि जिस प्रकार कुत्ता पेट भरने के लिए रोटी के टुकड़े हेतु इधर–उधर भटकता रहता है। उसी प्रकार तू मत भटक। जीवन सफल करने के लिए जगत् पालक रधुनाथ का भजन करो।

विशेषः

1. अन्य भक्ति का आकर्षक रूप है।
2. सुन्दर गेयता है।
3. सत्संगति के महत्व की चर्चा है।
4. माया से बचने का संकेत है।
5. 'समता सजि संत समाँ' में अनुप्रास अलंकार है।
6. ब्रजभाषा का सरल–सुबोध रूप है।

"विषया जूनती..न जागहि रे ।। 6।।

शब्दार्थ–परिनारि–पराई स्त्री, निसा–तरूनाई–तरूनाई यौवन रूपी रात, पहरव–पहरेदार, जरठाइ–वृद्धावस्था, उठयों–उदय हुआ, भजहूँ–अब भी।

संदर्भ प्रसंग–प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के तुलसीदास की रचना कवितावली के उत्तरकाण्ड से ली गई है। इसमें मनुष्य को मामा–मोह छोड़ कर जागने की चेतावनी दी गई है।

व्याख्याः तुलसीदास लिखते है कि हे मूर्ख जीव। तूने यौवन रूपी रात्रि में विषय–वासना रूपी परभी के चक्कर में फँस गया है। कुमति सांसारिक मोह माया में पूरी तरह फँस गया है। दुख रोग और वियोग जिसे तुम देख रहे हो। ये यमराज के पहरेदार है, फिर भी तू उस माया को नहीं छोड़ रहा है। तू ममता के वश में होकर सब कुछ भूल गया है। सोचो, सवेरा हो गया है। तुम उससे दूर हो जाओ। वृद्धावस्था रूपी दिशा में काल रूपी सूर्य दिखाई देने लगा है जीव, तू तब भी नहीं भाग रहा है। अर्थात मोह छोड़ कर भगवान का भजन कर।

विशेषः

1. संसारिकता से मुक्त होने का संदेश है।
2 निशा तरूनाई में रूपक अलंकार है।
3. 'पाईपरयो' वियोग बिलाकत, 'भमो भोरू'

   'भय भगहि' ' में अनुप्रास' अलंकार है।
4. सुन्दर लयात्मकता है।
5. ब्रजभाषा का आर्कषक रूप है।

"जनम्यो जेहिं...बरू–नायस की करनी।। 7।।

शब्दार्थ– जनम्यों–जन्म लिया, बतनी–वर्णन, हितू–हितैषी, जरनी–जलन, हिएँ–हृद्‌य, धरनी–दृढ़ निश्चय, बायस–कौवा, करनी–कर्म।

संदर्भ–प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्‌य पुस्तक 'काव्य–शिखर' के तुलसीदास कृत कवितावली के 'उत्तरकाण्ड़' से ली गई है। इसमें मनुष्य को प्रणियों में श्रेष्ठतम रूप मिलने पर भी अच्छे काम न करने और भगवान का भजन करने का संकेत कर सावधान किया गया है।

व्याख्याः तुलसीदास कहते है कि हे मनुष्या! तुमने जिस योनि में जन्म लेकर सुख के लिए जो–जो कार्य किया है, उसका वर्णन करना अत्यत्त कठिन है। मानव योनि में माता–पिता भाई–बहन आदि अनेक चाहने और सहयोग करने वाले मिले, किन्तु मन की अशान्ति और हृद्‌य की जलन नही गई।

तुलसीदास ने संकेत किया है तुम एकाग्र मन से राम के भक्त बन जाओ और चातक की भाँति अपना मन दृढ़ करके साधना करो। तुम हंस का सावेश धारण कर बगुले और कौवे के कर्म करना छोड़ कर भगवान का भजन कर और अच्छे कार्य करो।

विशेषः

1. कुमार्ग त्यागने की प्ररेणा है।
2. उत्तम कार्य करने का उद्‌बोधन है।
3. 'जनम्यों जेहिं जोनिं' में अनुप्रास अलंकार है।
4. सुन्दर गेयता और लयात्मकता है।
5. ब्रज भाषा का आकर्षण स्वरूप है।

"भलि भारतभूमि...नहि कें।।

शब्दार्थ– भलि–अच्छा, श्रेष्ठ, लहिके–लेकर, करणा–क्रोध, परूषा–परूष, कठोर, घाम–घूप, समान–चतुर। नतु–नहीं तो, कामदुहा– कामधेनु।

संदर्भ– वस्तुत काव्यांश पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के तुलसीदास कृत कवितावली के 'उत्तराकाण्ड' से उद्धृत है। इसमें मनुष्य को सचेत किया गया है कि अच्छे कुल में उत्पन्न कर अच्छे कर्म करके ही सम्मान पा सकते है। इसके विपरीत संकट ही संकट भोगना होगा।

व्याख्या– तुलसीदास ने लिखा है कि भारत की इस धन्य और मनोहारी भूमि पर श्रेष्ठ परिवार में जन्म लेकर काम–मोह को त्याग कर विभिन्न ऋतुओं की वर्षा धूप,शीत आदि को सहन करते हुए मनुष्य को भगवान की साधना करने वाला ही सफल होकर सम्मान प्राप्त करता है। उसे चालक पक्षी के समान दृढ निश्चय करके साधना करनी होती है। ऐसा व्यक्ति ही ज्ञानी बनाता है। ऐसा न करने वाला व्यक्ति सोने के हल में कामधेनू को जोत कर भी केवल विष को बोता रहता है। अर्थात् उसका जीवन कष्टमय हो जाता है।

विशेषः

1. उत्तम कार्य करने हेतु उद्बोधन है ।
2. 'हठ चातक ज्यों' में उपमा अलंकार है।
3. 'भलि भारत भूमि मले' में अनुप्रास अलंकार है।
4. आकर्षक गेयता है।
5. ब्रजभाषा का सरल–मधुर प्रयोग है।

fuo॥nu

"सो जननी...हाई सबेरो।। 9।।

शब्दार्थ– भामनी–पत्नी, चेरो–सेवक, नेहु–ममता, सनेहसों–प्रेम से, सवेरो–जल्दी।

सदर्भ–प्रसंग–प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठय पुस्तक 'काव्य–शिखर' की तुलसीदास कृत कवितावली के उत्तरकाण्ड से ली गई है। इसमें श्रीराम के बहुविधि सहयोग की पद्धति को ध्यान में रख कर उनकी उपासना का संकेत किया गया है।

व्याख्या– तुलसी दास ने रामभक्त की प्रशंसा करते हुए लिखा है जो मनुष्य अपने घर को घर की माया को छोडकर भगवान राम का भक्त जाता है, वह मेरे लिए पूजनीय है। वह मेरे लिए माता, पिता, भाई पत्नी, पुत्र, हितैषी सगे संबंधी, मित्र सेवक, गुरू, देवता, स्वामी और सेवक आदि सब रूप में ग्राहय है।

तुलसीदास कहते है ऐसा व्यक्ति मेरे लिए बहुत ही प्रिय होता है, उसका वर्णन जितने भी प्रकार से करना चाहूँगा। संभव नहीं होगा।

विशेषः

1. राम–भक्त की महिमा का गुण–गान है।
2. भक्ति भावना की प्रस्तुति है।
3. 'सो सुतु सो' 'सोइ सगो सोसरण सोइसेवक' में वृत्यानुप्रसा का आकर्षक प्रयोग है।
4. सुन्दर गेयता का स्वरूप है।
5. 'सो तुलसी प्रिय प्रान समान' में उपमा अलंकार है।
6. ब्रज भाषा का आकर्षक रूप।

"तिन्हतें खर..बिन ह्वै।। 13।।

शब्दार्थः स्वान–कुत्ता, विषान–सींग।

संदर्भ प्रसंग— प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य—शिखर' की तुलसीदास कृत कवितावली के 'उत्तरकाण्ड' के 'निवेदन' से ली गई है। इसमें रामभक्त की महिमा प्रस्तुत करते हुए राम—विमुख को सृष्टि के निम्नतम प्रणियों के समान जीवन ढ़ोने वाले में स्थान दिया है।

व्याख्या— तुलसीदास ने राम विमुख लोंगों के विषय में लिखा है। ऐसे व्यक्ति वास्तव में पशु के समान है। उनके केवल सींग और पूँछ नहीं है। यदि उनकी प्रवृति को देखें, तो गधा सुअर और कुत्ते भी उन से श्रेष्ठ सिद्ध होते है। ऐसे व्यक्तियों के विषय में तुलसीदास का कहना है माता ने ऐसे व्यक्तियों के लिए दस माह तक गर्भ में रख कर कष्ट को सहा। इससे तो अच्छा होता, वह बाँझ होती या गर्भपात हो जाता।

तुलसीदास कहते है ऐसे मनुष्य का जीवन व्यर्थ है जो श्री राम के भक्त नहीं हैं उनका जीवन ही नष्ट हो जाना अच्छा होगा। ऐसे व्यक्ति धरती पर बोझ होते हैं।

विशेषः

1. भक्ति—भावना का आकर्षक चित्र है।
2. राम से विलग व्यक्ति के जीवन की निरर्थकता का चित्रण है।
3. 'जरि जाउ,' 'जीवन जानकीनाथ जिय जग' में अनुप्रास अलंकार का प्रयोग है।
4. सुन्दर लयात्मकता है।
5. ब्रजभाषा का अकर्षक रूप है।

"झूमत द्वार..रंग न राते ।। 16 11

शब्दार्थ— मतंग—हाथी, चुचाते—टपकाते है, तुरंग—घोड़े, पौन—वायु, गोनहु—गति, चन्द्रमुखी—सुन्दर, खरे—खड़े।

संदर्भ—प्रसंग— प्रस्तुत पघांश पाठ्यपुस्तक 'काव्य शिखर' की तुलसीदासकृत कवितावली के 'उत्तरकाड' के निवेदन से लिया गया है। इसमें दर्शाया गया है। कि यदि समस्त सुख सम्पन्नता हो, किन्तु भगवान, भक्ति न हो, तो उसका जीवन निरर्थक होता है।

व्याख्या— तुलसीदास ने श्रीराम की भक्ति की महिमा को स्पष्ट करते हुए कहा है कि जो मनुष्य श्रीराम का भक्त नहीं है उसका जीवन व्यर्थ है। भले ही उसके द्वार पर जंजीर में बंधे हुए मदमस्त हाथी झूमते हों, उनके यहाँ के घोड़े वायुगति से कहीं अधिक भागने की शक्ति रखते हों, रनिवास चन्द्रमुखी के सौन्दर्य से पूर्ण रूपेण सुशोभित हो, उनके दरबार से बाहर अनगिनत राजा खड़े होकर सम्मान देते है। किन्तु इन सब विशेषताओं के होते हुए यदि वह श्री राम की भक्ति नहीं करता है। तो उसका जीवन निरर्थक है। इस प्रकार मानव जीवन का महत्व श्रीराम की भक्ति से ही होता है।

विशेषः

1. भक्ति भावना का आर्कषक चित्रण है।
2. श्री राम की भक्ति के अभाव में जीवन व्यर्थ है।

3. 'मनोगति चंचल' मुहावरे का प्रयोग है।

4. आकर्षक ध्वन्यात्मकता है।

5. ब्रज भाषा का सरल मधुर रूप है।

"कानन मूधर .... सहामन्य ।। 22।।

शब्दार्थ–कानन–जंगल, बारि–वरिजल, बयारी–हवा, नेरे–निकट, नाक–स्वर्ग, रसातल–पाताल।

संदर्भ–प्रसंग–प्रस्तुत पद्यांश पाठ्यपुस्तक काव्य–शिखर की तुलसीदासकृत कवितावली के उत्तराखण्ड के 'निवेदन' से लिया गया है। इसमें श्रीराम की सर्वव्यापकता, सर्वशक्तिमान और महत्ता का विवेचन किया गया है।

व्याख्या: तुलसीदास ने कहा है कि पतिपावक, कष्टनिवारक श्रीरामजी अपने भक्तों की वन में, पर्वत पर, जल में, हवा में, विषपान पर, रोग ग्रस्त होने पर, अग्नि से घिर जाने पर, रानु के द्वारा आक्रमण किये जाने पर और जहाँ पर करोड़ों–करोड़ों संकट आ जाते हैं माता–पिता पुत्र, मित्र और भाई बन्धु कोई समीप नहीं होता है वहाँ भी सहायता करके सफलता के मार्ग पर पहुँचाते हैं। उनके सेवक पवनसुत बजरंगबली हनुमान है वे अपने भक्तों की रक्षा करते हैं। श्रीराम अपने भक्तों की रक्षा आकाश, पाताल और पृथ्वी पर करते हैं। इस प्रकार श्रीराम भक्तों को रक्षक और पथ–पदर्शक हैं।

विशेषः

1. भक्तवत्सल श्रीराम की महिमा का गुणगान है।

2. भक्ति–भावना का सुन्दर स्वरूप है।

3. पद्य में विभिन्न नामों के क्रमशः प्रयोग में परीगणन शैली हैं।

4. गेयता का आकर्षक रूप है।

5. ब्रज भाषा का आकर्षक रूप है।

मातु–पिताँ...न लाई ।। 23।।

शब्दार्थ–जाई जन्म देकर, विधि हूँ–विधाता ने निरादर भाजन–अपमान का पात्र, कूकर–कुता, ललाई–ललचाना, खलाई–खाली खोरि–कमी।

संदर्भ–प्रसंग–प्रस्तुत पंधांश पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' की तुलसीदास कृत कवितावली के 'उत्तकाण्ड' के निवेदन से लिया गया है। इसमें संसार की निरर्थकता के साथ श्रीराम की भक्ति की शक्ति की चर्चा की गई है। समस्त उपलब्धियों का आधार रामभक्ति है।

व्याख्या– तुलसीदास ने लिखा है कि मेरे माता–पिता ने मुझे जन्म दिया और फिर भी मैं संसार में अकेला हो गया। विधाता ने भी मेरी भाग्य में कुछ भी अनुकूल नहीं बनाया है वरन् सभी प्रकार से विपरीत रखा है। मैं संसार में नीच, निरादर पाता रहने वाला और कायर पुरूष की तरह भटकता रहा

हूँ और कुत्तों की तरह टुकड़े लालयित रहा हूँ। मुझे जब श्री राम की महिमा का ज्ञान हुआ तो मैंने अपना पेट खोल कर उनके सामने प्रस्तुत हो गया। ऐसे में भगवान राम ने न केवल इस लोक वरन् उस लोक को भी सँवारने में देर न लगाई। भगवान श्री राम की कृपा से मुझे मुक्ति मिली है।

विशेषः

1. भक्ति मानव का चित्रण है।
2. श्री राम की महिमा का चित्रण है।
3. 'पेट खोलकर रखना' मुहावरे का प्रमाण है।
4. सुन्दर लयात्मकता है।
5. ब्रज भाषा का आकर्षक रूप है।

vkjk/ku

"ईसन के ईस...सावधान हौ।। 25 ।।

शब्दार्थ–ईसन–ईश, महाराजन–महाराजाओं के निदान–कारण, वरापार–सीमा।

संदर्भ–प्रसंग प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' की तुलसीदास कृत कवितावली के 'उत्तरकाण्ड' के आराधन शीर्षक से ली गई है। इसमें आराध्य श्रीराम की महिमा का गुण–गान किया गया है। उस करुणानिधान की कृपा से जीवन में मुक्ति संभव है।

व्याख्या– तुलसीदास ने कहा है कि हे राम! इस संसार के रचयिता अर्थात् ईश्वर के ईश्वर है महाराजाओं के महाराज है। आप देवताओं के पूज्य देवता और प्राणों के प्राण है। आप काल के काल है और पंच महाभूतों के महाभूत है आप कर्म के भी कर्म है और आधार के भी आधार है। आप की महिमा वेदों में भी आगम कही गई है। अर्थात वेद भी आपकी महिमा गाने में असमर्थ है। तुलसीदास कहते है किन्तु उनके समान भक्तों के लिए श्रीराम का गुण–गान संभव है। निश्चय ही श्री राम शील के निधान और करूणा विधान है। आपकी महिमा अपार है आप की महिमा अमनीष है आप अपनी गरिमा के अनुपालन में सदा ही तत्पर रहते हैं अर्थात भक्तों के कष्ट निवारण में देर नहीं लगाते है।

विशेषः

1. भक्ति–भावना का सुन्दर चित्रण है।
2. भक्ति इस का परिपाक है।
3. सुन्दर ध्वन्यात्मकता है।
4. सूक्ष्म भाव भी स्पष्ट अभिव्यक्ति है।
5. तद्भव के साथ तत्सम शब्दों का आकर्षक प्रयोग है।
6. सुन्दर लयात्मकता है।
7. ब्रज भाषा का आकर्षक प्रयोग है।

ehjkckbZ

l eh{kk

1.

मीराबाई का व्यक्तित्व व कृतित्व

मीराबाई मध्यकालीन भक्तिकाव्यधारा में ही नहीं वरन् हिंन्दी साहित्य की समूची भक्तिधारा में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। वह राजस्थान की सर्वोत्कृष्ट भक्त कवयित्री थी।

thouo`Ùk

मध्यकालीन कवियों की भाँति मीराबाई के जीवनवृत्त के विषय में मतभेद है। उनके जीवन के विषय में ऐतिहासिक सामग्री की मांग कम ही है। अधिकांश विद्वान उनका जन्म राजस्थान के कुड़की गाँव में संवत् 1555 (1498 ई०) में मानते है। मीराबाई का संबंध जोधपुर के संस्थापक राजा जोधा जी से था। इनके पिता राजा रत्नसिंह रावदूदा जी के पुत्र थे और दूदाजी जोधाजी के पुत्र थे। मीराबाई अपने पिता की अकेली संतान थी। बचपन से ही इनका मन गिरधर गोपाल की भक्ति में था। उन्होंने अपनी आस्था इस तरह के पद में व्यक्त की है –

आवो मनमोहन जी मीठी धारो बोल।
बालपनों की प्रीत रपइया जी, कदे नाहिं आयों थारो ताल।
दरसण बिन मोहि जकण परत है, चित्त मेरो डावाँडोल।
मीरा कहै मैं भई बावरी, कही बजाऊँ ढोल।।

मीरा को बचपन में माता से वंचित होना पड़ा। इनका पालनपोषण इनके दादा ने मेड़ते में किया। पिता युद्धों में अधिक वयस्त रहते थे। अतः वे मीरा को अधिक समय नहीं दे सकते थे। जन्म की भाँति इनके विवाह को लेकर भी विद्वानों में वैमत्य है। अधिकांश विद्वान इनका विवाह मेवाड़ के प्रसिद्ध महाराणा सांगा के पुत्र कंवर भोजराज के साथ मानते है। मीरा का वैवाहिक जीवन सुखमय था, परंतु यह अल्प समय तक रहा। जल्दी ही राणासांगा के जीवनकाल में ही इनके पति भोजराज की मृत्यु हो गई है। विधवा होने के कारण मीरा ने अपनी सारी भक्ति ओर आसक्ति प्रभु के चरणों में अर्पित कर दी। पति की मृत्यु के बाद मीरा को उसके देवरों ने अनेक यातनाएँ दीं। उन्हें विषयान तक करना पड़ा। यातनाओं से पीड़ित होकर मीरा को मेवाड़ भी छोड़ना पडा था और उन्हें मेड़ता में शरण लेनी पड़ी। मेड़ता से वे वृंदावन चली गई और वहाँ से वे द्वारका गयी। संवत 1630 में इनका देहावसान हो गया।

jpuk,¡

मीरा की रचनाएँ पदों के रूप में प्राप्त हुई हैं। इनकी कृतियों के विषय में भी विवाद है। सामन्यतया विद्वान इनकी निम्नलिखित रचनाओं को मानते है :–

1. गीत गोविंद की टीका
2. नरसी जी रो मोहरे।
3. फुटकर पद
4. राग सोरठ संग्रह
5. राग गोविंद
6. मीराँ की मल्हार
7. गर्वागीत

'नरसी जी रो माहरो' कृति मे नरसी मेहता के माहंर का वर्णन है। गीत गोविन्द की टीका अप्राप्य है। 'रोग सोरठ' में मीराँ, कबीर व नामदेव के पदों का संग्रह है। मीरा के फुटकर पदों की संख्या 500 तक मानी जाती है।

dk0;xr fo'ks"krk,¡

मीरा का काव्य हृदय को छूता है। उनके काव्य में उनके हृदय की कोमल भावनाएं ही व्यक्त हुई हैं। इनके काव्य की निम्नलिखित विशेषताएँ :–

iz`e Hkkouk

मीरा की काव्यसाधना का दूसरा नाम प्रेमसाधना है। यह प्रेम अपूर्व और अलौकिक है। मीरा अपनी सुधबुध विसारे कृष्ण का स्मरण करती है। प्रेम में संसार बाधाएँ खड़ी करता है। लोग मीरा बिगड़ी कहें या बनी – प्रेम का नशा उसके तन – मन में व्याप्त है :–

'आली रे मोरे नेनन बान पड़ी।
चित्त चढ़ी मेरे माधुरी मूरत उर बीच आन अड़ी।
कैसे प्रान पिया बिन राखो जीवन मूल जड़ी ।
मीरा गिरधर हाथ बिकानी, लोग कहैं बिगड़ी।

सच्चा प्रेमी इन सबकी प्रवाह नहीं करता।

भक्त स्वयं को आत्मग्लानि में डुबोकर भक्ति करता है, लेकिन मीरा स्वंय को कृष्ण को अर्पण कर चुकी है। वह उसी के ध्यान में मग्न रहती है। मीरा अपने भगवान के सहारे इस भव सागर से पार उतरना चाहती है।

'ओर आसिरों नाहीं तुम बिन तीनों लोक मंझार।
आप बिना मोह कछु न सोहावै निरख्यों सब संसार।।'

कृष्ण के न मिलने पर वह उसे उलाहना देती हैं अपने प्रियतम को प्रेम की पीर से परिचित करवाती है। नाना प्रकार के आकर्षक दिखाती है, परंतु उसके न आने पर वह विरह के अगाध समुद्र में डूबती है, विरहाग्नि में जलती है। वह मिलन की आकांक्षा रखती है।

'म्हारे जनम – जनम को साथ थने नहीं बिसरू दिन राती।
तुम देख्या बिन कल न परत है जानत मेरी छाती।
ऊँची चढ़ चढ़ पंथ निहारूं निरख – निरख सुखपाती।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर हरि चरन चित्त राती।

प्रियतम के न मिलने पर उसके मन में अनेक प्रकार की कुशंकाएं उठने लगती है। उसे लगता है कि कृष्ण उससे दूर होने लगे हैं :–

'हो गए स्याम दूझ के चंदा
मधुबन जाइ भये मधु बनिया, हम पर डारो प्रेम को फंदा।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, अब तो नेह परो कछु मंदा।।'

मीरा का रोम–रोम कृष्ण के रंग में डूबा हुआ था। इसलिए वह कहती है :–

'इन नैनन मेरा साजन बसता डरती पलक न लाऊंरी'

HkfDr Hkkouk

मीरा गिरधर गोपाल की अनन्य प्रेमिका थी। उसने किसी संप्रदाय से दीक्षा नहीं ली। उसने किसी पद्धति विशेष को भी नहीं अपनाया। उसने राधा की भक्तिभावना को ग्रहण कर अपने को पूर्णतः कृष्ण के चरणो में समर्पित कर दिया। उसने गिरधर गोपाल को कंत बनाया। मीरा की प्रीत जन्मजन्मांतरों की थी। वह कृष्ण को एकमात्र पूर्ण पुरूष समझती थी। कृष्ण ही साधन है और साध्य भी।

'म्हारो तो गिरधर गोपाल दूसरो णा कोई।
साध्या ढिग बैठ बैठ लोकलाज खोई।'

मीरा की भक्ति माधुर्य भाव से परिपूर्ण है। इस भक्ति में प्रिय मिलन की लालसा, विरह की तीव्रता, असारता, आत्मसमर्पण आदि गुण होते हैं। वह कृष्ण से दाम्पत्य संबंध रखती है। वह उससे मिलने की प्रार्थना करती है :–

'म्हारे घर आज्यो प्रीतम प्यारा।
तुम बिन सब जग खारा।

कृष्ण को वह तनमन समर्पित कर देती है :–

'तणमण जीवनण प्रीतम वारयां, थरे रूप लुभाणा'

मीरा ने अपने हृदय की समस्त भावनाओं को भक्तिसूख में बांधकर कृष्ण की अराधना की है। उसके काम में नवधाभक्ति को सभी रूप यथा – श्रवण, कीर्तन, सख्य, तीर्थाटन, पूजन, स्मरण, दास्य आदि पाए जाते है।

xhrkRedrk

गीतिकाव्य कवि की वैयाक्तिक भावधारा एंवम अनुभूति की लयात्मक अभिव्यक्ति हैं। मीराँ का सारा काव्य गेयता, गुण से युक्त है। इनके काव्य में आत्माभिव्यक्ति, संगीतात्मकता, भावात्मक एकता व स्वानुभूति एवम् भावना की पूर्णता आदि गीतिकाव्य की प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। मीरा के काव्य में उसके हृदय की तड़प स्पष्टतः सुनाई पड़ती है। उन्होंने सुख के साथ विरह की अभिव्यक्ति की है। उसके विषाद में असहायता, विवशता का वातावरण छाया रहता है।

डारि गायो मनमोहन पासी।
आंक्षा की डालि कोइल इक बौले, मेरो मरण अरू जग केरी हांसी।
विरह की मारी मैं बन – बन डोलूँ, प्रान तजूँ करवत लयूँ कासी।

मीरा के पदों में किसी न किसी राग का निर्वाह हुआ है तथा हर पद में अनुभूति की गहनता छलकती है। वे एक उन्मुक्त पक्षी की तरह गाती है। संगीत गीतों की स्वर लहरी में मिलकर कंपन करता है। उसके गीतों में भागों का एक्य मिलता है। गीतिकाव्य की दृष्टि से इनका काव्य आदर्श काव्य कहा जा सकता है।

Hkk"kk

मीरा राजस्थान की कवयित्री हैं। उनके काव्य की भाषा में कोमलता, सरसता, मधुरता, सुबोधता आदि गुण पाए जाते हैं। मुख्यतः राजस्थानी, पंजाबी, ब्रजभाषा व गुजराती भाषा का अधिक प्रयोग हुआ है।

समान्यतः पद राजस्थानी भाषा मे लिखे गए हैं। यथा :–

नंद नंदण मण भायां बादलां नभ छायां।
इत धण गरजाँ उत धण लरजां चमका बिज्जु डरायां।

मीरा विभिन्न प्रांतो में धूमती रहती थी और विभिन्न प्रांतों कें साधुसंतों से उसका संपर्क रहता था, अतः अन्य भाषाओं के शब्द भी यत्र – तत्र उनके काव्य में मिल जाते हैं। इनकी भाषा में वर्णयोजना व शब्दों का प्रयोग भावानुकूल है। इनकी भाषा में प्रवाह हैं। उषा गुप्ता के अनुसार,

"अनगढ़ बीहड़ चट्टानों पर उछलती, टकराती, बढ़ती हुई जलधारा जिस प्रकार अपूर्व मधुर संगीत उत्पन्न करती है, मीरा के हृदय की वेदना, टीस, बेचैनी तथा व्याकुलता भी स्वाभाविक विवशतावश स्वतः निकले हुए अनगढ़ और अकृत्रिम शब्दों द्वारा उसी प्रकार का संगीत उत्पन्न करती है।"

vyadkj & ;kstuk

मीरां ने अपने काव्य के शब्दालंकारो व अर्थालंकारों का प्रयोग किया है। उनके काव्य में अलंकारों का विधान स्वतः हुआ है। अनुप्रास, वीत्सा, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का आकर्षक प्रयोग किया हैं। यथा –

अनुप्रास – भोजन भवन भलो नहि लागै पिया कारण भई गेली।

वीप्सा – हे मां बड़ी बड़ी आंखियन वारों सांवरो मो तन हेरत हंसिके।

उपमा – ज्यूँ चातक धण कूं रटै मछरी ज्यूं पाणी हो।

मीरां व्याकुलता विरहिणी सुध–बुध विसराणी हो।

उत्प्रेक्षा – धरती रूप नवा – नवा धरिया इंद्र मिलन के काज।

Nnfo/kku

मीरां ने अनेक छंदो का प्रयोग किया है। इन्होंने सार, सरसी, विष्णुपद, कुंडल, ताटंक बरवै, मनहर आदि छंदों का प्रयोग किया है। यथा –

विष्णुपद– 'राम नाम जप लीजै प्राणी, कोटिक पाप करे रे।

जनम जनम की खता प्ररानी, नाम हिलत फटे रे।'

सार छंद – 'मतवारे बादर आये रे, हरि को सनेसो कछु न लाये रे।

दादुर मोर पपइया बोलै, कोयल सबद सुणाये रे।'

मीरा के छंद दोषरहित नहीं है। उनमें मात्रा संबंधी दोष है। इसके अतिरिक्त, कवयित्री ने बिंब विधान ओर शब्दशक्ति के अनुसार मीरां का काव्य उच्चकोटि का है।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि मीराबाई का काव्य संवेदना, संगीत व शिल्प की दृष्टि से उत्कृष्ट है।

2.

मीराबाई की प्रेम–साधना

मानव मन विभिन्न का अक्षय कोष है। प्रेम से ही मानव की आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है क्योंकि प्रेम के क्षेत्र में 'मैं' का भाव नहीं रह सकता। मानव मन में मूलतः प्रेम का अपरिष्कृत रूप होता है और जब मनुष्य अपनी इन मूल अपरिष्कृत भावनाओं को किसी महत् उद्देश्य की और उन्मुख कर देता है तो वही 'प्रेम' भक्ति या कला का रूप ले लेता है। आधुनिक कवि पंत ने भी प्रेम की महिमा का वर्णन किया है :–

'प्रेम की का नाम जप, जिसने नहीं,
रात्रि के पल हों गिने, प्रति शब्द से।
चौंक कर, उत्सुक नयन जिसने नयन जिसने उधर,
हो न देखा, प्यार क्या उसने किया।'

मीरा कृष्ण प्रेम में विभोर है, उसका कण – कण कृष्णमय हो गया हैं उसका प्रेम दिनों – दिन बढता जाता है। उसके काव्य में प्रेम ही प्रेम का गान हुआ है। उसने नटवर कन्हैया, श्यामसुंदर को देखा। नयनों के द्वार से कृष्ण उसके हृदय में समा गए और मीरा की श्याम से लगण लग लई, प्रीति हो गई –

लगण म्हारी श्याम सूं लागी नेणां निरख सुख पाय।

वह अपने प्रियतम के चरणों में सब कुछ न्यौछावर करने को तैयार है। किंतु संसार के अधिकंश व्यक्ति दो प्रेमियों के मध्य दीवार बनकर खड़े होने में ही अपने जीवन की सफलता मानते है। सत्य की अपार शक्ति से ओत – प्रोत प्रेमी का सच्चा प्रेम लुक – छिप कर नहीं, बल्कि मीरा की तरह डंके की चोट होता है। यथा –

माई री म्हां लिया गोविंदा मोल।
ये कहयां छाणें म्हां काँ चोड़डे लिया बजन्ता ढोल।
ये कहयां मुंहोधो म्हां कहयां सस्तों, लिया री तराजां तोल।
तणवास म्हां जीवन वाएं, वाएं अमोलक मोल।
मीरा कू प्रभु दरसण दीज्यां, पूरब जन्म को कोल।

लौकिक मर्यादाओं से ऊपर

सच्चा प्रेम लोकनिंदा व कुल की मर्यादा की चिंता नहीं करता। प्रेम के क्षेत्र में विचरण करने वालों को लौकिक मर्यादाएं व बंधन अखरते हैं और उसे लोक की आलोचना सहन करनी पड़ती है। प्रेमोन्माद में प्रेमी का उन्मुक्त हृदय सहज ही गा उठता हैं ।

'माई सांवरे रंग राची।
साज सिंगार बांध पग घुंघरू, लोकलाज तज नाची'

डा० उर्वशी सूरती का कहना है :—

'प्रेम की पीड़ा मीठी होती है, क्योंकि अभिलाषा की पूर्ति की आशा से मन काल्पनिक आनंद लूटता है, अतृप्त तृष्णा की मधुर पीड़ा का अनुभव करते समय व्यक्ति अपना 'स्व' भूल जाता है, आनंदानुभूति के कारण उसे वेदना प्रिय मालूम होती है।" मीरा ने अपने प्रियतम के मिलन की पूरी आशा एवम् विश्वास है। वह सुखानुभूतियो की संचित सुखद स्मृतियों में छिपा हुआ अभूतपूर्व सुख और आनन्द लूटती है। पूर्वानुभूति का सुख ही विरह — दग्ध मन का एकमात्र संबल होता हैं। यथा —

होरि खेलत है गिरधारी।
मुरली चंग बजत हुफ न्यारों, संग जुवती ब्रजनारी।
चंदन केसर छिरकत मोहन, अपने हाथ बिहारी।
भरि भरि मुठि गुलाल लाल चहुं, देत सबन पै डारी।
छैल छबीले नवल कान्ह संग, स्यामा प्राणपियारी।
गावत चार धमार राग तह, दै कल करतारी।
फागु जू खेलत रसिक सांवरो, बाढ़यों रसब्रज भारी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, मोहनलाल बिहारी।

प्रेम व वेदना चिरसंगी होते हैं। यह विरह ही प्रेम तत्व का सार है जिसमें प्रेमी को एक पल भी अपने प्रिय के बिना चैन नहीं पड़ता। अपने गिरधर के वियोग में व्याकुल मीराँ की दशा भी कुछ ऐसी है :—

'घड़ी एक नहीं आवड़ै, तुम दरसण बिन मोय।
तुम हो मेरे प्राण जी, का सूं जीवण होय।।
धान न भावै, नींद न आवै, विरह सतावै मोइ।
घायल सी घूमंत फिरूँ रे, मेरो दरद न जानै कोइ।।

मीरा को प्रिय के दर्शन नहीं होते। विरह की ज्वाला उसके सर्वांग को जलाने लगती है। वह अपनी अर्न्तव्यथा को किसी के सामने रूह भी नहीं पाती। वह कहती है।

हे री मैं तो दरद दीवानी, मेरो दरद न जाण कोय।
घायल की गति घायल जाणै, की जिन लाई होय।।

इन पंक्तियों में युग — युग की विरहिणी नारी की अकथ्य वेदना ही धनीभूत हो उठी है।

fojg dk ojnku : i e LohÑfr

प्रेम के लिए प्रिय का विरह एक प्रकार का वरदान हैं। विरह की वर्तिका ही प्रेम की लौ को सतत प्रज्ज्वलित रखती है। जिसके कारण एक क्षण के लिए भी प्रिय का स्मरण नहीं होतो है। विरहिणी के लिए रात और दिन में कोई अंतर नहीं। वह रात — रात भर जागकर आँसुओं की माला पिरोती है। कैसी अनन्य है उसकी यह साधना :—

मै विरहणि बैठी जागूं, जगत सब सोवैरी आली।
विरहणि बैठी रंगमहल में, मोतियन की लड़ पौवे।
इक विरहणि हम ऐसी देखी, अंसुवन माला पोवै।
तारा गिण – गिण रैन बिहानी, सुख की घड़ी कब आवै।
मीराँ को प्रभु गिरधर नागर, मिलकर बिछुड़ न जावै।

वियोग में प्रिय का संदेश ही प्रेमियों का एकमात्र संबल होता है। जिसके सहारे वियोग की दुःखद घडियाँ काट लेते हैं, परंतु मीरा को यह सौभाग्य प्राप्त नही। उनके कृष्ण का कोई संदेश नहीं आता। वह उनकी इस निष्ठुरता पर खीझ उठती है –

कोई कहियो रे प्रभु आवन की।
आवन की,मन भावन की, कोई कहियौ रे.......
आप न आवै, लिख नहीं भेजै, बाण पड़ी ललचावन की।
ए दोइ नैन कहूयौ नहिं मानै, नदिया बहै जैसे सावन की।

प्रिय को दर्शन देने के लिए वह बार – बार अनुरोध करती है। उनकी व्यथा का अनुमान इस पद से लगाया जा सकता है :–

'क्यूं तरसावौ अन्तरजामी, आय मिलों किरपा कर स्वामी।
मीरां दासी जनम – जनम की, परी तुम्हारे पाय।।

मीरा प्रेमोन्मादिनी थी। श्याम के ध्यान में तन्मय होने पर वह अपनी सुध बुध खो बैठती थी। तब वह हर्षविभोर हो नाच उठती थी।

'पग घुँघरु बाँध मीरा नाची, रे।
मैं तो मेरे नारायण की, होगई आपहि दासी रे।
लोग कहें मीरा भई बावरी, न्यात कहँ कुल नासों रे।

fojg e: míhiu vk/kj n'ku dkeuk

प्रिय का यह विरह तब और उद्दीप्त हो उठता है जब आकाश में सावन के बादल उमड़ने लगते हैं एवम् अपनी प्रिया सौदामिनियों को परिख्य में भरे मंदमधुर गर्जन करने लगते हैं। प्रिय के आगमन के साथ मीराँ के जन्मजन्मांतर सफल हो जाते हैं। हर्ष विभोर मीरां ज्योतिषी को लाख लाख बधाइयाँ देती है। स्पष्टतया ये सब काल्पनिक हैं। फागुन के एक ऐसे गीत में मीराँ के मन का उल्लास फूट पड़ता है।

'फागुन के दिन चार रे, होली खेल मना रे।
बिन करताल पखावज बाजै, अनहद की झणकार रे।
बिन सुर राग छतीसूं गावै, रोम – रोम, रंगसार रे।'

मीरां कभी गिरधारी की सेविका होने की कामना करती है तो कभी उनके दर्शन मात्र से अपनी संतुष्टि कर लेती है। कभी वह आराध्य को जोगिया कहकर पुकारती है। प्रिय के आगमन पूर्व विरह असह्राय तो होता ही है, मिलन के पश्चात् तो यह बिछोह और भी दारूण हो जाता है। दीर्घ प्रतीक्षा के पश्चात् आए हुए प्रियतम का जाना विरहिणी के लिए मरणांतक पीड़ा बन जाता है। मीरा पुकार उठती है।

जोगी मत, मत जा, मत जा, पाँइ परूँ मैं तेरे।
प्रेम भगति को पैड़ो ही न्यारों, हम कूं गैल बता जा।
अगर चंदन की चिता बणाऊँ, अपणे हाथ जला जा।

vkRe & leiZ.k

मीरा का प्रेम इसी अनन्य आत्मसर्मपण की उदात्त भावना से प्रेरित है। लौकिक प्रेम की तीव्रता एवम् उत्कृष्टता से मुक्त है। यह भावना के उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित है। जो लोकोत्तर और अतीन्द्रिय है। मीरा के काव्य का मूल स्वर विरह हैं। प्रेम की लगन लगाकर भी उसे दर्शन नहीं होते है। तब उसका मन विभिन्न शंकाओं से भर उठता है कि उसका प्रियतम उसे भूल नहीं गया या वह किसी के प्रेम – पाश में फंस गया है। यथा –

'वारि – वारि ही राम हूँ वारी, तुम अज्या गली हमारी।
तुम देख्यां बिन कल न पड़त है, जोऊ बाट तुम्हारी।
कूण सखी सूँ तुम रंग राते, हम सूँ अधिक पियारी।
किरपा कर मोहि दरसण दीज्यो सब तकसीर बिसारी।

HkkX;oknh vkSj vkjk/; vk/kkfjr

थका व पराजित मन भाग्यवादी बन जाता है और फिर प्रेम व्यापार में असफल प्रेमी अपनी असफलता को कार्मों की गति मानकर संतोष कर लेता हैं उसकी धारणा बन जाती है कि जीवन के प्रत्येक सुख – उल्लास की प्राप्ति कर्मों की गति पर निर्भर करती है। मीरा ने भी कर्मों की इस गति का वर्णन करते हुए कहा है –

'करम गत टारां नाही टरां।
सतवादी हरिचंदा राजा, डोम घर वीएं भरां।
पांच पांहुरी राणी, द्रुपता, हाड हिमालां गएं।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर, बिखरू अम्रित करां।'

जीवन के अंतिम क्षणों में मीरा कें प्राणों से यही पुकार निकली –

'सजन सुध ज्यूं जामै त्यूं लीज हो।
तुम बिन मोरे और न कोई, क्रिया रावरी कीजे हो।
दिन नहीं भूख रैन नहिं निंदरा, यू तन पल – पल छीजे हो'।

इस प्रकार मीरां का प्रेम सहज, अकृत्रिम व गहन है। प्रेम ही उसकी यति है, प्रेम ही गति। उसकी प्रेमसाधना एक दीर्घयात्रा सी रही है जिसका आरंभ प्रियतम के रूप सौंदर्य के प्रति गहरी आसक्ति से हुआ और उसका अंत मानव जीवन के उस पड़ाव पर हुआ जिसे मानव ने अपनी पराजय का तीर्थस्थल माना है। उसकी प्रेमसाधना में उसके अंतकरण का स्वच्छंद व उन्मुक्त विलास मिलता है। मीरा स्वंय कृष्णमय है। उसने अपने प्रेमनिवेदन के लिए राधा को चुना है। और न ही गोपियों को। डॉ० लीलाधर वियोगी के शब्दों में – "वह स्वंय राधा है, स्वंय ही गोपी है। अतः उसके प्रेम में जो प्रगाढ़्यता और एकनिष्ठता है, वह अन्य कवियों में कैसे मिल सकती है।"

इस प्रकार मीरा कृष्णप्रेम में जलती विरह की एक ऐसी वर्निका थी जिसका ज्वलन ही उच्छवास बनकर उसके गीतो में फूट पड़ा तथा जो उसी उच्छवरसित संगीत की उच्छवास बनकर उसके गीतों मे फूट पड़ा तथा जो उसी उच्छवरसित संगीत की आग अपने प्राणों में दबाए गीत गाती – गाती ही प्रिय चरणों में निश्शेष हो गई।

3.

मीराबाई की भक्ति भावना

भक्ति शब्द की व्युत्पत्ति 'भज' धातु में 'क्तिन' प्रत्यय लगाने से होती हैं जिसका अर्थ है – सेवा, भजन, अर्पण, पूजा तथा प्रीति आदि। नारद ने भक्ति को प्रेमरूपा और 'मूलास्वादनवत' कहा गया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल श्रद्धा और प्रेम को भक्ति मानते हैं। मीरा गिरधर गोपाल की अनन्य प्रेमिका थी। उन पर अन्य संप्रदायों का प्रभाव अवश्य पड़ा, लेकिन वे किसी संप्रदाय विशेष में शामिल नहीं हुई। उनका कृष्णपरायण जीवन ही उनके पदों में प्रतिबिम्बित हुआ है। उनकी वाणी में नारी हृदय की कोमलता, सरसता तथा मादकता व्यक्त हुई है। मीरा ने राधा की भक्तिभावना को ग्रहण कर अपने को पूर्णतः कृष्ण के चरणों में समर्पित कर दिया। मीरा की भक्ति निम्नलिखित रूपों में प्राप्त होती है :–

ek/kq;Z HkfDr

मीरा की भक्ति माधुर्य भाव से परिपूर्ण है। माधुर्य भक्ति में प्रियतम की रूपमाधुरी का वर्णन, मिलन की कामना, विरह की तीव्रता, तन्मयता, संसारिक आर्कषणों का त्याग और आत्मसर्मपण इत्यादि का वर्णन आवश्यक होता है। यद्यपि मीरा किसी सिद्धांत में नहीं बंधी है, फिर भी इनके काव्य में इन विशेषताओं का वर्णन मिल जाता है। वह अपने सांवरे सलौने कृष्ण के रंग में रंगी है। वह इनके मोहक रूप का वर्णन करती है :–

बस्याँ म्हारे नैणन मां नंदलाल
मोर मुकट मकराकृत कुंडल अरूण तिलक सोहां भाल
मोहन मूरत सांवरा सूरत वेण बण्या विशाल।
अधर सुधारस मुरली राजा उर बैंजयतीमाल।
मीरां प्रभु संता सुखदाया, भक्त बछल गोपाल।

अपने प्रियतम की रूपछवि देखकर मीरा भावविभोर हो उठती है। वह उसके प्रेम में दीवानी – सी नाचने लगती है।

म्हां गिरधरा आगां नाच्यां री।
नाच नाच म्हां रसिक रिझावां, प्रीत पुरातन जाच्यांरी।
स्याम प्रीत रो बाँधि घुंघरयां मोहन म्हारों सांच्यां री।

nkEiR; HkfDr

मीरा की भक्तिभावना दाम्पत्य भाव पर आधारित है। उसके पति हैं – कृष्ण और वह उनकी पत्नी है। उसमें कृष्ण से मिलने की तीव्र इच्छा है। वह कृष्ण से प्रार्थना करती है –

''म्हारे घर होता आज्यो महाराज।
नेण विछावा हिवड़ों दास्यूं, सर पर राख्यूँ विराज''।

वह उनसे मिलने के श्रृंगार करती है, कलियाँ चुन – चुन कर सेज बिछाती है। जब प्रियतम समय पर नहीं आते तो वह उनके विरह में पागल सी घूमती है। खान–पान की सुध बिसार कर देश–विदेश घूमती है। उसकी वेदना का वर्णन असंभव है। वह कहती है –

हेरी म्हा तो प्रेम दिवाणी म्हारो दरद न जाण्यां कोय।
घायल री गत धायत जाण्याँ, हिवड़ों अगन संजोय।
जौहर की गत जौहर जाणै, क्या जाण्यां जिन खोय।
दरत की मारयां दर दर डोल्यां बैद मिल्या नहिं कोय।
मीरां की प्रभु पीर मिटांगा वैद सांवरिया होय।

श्याम के बिना मीरां अपनी व्याकुलता छिपा नहीं पाती।

स्याम बिन दुख पावां सजनी
कुण म्हा धीर बंधावां।

वस्तुतः मीरा की विरह वेदना असीम है। उनके काव्य में मिलन के प्रसंगों की अपेक्षा विरह के मार्मिक चित्र अधिक मुखर हो उठे हैं। परशुराम चतुर्वेदी का कहना है –

"मानसिक कष्टों का वर्णन प्रायः सभी अनूठे और स्वाभाविक है। उनमें प्रायः हर कहीं व्यग्रता एंवम् विवशता से भरी हुई मर्मांतक वेदना की एक सच्ची कहानी सुन पड़ती है।"

मीरा अपने प्रियतम को पाने के लिए पर्वतों को लांघ सकती है, सागर को चीर सकती है, काशी में करवट ले सकती है।

'तेरे खातिर जोगण हुंगी करवत लूंगी कासी।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल की दासी।।

वह अपने प्रियतम की दासी तक बनने को तैयार है :–

'म्हारे चाकर राखाजी, गिरधारीलाला चाकर राखांजी।
सांवरिया रो दरसण पास्यूं पहण कुसुम्बी सारी।।

uo/kk HkfDr

श्रीमद्भागवत में भक्ति के विषय में कहा गया है –

श्रवणं कीर्तनं विदणोः स्मरणं पाद सेवनम्।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्म निवेदनम्।।

मीरा की भक्ति में श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन की प्रवृतियाँ विद्यमान है।

1. **श्रवण** – मीरा की श्रवण भक्ति संत समागम से बलवती हुई थी। विविध संप्रदायों के साधुसंतों से वे भगवदचर्चा करती थी और श्री हरि की लीला एवम गुणों का श्रवण कर वे भक्तिभाव को पुष्ट

करती थी। इनका विश्वास था कि हरिनाम स्मरण से पापों का नाश और आत्मा का उद्धार होता है। अतः उन्होंने कहा है –

म्हा सुण्या हरि अधम उधारण।
अधम उधारण भव भय तारण।।

अर्थात् मैंने सुना है कि हरि पापियों का उद्धार करने वाले है। वे अधिर्मियों का उद्धार कर भव–भय शमन करने वाले हैं।

2. **कीर्तन** – मीरा के अनुसार कीर्तन भक्ति का प्रधान अंग है। हरि कीर्तन में उनकी सहज अभिरूचि थी, इसलिए वे साधु संतों के बीच भजन कीर्तन और नृत्य किया करती थी। मीरा ने कहा है –

'मीरां रे प्रभु गिरधर नागर भजण विणा नर फीकां।'
'भाई म्हां गोविन्द गुण गाणा।
राजा रूठयाँ णगरी त्यागां हरि रूठयां कठ जाणा।'

साधुसंतों और जनसमाज में हरिकीर्तन की यह परंपरा मीरा के युग में सारे देश में विद्यमान थी। हरिगुण श्रवण और कीर्तन से श्रोता और वक्ता – दोनों ही लाभान्वित होते तथा कीर्तन से उनके पापों का क्षय और पुण्य की श्रीवृद्धि होती है।

3. **स्मरण** – मीरां अपने आराध्य देव का प्रतिक्षण नामस्मरण करती थी क्योंकि उनके प्रियतम के नाम की बड़ी महिमा थी। मीरा अपने प्रियतम के नाम पर लुभा गई थी। यथा –

'म्हारो मण साँवरों णाम रट्याँरी।
साँवरों नाम जपॉ जग प्राणी, कोट्याँ पाप कट्याँरी।
जणम जणम री खताँ पुरानी नामाँ स्याम मट्याँरी।।

4. **पादसेवन** – मीरां श्री हरि के चरणों का सेवन कर उनकी कृपा से अपना उद्धार चाहती थी, इसलिए उन्होंने मन को प्रबोधा –

'भण थें परसि हरि रे चरण।
सुभग सीतल कंवल कोमल जगत ज्वाला हरण।
दासि मीराँ लाल गिरधर अगम ताखी तरण।

मीरा को भगवान कृष्ण के मोक्षदायक श्री चरणों की लगन लगी थी। उन्होंने संसार की माया का स्वप्नवत् समझ भवसागरमय और जगकुलबंधन – सभी हरि चरणों में अर्पित दिए थे और श्री हरि की चरण – शरण गही थी।

'म्हाँ लागाँ लगन सिरि चरणा री।
दरस बिना म्हाणे कछणा भावां जगमाया या सपुणाँ री।
भो सागर भय जग कुल बंधण डार दयाँ हरि चरणा री।
मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर आस गह्याँ थे सरणाँ री।।

5. **अर्जन –** मीरा गिरिधर नागर के पूजन–अर्जन के समय भौतियों के चौक पूरती थी और उन पर अपना तन – मन न्योछावर करती थी।

'मोती चौक पुरावाँ गेणाँ तण मण डाराँ वारी।"

वे गिरधरलाल के लिए छप्पन भोग, छत्तीसों व्यंजन और राजभोग अर्पित करती थी।

"थे जिम्या गिरधरलाल।
मीराँ दासी अरज करयाँ छो, म्हारो लाल दयाल।
छप्पण भोग छतीशाँ बिंजण पावाँ जण प्रतिपाल।
राजभोग आरोग्याँ गिरधर सष्मुख राखाँ थाल।
मीराँ दासी सरणाँ ज्याँशी, कीज्याँ वेग निहाल।।

वंदना – मीरां बार – बार गिरधर नागर से यही प्रार्थना करती थी कि हे गोवर्द्धन गिरिधारी। तुम्हारे बिना मेरी खबर कौन लेगा? तुमने भरी सभा में द्रौपदी की लज्जा रखी थी। हे गिरधर नागर! मैं तुम्हारी चरण – शरण हूँ मुझ पर दया करो।

थे मिण म्हारे कोण खबर ले गोवरधण गिरधारी।
मोर पीताम्बर शोभाँ कुण्डल री छब ण्यारी।
भरी सभा ना द्रुपद सुतॉरी राख्या लाज मुरारी।
मीराँ रे प्रभु गिरिधर नागर, चरण कंवल बलहारी।

दास्य – मीरा की भक्तिभावना में दास्य प्रवृति भी विद्यमान है। 'मीरा' हरि रे हाथ बिकाणी, जणम जणम री दासी' कहकर उन्होंने अपने आपको कृष्ण की जन्म – जन्म की दासी बतलाया है। इस जन्म में भी इन्होंने कृष्ण की दासी बने रहने की कामना की है –

'म्हाणों' चाकर राखाँ जी गिरधारी लाला चाकर राखाँ जी।
चाकर रहश्यूं बाग लगाश्यूं णित उठ दरशण पाश्यूं।
बिंदावण री कुंज गैल माँ गोविंद लीला गाश्यूं।
चाकरी माँ दरसण पाश्यूं शुभरण पाश्यूं खश्ची।
भाव भगत जागीरां पाश्यूं जणम जणम री तरशौ।

मीरा का यह दास्य भाव तुलसी की तरह नहीं है। यह दाम्पत्य भाव के अंतगर्त ही है।

सख्य – मीराँ ने कृष्ण को अपने बचपन का साथी नहीं, बल्कि जन्म जन्म का साथी माना था। मीरा का संख्य भाव खिलाड़ी साथियों का सख्य भाव नहीं, सहजीवन बिताने वाले पति – पत्नि का सख्य भाव है।

आत्मनिवेदन – मीराँ का अधिकांश काव्य उनका आत्मनिवेदन है। आत्मोद्धार और परमात्म कृपा की प्राप्ति के लिए ही मीरां की सम्पूर्ण प्रवृत्तियाँ आजीवन आत्मनिवेदन, भजन, पूजन और तीर्थाटन में तल्लीन रही है। प्रतीक्षा के साथ – साथ वे प्रियतम से मिलने की अपनी उत्कंठा और विरहजन्य व्याकुलता भी प्रकट करती रही –

'मीराँ रे प्रभु कल रे मिलोगाँ थे बिन रह्याँ णा जाय।'

वह भगवान कृष्ण को अपने जीवन और प्राण का आधार मानकर उनकी कृपाकोर की कामना करती रहीं :–

'हरि म्हारा जीवन प्रान अधार।
और आसिरों ना म्हारा थे बिना तीनूं लोक मझार।
थे। बिणा म्हाणें जग णा सुहावाँ निरख्याँ जग संसार।
मीराँ रे प्रभु दासी रावली लीज्यो कै निहार।

भवसागर में डूबने से बचाने के लिए वे बार – बार कृष्ण से बाहँ पकड़कर उबारने की प्रार्थना करती थीं। भक्तजनों के संकटों को मिटाकर पुण्य की प्रतिष्ठा करने वाले 'गिरधर नागर' से अपनी लाज रखने के लिए विनती करती थी –

'संकट मेटयाँ भगत जगाराँ, थाप्याँ पुन्न रा पाज।
मीरां रे प्रभु गिरधर नागर, बाँह गदयाँ री लाज।।

HkfDr dk vkpj.k i{k

मीरां की भक्तिभावना प्रेमतत्व समन्विता थी। वे श्याम नाम का जहाज चलाकर भवसागर से पार होना चाहती थी, इसलिए कृष्ण–गुण–गायन में उन्हें आत्मसुख प्राप्त होता था। वे नित्य नियम से हरि मंदिर में दर्शनार्थ जाती थीं, नियमपूर्वक प्रातःकाल चरणामृत पान करती थी; हरि मंदिर में नृत्य करती और घुँघरू धमकाती थी। ताल, पखावज और मृदंग बजते साधुओं के समक्ष वे हरिगुण गाते – गाते नृत्य करती थीं। इस तरह से मीरां का भक्तिभाव कीर्तन, गायन और नृत्य की त्रिवेणी का संगम था।

अंततः कहा जा सकता है कि मीरा की भक्ति निर्गुण और सगुण भी है। उनके नैन कृष्ण में अटके हुए हैं। उनके साथ उसका अंतर मिट जाता है और वो प्रभु के साथ एक हो जाती हैं–

तुम बिच हम बिच अंतर नाहीं
जैसे सूरज धामा।
मीराँ के मन अवर न मानै,
चाहै सुंदर स्यामाँ।

4.

मीराबाई की गीति–योजना

गीतिकाव्य कवि की वैयक्तिक भावधारा एवम अनुभूति की तदानुकूल लयात्मक अभिव्यक्ति होती है। इसमें मानवीय वृत्तियाँ अपनी सहज स्थिति में अभिव्यक्त होती है, अतः आतंरिक सौदर्य गठन और अन्तवग की तरलता रहती है। बौद्धिकता की भावात्मक परिणति से भिन्न पांडित्य का बोझ इसके लिए असह्य हो जाता है, इसे अंतर की आकुलता और वेदना की आर्द्रता से सिंचित करना पड़ता है। गीतिकाव्य परम्परा में मीराबाई का स्थान अक्षुण्व है, मीरा अपने प्रियतम के मनोहारी रूप में खो जाती है। मीरा के पदों में गीतिकाव्य की सभी विशेषताएं लक्षित होती हैंः–

1. आत्मभिव्यक्ति, 2. संगीतात्मकता, 3. भावप्रवणता, 4. भावों का ऐक्य, 5. संक्षिप्तता, 6. व्यापकता, 7. कल्पना शीलता, 8. सरसता

vkRekfHkO;fDr

मीरा का समूचा काव्य आत्माभिव्यक्ति ही है। उसके काव्य के प्रत्येक पद में, पद की प्रत्येक पंक्ति में, पंक्ति के प्रत्येक शब्द में निहित भावों में मीरा के अंतर की धड़कन सुनाई देती है। मीरा के पदों में अभिव्यक्त की गई पीड़ा मीरा की निजी पीड़ा है। उसने अपने मन की पीर को इतनी कुशलता से व्यक्त किया है कि वह आज के समय समाज के अर्न्तमन को झकझोर देने में पूरी तरह समर्थ है।

अपने आराध्य एकत्र प्रियतम श्रीकृष्ण के प्रति, मीरा के भागेदार अत्यंत सहज व स्वाभाविक ढंग से व्यक्त हुए हैं। प्रेम की पीर हृदय से निकली हुई भाषा बन गई है। उसे लोक लाज व कुलमर्यादा का पता नहीं। उसे सामाजिक शिष्टाचार की वर्णमाला का ज्ञान नहीं है। जो कुछ है, साफ है। उसका प्रेमी हृदय, प्रियतम को अनुराग में रंगा हुआ है और वह अनुराग, प्रेमी को उन्मत्र किए रहता है। यथा–

म्हाँ गिरधर आगां नाच्यारी।
नाच नाच म्हां रसिक रिझागं, प्रति पुरातन जाज्यां री।
स्याम प्रति से बांधि घुघर्यां मोहक म्हारे। सांच्यां री।
लोक लाल कुलरा मरज्याादा, जगमां नेक था। सरण्यां री।
प्रीतम पल छल का बिसरागं, मीरा हरि रंग राच्यां री

श्री कृष्ण के प्रति, मीरा का प्रेम नितांत निश्छल रूप में अभिव्यक्त हुआ है। मीरा ने अपने प्रेमासक्त हृदय की कक्षा ज्यों की त्यों शब्दों में बाँध दी है। इसके पदों में अनुभूति की सच्चाई, हृदय की सहजता, भावनाओं की निष्कापहता और निश्छल अभिव्यक्ति विद्यमान है। यदि वह अपने प्रियतम के भव्य रूप को देखकर मंत्रमुग्ध हो जाती है तो उसे यह स्वीकार करने में तनिक भी संकोच नहीं है।

थारो रूप देख्यां अटकी।
कुल कुटम्ब राजा सकल बार बार हटकी।
बिसइयां ना लगण लगां मोर मुगकट नटकी।
म्हारो मण भगन स्याम लोक कहुयां भटकी।
मीरां प्रभु सरन महयां लगया घट घट की।

यही नहीं, अपने प्रियत्म के वियोग में भी, मीरां अपने हृदय की व्यथा को उसी निश्छलता व सहजता के साथ अभिव्यक्त करती हैं जिस प्रकार 'मिलन सुख' की अभिव्यक्ति में मीरा के प्रेमोन्मुक्त हृदय परिलक्षित होता है, ठीक उसी प्रकार उसको विरह ताप में विदग्ध हृदय की चीत्कार भी स्पष्टतः सुनी जा सकती है। यथा–

अखयां तरशा दसक प्यासी।
मग की जोवां दिन बीतां सजनी, नैज पड़्या दुखरासी।
डारा बैठ्या कोयल बोल्या, बोल सुण्या री गासी।
कहुवा बोल डोक जन बोल्या, करस्यां म्हारी हांसी।
मोरां हरि रे हाथ विकावी, नणम जाम री दासी।

इस प्रकार, मीरा का वर्णन बिहारी, देव आदि कवि से दूर है। उनके हृदय की पीड़ा साकार हो उठी है, दर्द उभर आया है–

'हेरी म्हां दरद दिगयां म्हारा दरद न जावयां कोय।
घायल री गत घायल जाणयां, हिबडो अगण संजोय।
जौहर की गत जौहर जणै, क्या जाण्यां जिठा खोय।
दरद की मार्‌या दर दर डोल्यां वैद मिल्या नहि कोय।
मीरा री प्रभु पीर मिटांगां जब वैद सांवरो होय।

lxhrkRedrk

गीतिकाव्य में कवि भावानुकूल लयो में अपनी आत्मनिष्ठ वैयक्तिक भावना व्यक्त करता है। गंभीर भाववेश में मनुष्य की अभिव्यक्ति स्वभावतः सब संगीतात्मक हो उठती है। संगीतात्मकता गीतिकाव्य का प्राण होती है। मीरा के अधिकांश पद संगीत को शास्त्रीय पक्ष पर भी खरे उतरते हैं। इनके मुख्य राग निम्नलिखित हैं–

1. राग गूजरीः

म्हा मोहण रो रूप लुभाणी।
सुन्दर बदन कमल दल लोचण बांकां चितवण णेणा समाणी।
जमणा किनारे कान्हा धेनु चरायां, बंशी बजावां मीणं बाणी।
तन मन धन गिरधर परवारां, चरण कंवल मीरां बिलमाणी।

2. राग दरबारीः

प्रभु जी कहां गया नेहड़ो लगाय।
छोड़्यो म्हां विस्वास संगाती, प्रेम री बात जलाय।
विरह समंद में छोड़ गया छो, नेह री नाव चलाय।
मीरां रे प्रभु कबरे मिलोगे, थे विण रह्यां ण जाय।

मीरा के पदों में अन्य कई रागों का भी प्रयोग किया गया है जिनमें से राग पीलू, होली, जोगी, पूरिया घनाश्री, श्याम कल्याण, विहाग रामकली, सावकी कल्याण, सारंग सावन, मलार आदि उल्लेखनीय हैं। ये पद गेय व कीर्तिन है, अतः उनमें स्तर, ताल, लय, गति रागरागिनी आदि संगीतात्मव उपादानों की सिद्धार्ध पाई जाती है। इसी कारण मीरा के पद भक्तों के कठांहार तो हैं ही, किंतु वे संगीततज्ञों के लिए रागों की धरोहर के रूप में सर्वमान्य व स्वीकृत भी है।

Hkkoi.o;rk

गीति काव्य के भीतर अनुभूति की पूर्णता आवश्यक है। जब तक अनुभूति गहरी और सच्ची नहीं होगी तब तक अभिव्यक्ति सुंदर मधुर और कर्णप्रिय हो सकती हैं, परंतु अतंर्मन को झकझोरने वाली नहीं। गीति के भीतर एक तडप, एक पीड़ा ही समा सकती है। मीरा हिंदी साहित्य के उन प्रमुख काव्य सृजनों में एक है जिसकी अनुभूति, अभिव्यक्ति की अपेक्षा अधिक सजीव है। इनके हर पद में अनुभूति की गहनता छलकती है। मीरा के प्रेमभाव में उसकी सत्यानुभूति का स्पर्श सर्वत्र अनुभव किया जा सकता है–

'माई म्हां गोविन्द गुण गाणा।
राजा रूठ्या नगरी त्यागा,हरि रूठ्या कहे जाणा।
राणौ भेज्यो बिषरो प्याला, चरणाभृत पी जाणा।
काला नाग पिटार्यां भेज्यां, सालिगराम पिछाणा।
मीरां तो अब प्रेम दीवांणी, सांवलिया बर पाणा।'

कबीर, सुर, तुलसी और मीरा ने आत्माभिव्यंजक पदों की रचना की, परंतु भागों की तीव्रता के अनुरूप पदों में अभिव्यंजना का स्वरूप परिवर्तित होता गया। मीरा के पदों में यह तीव्रता अपने चरम पर पहुंच गई। कबीर ने अपने पदों में आध्यात्मिक भावना ढाली, विद्यापति ने जीवन की प्रेममयी अनुभूति की अभिव्यंजना की, सुर में भाव और संगति का संदर समन्वय किया तुलसी ने विचारात्मकता के साथ व्यक्तित्व की छाप दी, तो मीरा ने अपने पदों में सबका सुंदर समन्वय किया।

मीरा की असमय पत्रि–वियोग की वंदना भक्ति का संसर्ग पाकर अबाधित रूप से गीतों के रूप में फूट पड़ी है। वे काव्यशास्त्र की परंपराओं तथा धार्मिक से भी असपृंक्त रही हैं। वे एक उन्मुक्त गगन विहारी पक्षी की तरह गाती हैं।

Hkkok dk ,D;

गीतिकाव्य में व्यक्त भागों में एक्य परमावश्यक है। गीतों का छोटा–सा कलेवार भावोत्तेजन के लिए ही उपयुक्त होता है। तीव्र अनुभूति ही गीत में बंध सकती है। उसमें बौधिकता व वर्णनात्मकता नहीं होनी

चाहिए। मीरा के गीतों में यह एकता सहज सुलभ है। प्रत्येक गीत में एक ही भाव प्रस्फुटित होता है। कहीं–कहीं एक ही भाव को बार–बार व्यक्त किया है, किंतु सामान्यतः उनके सभी प्रभावात्मक है। निम्नालिखित पद में मीरा ने श्री कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम को दर्शाया है–

म्हारां री गिरधर गोपाल दूसराना के कूयां।
दूसरा का कूयाँ साधा सकल लोक जूयां
भाया छांड्य। बन्धा छांडया, छांड्यां सगां सूयां।
साधा ठिग बैठ बैठ, लोक लाज खूयां।
भगत देख्यां राजी ह्ययां, जगत देख्यां रूयां।
असुवां जल सीच–सीच प्रेम बेल बूयां।
पध मथ घृत काट लयां दार दयां छूयां।
राणा तिवारो प्यालो भरेयां, पीय मगाठा हूयां।
मीरा री लग लम्यां होना हो जो हूयां।

lf{klrk

गीतिकाव्य का प्रत्येक पद संक्षिप्त होता है। मीरा के पद गेय पद है और संगीत–तत्व संयोजन के साथ साथ संक्षिप्त है। उनके पद में हृदय की गंभीर भावुकता भरी हुई है। यथा–

माई म्हाँ गोविंद गुण गाणा।
राजा रूठयां नगरी त्यागां, हरि रूठयां कठ जाणा।

O;kidrk

मीरा का काव्य किसी संप्रदाय का प्रचारक नहीं है, अतः इसे किसी संप्रदाय विशेष की संपति नहीं माना जा सकता। इनका काव्य माननीय आत्मा की सृष्टि है, अतः तह प्रत्येक व्यक्ति की विश्वव्यापी मानवीय संपदा है। भक्त उसे दुहराते हैं, संगीतज्ञ उसे गाते है तथा जनजीवन उसमें अलौकिक प्रेम का रसास्वादन करता है। सबकी आत्मा मीरा की आत्मा में अपने प्राण खोजती है, अपनी वेदना पाती है और अपनी पुकार सुनती है। इसलिए मीरा का काव्य व्यापक है।

driuk'khyrk

मीरा सगुणोपासक थी। उनके आराध्य कृष्ण सगुआ और साकार थे। अतः इन्होंने उनके रूप, शृंगार, गुणादि का यथाध्य वर्णन किया है। जब वे अगम देश में प्रतिष्ठ मुक्तात्मा हंसो की भांति प्रेम–सरोवर में कोलि करना चाहती है, तब उनकी जीव, ब्रह्म और मोक्ष विषयक कल्पनायें स्पष्ट दिखाई देती हैं तथा उनकी कल्पनाश्रित रहस्यमयी भावना खुल जाती है।

ljlrk

मीरा के प्रत्येक पद में एक एक अनुभूति और एक–एक भाव अपने संपूर्ण स्वरूपात्मक सौष्टव और प्रभमोत्पादकता को लेकर व्यक्त हुए हैं। मर्मस्पर्शी भाव, सरल भाषा, मधुर संगीत और हृदयहारी

भवितभावना तथा प्रेम के संयोग वियोग पदों के प्रामाणिक ज्ञापन से मीरा के पदों की सरसता अद्‌वितीय बन गई है।

अंततः कहा जा सकता है कि मीरा के पदों में एक निश्छल हृदय के मनोभावों की अत्यंत सहज व कलात्मक अभिव्यक्ति हुई है। मीरा के गीतों में हृदय का उन्मुक्त विलास, भावों का अद्‌भूत उत्कर्ष, संगति का सफल निर्वाह—सभी कुछ मिलता है। डा० रामकुमार वर्मा के शब्दों में,

"गीतिकाव्य के अनुसार की कविता आदर्श है। मीरा ने न तो रीतिशास्त्र की गवेबण की और न अलंकार शास्त्र की। उनके हृदय में निर्भर की भांति भाव आए और अनुकूल स्धान पाकर प्रकट हो गए। भाव, अनुभवी, संचारी भावों के बादलों के उनकी कविता चंतिका छिपी नहीं, वरन्‌ निरभ्र हृदयकाश में बरस पडे। हृदय की भावना मंदाकिनी की भांति कलवल कहती हुई आई और मीरा के कंटस्थ सरस्वती की संगति धारा में मिल गई। वह भावना संगीत का सार बनी और उसी में मीरा के हृदय की अनुभूति मिली।

5.

मीराबाई की काव्यकला

मीरा कवयिरी से पहले भक्तिन है और मीरा के भाव उसके कृष्ण पेम में तत्लीन हृदय से स्वतः प्रसूत है। वे उन्मुक्त व निर्द्वन्द्व भाव से रहकर सदा आकाश गिरहिणी की भांति अपनी दिव्य संचित प्रेम सुख–प्रसूल गीतियों के रूप में बरसाती रही। अन्य कावियों की भांति मीरा के काव्य के दो पक्ष हैं–

(क) भाव पक्ष।

(ख) शिल्पपक्ष।

¼d½ Hkko i{k

मीरां का सम्पूर्ण काव्य ही भाव प्रधान है। उसका उद्देश्य भी अपने प्रेम व व्यथा को व्यक्त करना है। 1. कृष्ण के प्रति प्रेम इनके काव्य का उद्देश्य सांवरे सलोने कृष्ण को रिझाना है। उसके हृदय में अपने गिरधर गोपाल के प्रति तो मधुर है वहीं विभाव के हवाएँ परिपुष्ट होकर मधुर रस का रूप ग्रहण कर लेती है। श्रीकृष्ण उसके आलंबन हैं। उनकी शोभा का वर्णन करना मीरा का कर्त्तव्य है। वह कृष्ण जो पीताम्बरधारी है, मोर मुकुट पहने हैं, वह मीरा के नयनों में हृदय में बस गया है–

बस्यां म्होर नेमान मां नंदलाल।
मोर मुगट मकराक्रत कुंडल अरूण तिलक सोहां भाल।
मोहण मूरत सांवरा सूरत णेणा बण्या बिसाल।
अधर सुधारस मुरली राजां उर बेजतां माल।
मीरां प्रभु संता सुखादाया भक्त बछल गोपाल।

कृष्ण प्रेम में दीवानी मीरा लोकलाज कुल मर्यादा सबका त्याग कर देती है। वास्तव में प्रेम के आलोकमय क्षेत्र में स्वच्छंद विचरण करने ग्वालों को लौकिक बंधन और मर्यादाएं रूचिकर नहीं होती। वह तो प्रियतम को प्राप्त करने के लिए काँटों भरे मार्ग पर निकल पड़े हैं तो फिर 'होनी हो सो होय' में विश्वास करते हुए आगी बढते है और कहते हैं–

'माई सांवरे रंग रांची।
साज सिंगार बांध पग घुंघरू, लोकलाज तज नाची।'

विरह वर्णन

प्रेम की पीर बड़ी मीठी होती है। विरह की पीर में तपकर ही प्रेम का रूप निखरता है। मीरा श्री कृष्ण के विरह में व्याकुल है–

श्याम बिणा सखि रह्या ना जावां।

रवाण पान म्होणी फीका सो लग्गां नौक रहां मुरझावाँ।

मीरा के काव्य में विरह की तीव्र अनुभूति है। उसने शारीरिक कष्टों की अपेक्षा मानसिक कष्टों का वर्णन अधिक किया हैं वह अपने कृष्ण के चरणों में पूर्यतया समर्पित हो चुकी है। यथा–

प्रभु जी कहाँ गया नेहड़ो लगाय।
छोड़्यो म्हा विश्वास संगाली, प्रेम री बात जलाय।
विरह समंद में छोड़ गया छो, नेह री नाव चलाय।
मीराँ के प्रभु कबरे मिलोगे थे विण रह्यां ना जाय।

परंतु उसकी पीर को समझने वाला कोई नहीं। माधव जी के शब्दों में,

गीतों में उसके हृदय की धड़कन स्पष्ट सुनाई पड़ रही है। उसका दर्द दीवाना दिल उसके भीतर से स्पष्ट गीतों में लिपटा हुआ प्रतिविम्बित हो रहा है। मीरां गाती क्योंकि वह विरह में बैचेन है। मीरां का दुख उधार लिया हुआ नहीं है।

संयोग वर्णन

मीरा के संयोग वर्णन अधिकार आनंद व उत्साह के वर्णनों में ही हुए हैं जिनको होली और सावन के प्रसंगों में देखा जा सकता है। यथा–

'होरी खेलत हैं गिरधारी।
मुरली चंग बचत डफ न्यारो, संग जुवती ब्रजनारी।
चंदनकेसर छिरकत मोहन, अपने हाथ बिहारी।
भरि भरि मूठि गुलाल लाल चहूं, देत सबन यै डारी।'

भक्ति भावना

मीरा के गोपाल भक्त वतसल, असुर सहांरक व करुणा के संहारक भी है, उन्होंने गोपाल को जोगी, जोगिया, अविनाशी आदि नाम से संबोधित किया हे। मीरा ने अगम देश का वर्वण भी किया है। परंतु मीरा किसी विशेष संप्रदाय से संबंधित नहीं है। इनकी शक्ति में दाम्पत्य भाव पाया जाता है, इसके अतिरिक्त, नवधा भक्ति के सारे तत्व–पूजा, तीर्थाटन चरणाम्रत लेना। संतसंग, वंदना, दास्यु आत्म निवेदन आदि पाए जाते हैं उनकी भक्ति असीम की ससीम सो मिलने की आकुल पुकार है, उस परम ब्रह्म से मिलने की तीव्र उत्कंठा है।

¼[k½ f'kY; i{k

मीरा के काव्य में यद्यपि शिल्प पक्ष का सुनियोजित रूप से तो वर्णन नहीं किया गया, परन्तु फिर भी उनके पद काव्य के अनेक लक्षणों से युक्त है। इसी के आधार पर उनके काव्य में कलापक्ष का विवेचन किया जा सकता है।

भाषाः मीरा राजस्थान की कवयित्री है और राजस्थानी उसकी मातृ भाषा है, परन्तु उनके काव्य में केवल राजस्थानी भाषा का प्रयोग न होकर अनेक भाषाओं का प्रयोग हुआ हे। कोमलता, मधुरता, सरसता सबोधता और स्वाभाविकता काव्य–भाषा के अग्विार्य गुण है जो मीरा के काव्य में मिल जाते

हैं। विभिन्न भाषाओं का प्रयोग होते हुए भी व्याकरण के नियमों का साधरणतः पालन किया गया है। मुख्य रूप से चार भाषाओं का प्रयोग अधिक मिलता है।

राजस्थानी

'स्याम म्हा बांहडिया जी गहां।
भांसागर मझधारा बूडयां, थारी सरण लहा।
म्हारे अवगुण पार अपारा थे बिण कूण सहां।
मीरां रे प्रभु हरि अविनाशी लाल विरद री बह्मां।'

राजस्थानी भाषा में 'छ' का उच्चारण, 'स' से मिलता जुलता है। तथा 'न' के स्थान पर प्रायः 'ग' का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार अनुस्वार एवं अनुनासिक के स्थान पर अनुस्वार का ही प्रयोग अधिक किया जाता है। राजस्थानी के अतिरिक्त मीरां के काव्य में ब्रजभाषा का प्रयोग भी प्रर्याप्त मात्रा में मिलता है।

ब्रजभाषा

'यहि विधि शक्ति कैसी होय।
मन की मैल हियते न छूटी, दियो तिलक सिर धोय।
काम कूकर लोभ डोरी, बाध मोही चंडाल।
क्रोध कसाई रहत छट में कैसे मिले गोपाल'

गुजराती और पंजाबी के प्रयोग भी मिल जाते हैं।

गुजराती

'प्रेमनी प्रेमनी प्रेमनी लागी करारी प्रेमनी
जल जमुना मां भरबां गयां तां, हती गागर माये हेमनी।'

पंजाबी

'हो कान्हा किन गूंथी जुलफां कारियां
सुधर कल प्रवीण हाथन सूं, जसुमति जू णे सांवरियां।'

वास्तव में मीरा ने अपनी मूल काव्य–रचना अपनी मात्र–भाषा में हो की होगी। क्योंकि मीरा के पद अपनी सहल, निश्छल भावाभिव्यक्ति के कारण तथा गेय होने के कारण जन–जन के कण्ठहार बन गए थे। इसीलिए साधु–सन्तों तथा भक्त मण्डलियों ने गा–गाकर इन्हें देश के विभिन्न प्रान्तों में पहुंचा दिया जिसके कारण इन पदों में विभिन्न प्रान्तों के शब्दों का समावेश हो गया तथा वह अपना मूल स्वरूप छोड़ बैठे।

मीरा की मूल भाषा राजस्थानी ही है। इसी के फलस्वरूप राजस्थानी संस्कृति व स्थानीय लोक–भाषा के शब्दों का प्राचुर्य है। पदविन्यास भी राजस्थानी भाषा के अनुरूप है। मीरां प्रेमदीवानी सीधी–सादी भक्त कवियत्री थी।

मीरा के काव्य में वर्ण योजना अथवा शब्दों का प्रयोग भावानुकूल हुआ है जिससे उसकी भाषा में कोमलता स्निग्धता और लालित्य की सुंदर छटा देखी जा सकती है। उचित वर्णयोजना के प्रयोग से काव्य में चिरात्मकता भी आ जाती है। मीरां के काव्य में भावों के सुंदर चित्र चित्रित हुए हैं–

'या ब्रज में कछु देख्यो री टोना।
ले मटकी सिर चली गुजरिया आगे मिले बाबा मंद के छोना।
दधि के नाम बिसर गयो प्यारी ले लो हो री कोई स्याम सलोना।
वृंदावन की कुंज गलिन में आंख लगाई गयो मन मोहना।
मीरा के प्रभु गिरधर नगर सुंदर स्याम सुधर सलोना।।'

इतिवृत्तात्मक वर्यन प्रसंगों द्वारा भी शब्दाचित्र प्रस्तुत किए गए हैं। जैसे–

सुदामा संबंधी पद। यथा–

नीदंडी आवा णा सारा रातां।

अनुस्वार युक्त स्वरों के प्रयोग से भी भाषा में सुकुमारता का समावेश हुआ है–

गणतां गणतां घिस गया आगुरियां री रेख।

lxhrkRedrk

मीरा संगति की ज्ञाता थी, इसलिए उचित आरोह–अवरोह के कारण नाद सौंदर्य की सृष्टि हुई है। यथा–

रंग भरी रंग भरी राग सूं भरी री।
होली खेल्यां स्याम संग रंग सूं भरी री।
उड़त गुलाल लाल बादरा रो रंग लाल।
पिचका उड़ावां रंग रंग री झरी री।

मीरा काव्य में अनेक राग–रागनियों का प्रयोग भी किया गया है जिसमें प्रमुख हैं गूजरी, जैजैवंती, मालकोस, ललित, दरबारी, सोरठा, विहाग, पीलूराग और पहाड़ी आदि। राग विहार का उदाहरण दृष्ट्व्य है–

करम गत टारां णांही टराँ
सतवादी हरिश्चंद राजा, डोम घर पीर भराँ।
पांच पांडु की राणी द्रुपदा, हाड़ हिमाला गिराँ।
जग विया बलि लेण इंद्रसण, जायाँ पाताल परा।
मीरां रे प्रभु गिरधर नागर, बिखरुं अमृत कराँ।

मीरा की भाषा में अद्भुत प्रवाह है जो उसके भावों को अभिव्यक्त करने में पूर्णतः सक्षम है।

'kCn'kfDr;k

शब्द का अर्थबोध करने वाले शक्ति को शब्दाशक्ति कहा जाता है। इनके तीन रूप सर्वमान्य है– आयिधा, लक्षण और व्यंजना। मीरा के काव्य में अभिधा और व्यंजना का प्रयोग अधिक हुआ है। मीरा का काव्य उसके हृदय की जीवन की वास्तविक कहानी हैं उसमें किसी भी प्रकार का दुराव छिपाव नहीं है। मीरा के इन सीधे कथनों में विचित्र मार्मिकता हैं यथा–

'म्हाराँ री गिरधर गोपाल दूसरा णा कोइ।
दूसरा णा कोई साधा संग बैठि लोक लाज खोइ।।'

मीरां ने लक्षणा का प्रयोग कम किया है। व्यंजना शक्ति का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया गया है। जिन पदों में मीरा की विरहकुलता, प्रेम की पीर, आतुरता व्यक्त हुई है, वहां व्यंजना शब्द शक्ति का प्रयोग हुआ है यथा–

'पपइया म्हारो कब रौ बैर चिताया।
म्हा खोबूँ आपके भवय मा पियु पियु करतां पुकारयाँ
दाहया लूझा लगायां, हिवड़ो करवन साइयां।
ऊमा बैढ़याँ बिरछरी डाली, बोली कंठ णा सारयाँ।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणां चित् धारया।

fcc ;ktuk

कवि अमूर्त भवों को पाठक के समक्ष मूर्त रूप में प्रस्तुत करने के लिए बिंबों का सहारा भी लेता है। मीरा ने आकर्षक बिंबों के माध्यम से अपनी विरहानुभूति को सर्वग्राह्य बना दिया है। इन्होंने दृश्य बिबों का प्रयोग किया है–

प्रभु जी थे कहां गया नेहड़ा लगाय।
छोड़यां म्हां विश्वास संगाती प्रेम री बाती जलाय।
विरह समंद मं छोड़ गया छो, नेह री नाव चलाय।
मीरां रे प्रभु कबरे मिलेशे थे बिण रहयां णा जाय।।

egkoj&ykdkfDr;k

मीरा की भाषा साधारण बोल चाल की राजस्थानी है तथा लोकोक्तियों और मुहावरों का संबंध लोकभाषा से होता है कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं–

"हेरी मां नंद को गुमानी, म्हारे मनडे बस्यो आली री म्हारे नेणां बाय पड़ी, णना चंचल अटक ना माण्या परहथ गया बिकाय, माई री म्हा लिया गाबिन्दा मोल इत्यादि।"

vydkjfo/kku

मीरा के काव्य का सौंदर्य रस व भाव पर आश्रित है न कि अलंकारों पर। उसने अपनी पीड़ा को सोधेशब्दों में व्यक्त किया है, परंतु तीव्र भावोत्तेजन के क्षणों में उनकी वाणी अलंकार युक्त हो गयी है। परशुराम चतुर्वेदी के शब्दों में–प्रेम एवम संबंध को भावोतेजन द्वारा स्पष्ट करने के लिए सादृश्य योजना का सहारा लेना ही पड़ा है। फलस्वरूप उसमें पग तंत्र अलंकारों का विधान स्वतः हो जाता है।”

मीरा के काव्य में शब्दालंकारों व अर्थालंकारों–दोनां का प्रयोग मिल जाता हैं शब्दालंकारों में अनुप्रास का प्रयोग अधिक हुआ है। जेसे–

(क) बाबल वैद्य बुलाया री, म्हारी बांह दिखाय।

(ख) सूनी गांव देस सब सूनो, सूनी सेज अटारी

(ग) भोजन भवन भलो नाहिं लागे पिया कारण भई गेली।

वीप्सा अलंकार

(क) जोगी मतजा,मतजा, पांई परूं मैं तेरी चेरी हो।

(ख) राम नाम रस पीजै मनुआ राम नाम रस पीजै।

अर्थालंकार

अर्थालंकारों का संबंध काव्य के आंतरिक पक्ष से होता है। कवयित्री ने रूपक तथा उपमा का सर्वाधिक प्रयोग किया है।

रूपकः *असुवन जल सीचिं सीचिं प्रेम बेल बूयां।*

उपमाः *पाना ज्यूं पीली परी, अरु विपत तन छाई।*

दास मीरालाल गिरधर, मिल्या सुख हाई।

इनके अतिरिक्त, उत्प्रेक्षा, उदाहरण, विभावोक्ति आदि अलंकारों का सीमित पर सुंदर प्रयोग किया गया है–

उत्प्रेक्षाः *कुंडल झलकां कपोल अलकां लहराई।*

मीणा तज सर वरज्या, मकर मिलन धाई।

उदाहरणः *तुम बिन हम बिचर अंतर नाहीं जैसे सूरज धामा।*

Nnfo/kku

मीरा ने काव्यरचना पिंगल शास्त्र के नियमों के आधार पर नहीं की। इन्होंने संगीत को प्रधानता दी है। कवयित्री ने प्रमुखतया सार छंद, सरसी, विष्णु पद, दोहा, कुंडल, ताटंक छंद का प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त, कुछ अन्य छंद भी है– मनहर, बरवै समान सवैया इत्यादि। इनका छंद विधान निर्दोष नहीं है। उनमें मात्रा घट–बढ़ गई हैं। छंदों के कुछ उदाहरण दृष्ट्व्य है–

nkgk

धयी चेण णां आवडा, थे दरसन बिन मोय।
धाम णा भार्ग नींद न आवां, विरह सतावां मोय।

सरसी सुधर कला प्रवीण हाथन सूं, जसुमति जू ने सांवरियाँ
जो तुम आयो मेरी बरबरियाँ जरि राखी चंदन किवारियाँ।

xhrkRedrk

मीरा की काव्यसाधना गीति साधना है। उनकी गीति साधना आत्माभिव्यक्ति की शब्द साधना है। मीरा के गीत संगीत, संवेग, संवेदना, स्तानुभूति, समर्पक से अनुप्राजित है। उसमें भाव, संवेदना, प्रभाव, मोहन व आत्माविस्मरक की पराकाष्ठा है। इनके पद गीत, प्रेम, राग, व भक्ति की तन्मयता के निकष है।

वस्तुतः मीरा के पद मीरा के जीवन की कहानी है। उन्होंने न किसी सहज भावनाओं को सहज ढंग से अभिव्यक्त किया।

6.

व्याख्या

fou ;&oUnuk

"मन ये परस..तारण तरण।। ।।"

शब्दार्थ : थें = तू; परस = स्पर्श; सुझा = सुन्दर; इण = इन; णाथ्या = नाथ लिया; मघवा = इन्द्र; तारण = तारना।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पद्यांश पाठ्य पुस्तक काव्य शिखर' की मीरा बाई के 'विनय–वन्दना' शीर्षक से लिया गया है। इसमें आराध्य श्री कृष्ण के चरणों की महिमा कर गुणमान किया गया है।

व्याख्याः मीरा बाई ने अपने आराध्य श्री कृष्ण की अनय भक्ति के संदर्भ में लिखा है कि हे मन, तू भी कृष्ण के चरणों का स्पर्श कर, वह चरण परम सुन्दर है और मनचाही शीतलता प्रदान करने वाला है, वह पेर कमल के समान कोमल है इनके स्पर्श से सांसारिक कष्टों से मुक्ति मिल जाती है। इसी पैर का ध्यान करने से भक्त प्रहलाद को इन्द्र के समान उच्च पद प्राप्त हुआ है। इन्हीं चरणों की कृपा से धूप को अमर पद मिला है। इन पदों की कृपा से निसहाय को भी अनूठी शरण मिल जाती है। इन चरणों की कृपा से संसार को स्वरूप मिला और सृष्टि की सुन्दरता भी इन्हीं–चरणों से विद्यमान हैं इन्हीं चरणों ने कालिया नाग को बांधा है। गोपियों के साथ लीला करने में इन्हीं चरणों की भूमिका रही है। इन्हीं चरणों के आधार पर गोवर्द्धन पर्वत को धारण कर इन्द्र का घमण्ड हार गया है।

मीराबाई कहती है मैं तो इन्हीं चरणों की दासी हूँ जो संसार को भव–सागर से पार करने वाला है।

विशेषः

1. भक्ति–भावना का आकर्षक रूप है।
2. ईश–पद की महिमा का गुणगाण है।
3. भक्ति रस का सुन्दर परिपाक है।
4. राजस्थानी भाषा का आकर्षक पुट है।
5. सुन्दर गेयता है।

'म्हारो परनाम..मिखअरी जी।।2।।

शब्दार्थः म्हरो–मेरा, परनाम–प्रणाम, बांके बिहारी–कृष्ण, कारी–काली, अलकाँ–केश राशि, श्री–रखकर ब्रजनारी–वृजनारियाँ, गोपियां, छब, छवि।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पद्यांश पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के मीराँ बाई के 'विनय–वन्दना' शीर्षक से लिया गया है। इसमें कवित्री की अपने आराध्य भगवान कृष्ण को प्रणाम कर उनके सौन्दर्य की चर्चा करती हैं।

व्याख्याः मीराँबाई कहती हैं कि हे मेरे प्रभु मेरा प्रणाम स्वीकार कीजिए। मेरे आराध्य के सिर पर मोर का आकर्षक मोर मुकुट और मस्तक पर तिलक सुशोभित है। कानों में कुंडल शोनायमान है। घुंधराले बालों का गुच्छे चारों ओर बिखरे हुए हैं। होठों पर वंशी को रखकर जब माधुरी धुनि छेड़ते हैं तो व्रज की नारियाँ मोहित हो जाती हैं ऐसे मनमोहनी छवि पर मीरा भी मोहित हो गई है।

विशेषः

1. कृष्ण के मनमोहक रूप का चित्रण है।
2. मीरा की अनन्य भक्ति का स्वरूप है।
3. सुन्दर गेयता है।
4. भाषा में राजस्थानी नी प्रभाव स्पष्ट है।
5. 'मोर मुकुट मायाँ', 'मोहयया मीराँ मोहन'

   में अनुप्रास अलंकार का मोहक प्रयोग है।

"तनक हरि...प्राण अकोर।।3।।"

शब्दार्थः तनक–थोड़ा, चितवाँ–देखो, हिबड़ो–हृदय ऊम्याँ ठाढ़ी–आशा में खड़ी–खड़ी और मोरू, सुबह वेस्यू–दूँगी।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पद्यांश पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के मीराँबाई के 'विनय–वन्दना' से उद्धत है। इसमें कवयित्री ने कृष्ण प्रति अपनी अनन्य भक्ति दर्शायी है। वे आराध्य से लगातार निवेदन कर रही है दर्शन देकर ख़ुश करें।

व्याख्याः मीराबाई अपने आराध्य से प्रार्थना करती हैं कि हे कृष्ण मुझ पर कुछ तो दया करो। मैं लगातार तुम्हारी ओर देख रही हूँ। किन्तु तुम मेरे ओर देखते ही नहीं हो। ऐसा लगता है कि आपका हृदय बहुत कठौर है। मैं बहुत बड़ी आशा से तुम्हारी ओर देख रही हूँ क्योंकि मेरा और कोई सहारा ही नहीं है। मैं पूरी रात खड़ी–खड़ी प्रतीक्षा करती रही हूँ, किन्तु नहीं आए और सवेरा हो गया। इस प्रकार तुमने मेरी प्रार्थना सुनी ही नहीं।

मीरा बाई कहती हैं कि अविनाशी कृष्ण मुझ पर दया करो, मैं तुम पर न्यौछावर जाती हूँ।

विशेषः

1. मीरा की अनन्य भक्ति का चित्रण है।
2. भक्ति भावना का आकर्षक का रूप है।
3. भक्ति रस का सुन्दर संवहन।

4. राजस्थानी भाषा का प्रभावी रंग है।

5. आकर्षक गेयता विद्यमान है।

"यारो–रूप..घट घट की।।4।।"

शब्दार्थः देख्याँ देखकर, भटकी– रुक गई, भटकी–भटक गई, सरण–शरण।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्य पुस्तक 'काव्य–शिखर' के मीरांबाई पाठ से विनय–वन्दना' शीर्षक से ली गई हैं। कृष्ण के माधुरी रूप की चर्चा करते हुए।

व्याख्याः मीराबाई ने अपने आराध्य को संबोधित करते हुए कहा है, हे कृष्ण! मैं तुम्हारे मधुर और मोहक रूप को देख कर आकर्षित हो गई हूँ। मेरे परिवार के सदस्य और संबन्धी सभी बार–बार टोकते रोकते रहे, किन्तु मैं तुम्हारे मोर पंख सुशोभित मोर–मुकुट की ओर आकर्षित होती चली गई हूँ। यह लगाव भी ऐसे लगा कि उसका भुलाना भी असंभव हो गया। मेरा सहज मन तो श्याम के रंग में रंग गया। और दुनिया कहने लगी कि मैं भटक गई हूँ।

मीराँबाई कहती हैं कि मैं तो अपने प्रभु की शरण में पहुंच गई हूँ, जो घर–घर में निकास करता है और अन्तर्यामी है।

विशेषः

1. मीरा की अनन्य भक्ति का चित्रण है।

2. भक्ति–भावना का अनुकरणीय संदर्भ है।

3. 'कुल–कुटुम्ब' 'म्हारो मन भगहा' में अनुप्रास अलंकार है।

4. 'बार–बार' और 'घर–घर' में पुनः शक्ति प्रकाश अलंकार की योजना हे।

5. आकर्षक गेयता है।

6. राजस्थान की भाषा का आकर्षक रंग है।

ßi!e lei!.kþ

"म्हे तो भारी..फंदा निवार।।5।।"

शब्दार्थः म्हें– में, सरण–शरण, ज्युँ–जैसे, तार–उद्धार, या इस सुणियों– अपणा–अपनो, सुनाए, निकट–बचाओ।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत प्रक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर– के' मीराबाई' के 'प्रेम–समर्पण' से ली गई है। इसमें आराध्य के प्रति अनन्य भक्ति दर्शाकर अपने को सांसारिक संकटों से मुक्त करने की प्रार्थना की गई है।

व्याख्याः मीराबाई अपने प्रभु को याद कर निवेदन करती हैं, हे प्रभु। मैं तुम्हारी शरण में आई हुई हूँ। अब जो भी हो मेरे संकट काट कर मुक्ति दिलाओं। मैं तीर्थ–तीर्थ लगातार धूमती रही किन्तु भगवान

के दर्शन नहीं हुए फिर भी हार नहीं मानी। हे मुरारी! इस संसार में मेरा कोई अपना नहीं है, इसे ध्यान से सुनकर मेरे सहायक बनिए।

मीराबाई कहती है कि हे कृष्ण, मैं तुम्हारी दासी हूँ। मुझे इस संसार के जन्म–मरण के बन्धन से मुक्त कराइए।

विशेषः

1. मीरा की अनन्य भक्ति का चित्रण है।
2. भक्ति रस का सुंदर परिपाक है।
3. राजस्थानी भाषा का आकर्षक रूप है।
4. 'भ्रमि–भ्रमि' में पुनरूक्ति प्रकाश अलंकारी है।
5. सुन्दर लयात्मकता है।
6. ईश–भक्ति से भव–बंधन से मुक्ति का संदेश है।
7. सुदमभाव की सुन्दर अभिव्यक्ति है।

"प्रभु सो मिलण .... सो होय।। 6 ।।"

शब्दार्थः मिलण–मिलना, धन्धे–सांसारित कार्य–बंधन, माणष–मानव, जणम–जन्म, अमोलक–अमूल्य,।

संदर्भ –प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्य पुस्तक 'काव्य शिखर' के मीराबाई के 'प्रेम–समर्पण' से ली गई हैं। इसमें भक्ति–भावना का आकर्षक स्परूप है। और भक्त की समपर्ण भावना का सुन्दर संदर्भ दिया गया है।

व्याख्याः मीराबाई कहती है मनुष्य सांसारिक धंधे में उलझ कर अपना समय गंवा देता है। उनका कहना है कि मनुष्य रात दिन में पांच पहर अर्थात लगभग 15 घण्टे सांसारिक धन्धों में उलझा रहता है और शेष तीन पहर अर्थात् लगभग 8 घण्टे सो कर बिता देता है। इस प्रकार समय लगातार बीतता चला जाता है। मनुष्य को दुर्लभ योनि मिली है। वह उसका सदुपयोग अच्छे कार्यों को करके नहीं करता है वरन् सोकर के गवा देता है।

मीरा का कहना है कि मनुष्य को गिरधर गोपाल का भजन–चिन्तन करना चाहिए और निश्चिंत रहना चाहिए क्योंकि जो होना है, होता रहे।

विशेषः

1. भक्ति भावना का आकर्षक रूप है।
2. भक्ति रस का सुन्दर परिपाक है।
3. राजस्थानी भाषा का लयात्मक रूप है।
4. :सोते डारयो खोय' मुहावरे का प्रयोग है।

5. प्रभु स्मरण और चिन्तन का स्वरूप है।

6. प्रसाद–माधुर्य गुण सम्पन्न शैली का प्रयोग है।

"म्हाराँ री गिरधर...जो हूया।।10।।

शब्दार्थः म्हाराँ–मेरा, कूयाँ–कोई भी, जूयाँ–देख लिया, भाषा–माई, साधां–साधु, दिग–पास, खूयां, खो दिया, रूयां–रोया, अंसुवां–आसुओं बूयां–बोया, धूयां–छाछ, मगण–मगन, लग्यां–लगा।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य शिखर' के 'मीराब्राई' के प्रेम–समपर्ण' से ली गई हैं इसमें भक्ति की अनूठी भावना का चित्रांकन किया गया है।, मीरा संसार की चिन्ता किए बिना अपने अराध्य श्री कृष्ण की उपासना करती है।

व्याख्याः मीरा कहती हैं मेरा तो एक मात्र सहारा गिरधर गोपाल हैं, अन्य कोई भी मेरा अपना नहीं है। सज्जनों के समक्ष खड़ी होकर कहती हैं कि मैंने सारा संसार छोड़ दिया है। अब मेरा दूसरा अन्य कोई नहीं है। मैंने कृष्ण के लिए अपने भाई और बन्धुओं आदि सब को छोड़ दिया हैं सज्जनों की संगति में बैठ–बैठ कर संसार की दिखाने की लज्जा को छोड़ चुकी हूँ। भगवान के भक्तों को देख कर खुश होती है और जगत की मायावी रीति को देख कर दुःखी हो जाती हूँ। इस प्रकार संसार की विपरीत गति में ईश्वर–प्रेम को आँसुओं से सींच कर विकसित किया हैं इस प्रकार मैंने दही का मंथन किया और उसमें से घी निकाल कर छाछ को छोड़ दिया है अर्थात् संसार के मायावी समुद्र में से ईश्वर रूपी धी को प्राप्त कर लिया हैं राणा ने ईश–भक्ति से अलग करने के लिए विष का प्याला भेजा, किन्तु में उसे दो कर भी भगवान की भक्ति में मस्त रही। विष का असर हुआ ही नहीं।

मीरा कहती है कि मेरी तो लगन श्री कृष्ण में है, जो भी होना है, होगा, उसकी चिन्ता से मुक्त हो गयी हूँ।

विशेषः

1. भक्ति–भावना का आकर्षक रूप हैं
2. मुक्ति–रस का सुन्दर परिपाक
3. बैठ–बैठ, 'सींच–सींच, में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।
4. राजस्थानी भाषा है।
5. सुन्दर गेयता है।

"माई साँवरे...रसीली जाँची।।11।।"

शब्दार्थः राँची–मस्त हुई, सांधा–साधु, सांची–सच्ची, ब्याल–सर्प, खारां, खारा, अप्रिय, कांची–कच्ची, जांची–जांच कर ली।

संदर्भ–प्रसंगः पूर्ववत्

व्याख्याः मीरा अपने प्रियता के प्रति होने वाले प्रेम के विषय में कहती है कि मैं तो कृष्ण के माधुर्य में पूरी मस्त हो गई हूँ। मैं पूरी तरह सज–सँवर कर पैरों में धुंअरू बांध कर लोक–लाज छोड़ कर खूब

नाची। साधुओं की संगति में पहुंच कर मेरे मन का सारा विकार नष्ट हो गया है और श्याम से प्रेम करके सत्यमार्ग को अपना लिया है। प्रभु के गुण का गान करती–करती काल रूपी सर्प से बच गई हूँ अर्थात् अब मौत से प्रभावहीन हो गई हूँ। मुझे श्याम के बिना सारा संसार निर्थक और निस्सार लगता है। जग की सारी बातें झूठी और बेकार लगती हैं।

मीरा कहती है कि गिरधर की भक्ति अपूर्व आनन्द देनी वाली है।

विशेषः

1. गिरधर की भक्ति का सुन्दर चित्रण है।
2. भक्ति रस का आकर्षक परिपाक है।
3. 'गायाँ–गायाँ' में रूपक अलंकार है।
4. 'काल–ब्याल' में रूपक अलंकार है।
5. राजस्थानी भाषा का आकर्षक रूप है।
6. सुन्दर लयात्मकता है।
7. मधुर प्रसाद गुणसम्पन्न शैली है।

"पग बाँध...आस्याँ री।।15।।

शब्दार्थः णाच्यां–नाची, बावरी–पगली, नासी–नष्ट करने वाली, विश्व–विष, हांसी–हंसी, चीणामां–चरणों में, दरसण–दर्शन, थारी–तुम्हारी, अमरीत, अमृत, आस्यां–आई।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्य पुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'मीराबाई' के प्रेम–समपर्ण' से ली गई हैं। इसमें गिरधर की भक्ति का आकर्षक चित्रांकन किया गया है। मीरा लोकलाज को छोड़ कर आराध्य की भक्ति में मस्त हो गई है।

व्याख्याः मीरा अपने आराध्य के प्रति अटल भक्ति के विषय में कहती हैं कि मैं अपने पैरों में घुंघरू बांध कर नाचती हूँ। लोग मुझे ऐसा करते देखकर मुझे पागल बताते हैं। सास मुझे कुल को नष्ट करने वाली बताती है। ऐसे करते देख राणाजी मुझसे नाराज़ होकर विष से भरा प्याला भेजा, जिसे पीकर मैं हंसती रही अर्थात् विष का प्रभाव मुझ पर नहीं हुआ। मैंने तो अपना तन–मन सब कुछ भगवान के चरणों में अर्पित कर दिया है। मुझे तो एक ही लालसा है वह है गिरधर प्रभु का दर्शन।

मीरा कहती हैं मेरे तो प्राणाधार गिरधर गोपाल है और मैं उनकी शरण में आ गई हूँ।

विशेषः

1. मीरा की भक्ति का अनुकरणीय रूप है।
2. भक्ति रस का आकर्षक परिपाक है।
3. गेयता का प्रभावी रूप है।

4. राजस्थानी भाषा का सरल रूप है।

5. 'दर सण–अमरित' में रूपक अलंकार है।

"मीरा म्हा...वर पाणा।।16।।"

शब्दार्थः म्हाँ–मैं, गाणा–गाना, रूठ्याँ–नाराज़ हुआ, कठ–कहाँ, विख–विष, सालगराम–सालिग्राम, (विशेष प्रकार का विष्णुप्रतीक काला पत्थर), पिद्याना–पहचानो, दिवाँणी–दीवानी, साँवल्या–कृष्ण।

व्याख्याः मीरा अपने मन–मोहन कृष्ण के विषय में कहती हैं कि मैं कृष्ण के गुण गाऊँगी, उसे के गुण–गान में मस्त रहूंगी। ऐसे करने से राजा नाराज़ हो गया, अपनी नगरी को छोड़ना पड़ा, किन्तु मैं अपने प्रभु को नहीं छोड़ सकती क्योंकि छोड़ कर कहाँ जाऊँगी। राणा ने मुझे मारने के लिए विष से भरा प्याला भोजन और मैंने उस प्रभु का चरणामृत समझ कर पी गई और वह मेरे लिए अमृत ही बन गया, मुझे मारने के लिए राणा ने नाग का पिटारा भेजा। उसे मैंने विष्णु के प्रतीक रूप में सालिग्राम भी तरह देखा। उसने मेरी तनिक भी हानि नहीं किया।

मीरा कहती हैं कि मैं तो गिरधर की दीवानी हूँ। मुझे तो श्री कृष्ण प्रियत्म के रूप में मिल गए हैं।

विशेषः

1. मीरा की भक्ति–भावना का चित्रण है।

2. ईश–भक्ति समस्त संकटों की निवारक होती है।

3. भक्ति रस का परिपाक है।

4. 'गोविन्द गुण गाणा' में अनुप्रस अलंकार है।

5. सरल गीतात्मक राजस्थानी भाषा का प्रयोग है।

mikyEHk&foyEHk

"म्हारे धर...मेरी माण।।18।।"

शब्दार्थः म्हारे–हमारे, पीरी–पीली, पाण–पत्ता, रोषो–रखो, माण–मान, सम्मान।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्य पुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'मीराबाई' के 'उपालम्भ–विप्रलम्भ' शीर्षक से ली गई है। इसमें मीरा लगातार विरह व्यथा में तप्त होकर कृष्ण के दर्शन देने की प्रार्थना कर रही है।

व्याख्याः मीरा अपने आराध्य के मिलन की कामना में व्याकुल है। वह श्री कृष्ण से प्रार्थना करती है। हे प्रभु, अब तुम मेरे घर आ जाओ, बहुत लम्बी प्रतीक्षा करते करते थक गई हूँ तुम अगर नही और मैं पत्ते की तरह पीली हो गई हूँ। हे प्रभु तुम्हारे अलावा मुझे किसी और से कोई आशा नहीं है। तुम ही हमारे एक मात्र सहारा हो।

मीरा कहती हैं कि हे प्रभु, तुम जल्दी से आकर मुझसे मिलो और लज्जा बचा लो। मैं तुम्हारे दर्शन के लिए तड़प रही हूँ।

विशेषः

1. मीरा की प्रेरक भक्ति का चित्रण है।
2. विरह–वेदना का मार्मिक चित्रण है।
3. भक्ति रस का सुन्दर परिपाक है।
4. सरल राजस्थानी भाषा का प्रयोग हैं
5. आकर्षक गेयता है।

"तेरो मरस...सो ही पायो।।21।।"

शब्दार्थः मरम–मर्म, जोगी–योगी, प्रभु, मांडि–मारकर, हजारिया–रूमाल, भाग–भाग्य।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्य पुस्तक काव्य–शिखर के मीराबई के उपदेश–उद्बोधन' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें प्रभु की विशेषताओं की प्रस्तुत के साथ उनकी भक्ति के महत्व का प्रतिपादन है।

व्याख्याः मीरा अपने आराध्य गिरधर के विषय में कहती है। हे प्रभु, आज तक मैं तुम्हारे रहस्य को जान नहीं पायी। मैंने तुम्हें पाने के लिए गुफा में आसन लगा कर पूरे ध्यान से साधना भी की, गले में योगियों की माला भी पहनी, हाथ में योगियों की तरह विशेष रूमाल को धारण किया, किन्तु प्रभु तुम्हारे दर्शन नहीं हो पाये। मैंने शरीर पर भभूति का लेप किया, पूरा प्रयत्न किया, किन्तु ही तुम नहीं मिले।

मीरा कहती हैं कि मेरे तो एक मात्र आश्रयदाता अविनाशी गिरधर है। जो भाग्य में लिखा होता है, वहीं मिलता है।

विशेषः

1. मीरा की भक्ति भावना का चित्रण है।
2. अनन्य भक्ति का स्वरूप है।
3. भक्ति रस का सुन्दर परिपाक है।
4. सुन्दर गीतात्मकता है।
5. सरल राजस्थानी भाषा का प्रयोग है।

"करम गत .... अमृित कराँ।।22।।"

शब्दार्थः करम–गत–भाग्य का लेख, णाँ–नहीं, डोम–भंगी, णीरां–पाकी, हाड़–हड्डी, गराँ–गलना, जाग–भरा, लेण, लेणा, जाँयाँ पाल– पाताल, पराँ–पड़ा बिखरू–विष।

संदर्भ–प्रसंगः पूर्ववत्

व्याख्याः मीरा अपने आराध्य श्री कृष्ण की भक्ति में मगन होकर भाग्य की रेख की महिमा का गुणगान किया है। उनका मानना है कि विधाता सब का रखवाला है, वह ही भाग्य, निर्माता है। इसलिए भाग्य के लेख को बदला नहीं जा सकता है। राजा हरिचन्द्र जो सत्यवादी थे। उन्हें सुख ही सुख मिलना था। किन्तु भाग्य की बात है कि उन्हें डोम के घर पानी भरना पड़ा था। भाग्य की ही बात है कि पांच पाण्डवों और पत्नी द्रौपदी को हिमालय की बर्फ में गलना पड़ा था। राजा बलि ने भी इन्द्रासन पाने के लिए यश किया था, किन्तु भाग्य की बात है कि स्वर्ग मिलने के स्थान पर पाताल जाना पड़ा था।

मीरा का कहना है सब कुछ प्रभु कृपा से होता है, उन्हीं की कृपा से मेरे पास, मुझे मारने के लिए भेजा गया विष भी अमृत बन गया।

विशेषः

1. मीरा की गिरधर पर अटल–भक्ति का चित्रण है।
2. भाग्यवादी विचार का चित्रण है।
3. भक्ति रस का परिपाक है।
4. आकर्षक भावा व्यंजना है।
5. सुन्दर और आकर्षक अभिकान्ति है।

"बन्दे बन्दगी...न हजर।।24।।"

शब्दार्थः बन्दे– मानव, बन्दगी–ईश–भक्ति, डाड़िमदा– अनार का नागर–श्रेष्ठ, हज्र–प्रभु।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तिया पाठ्य पुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'मीरा बाई' के 'उपदेश–उद्बोधन' से ली गई हैं। इसमें क्षण–भंगुर शरी पर विश्वास न करते हुए ईश की भक्ति करने की प्रेरणा दी गई है।

व्याख्याः मीरा ने अपने आराध्य को याद करते हुए लिखा है कि हे मनुष्य तू सब कुछ भूला जा किन्तु तुम अपने रचयिता को याद करना न भूल। जिस प्रकार अनार का फूल चार दिन के महत्व पाता है उसके बाद धूल में मिल जाता है। मानव जीवन इसी प्रकार का है। हे मनुष्य तू इस संसार में आया था कि तुम बहुत कुछ करेंगा, किन्तु तुम्हारे मन में उपजे लोभ के कारण तूने अपना मूल भी गवाँ दिया। अर्थात् तुम लोभ–मोह में सब कुछ गँवा बैठे हो।

मीरा कहते हैं कि हमें जब यहाँ रहना ही नहीं है तो श्री कृष्ण के चरणों में निष्काम भाव से रहना चाहिए।

विशेषः

1. ईश्वर का गुणगाण है।
2. भक्ति भावना को सुन्दर अभिव्यक्ति है।
3. भक्ति रस का परिपाक है।

4. मानव शरीर की नश्वरता का चित्रण है।

5. सरल बोध राजस्थानी का प्रयोग है।

"चालाँ मण..संग बलवीर।।25।।"

शब्दार्थः चालाँ–चलो, मण–मन, जमण–यमुना पाणी–पानी, सोहाँ, सुशोमित है, झलवमां चमकता है, कोड्याँ–क्रीड़ा करते हैं।

संदर्भः प्रस्तुत पद्यांश पाठ्य पुस्तक 'काव्य–शिखर' के मीरा बाई के 'उपदेश–उद्‌बोधन' शीर्षक से लिया गया है। इसमें प्रभु–भक्ति को महत्त्व दिया गया है, भक्त आराध्य देव के दर्शन हेतु सब कुछ न्योछावर करने हेतु तत्पर है।

व्याख्याः मीरा अपने आराध्य प्रभु भी कृष्ण के चरणों में बैठ कर शांति से साधना करना चाहती है। इसी लिए कहती हैं हे मन! तुम आराध्य की उपासना हे यमुना के तट पर चलो वही साधना के लिए उपयुक्त स्थल है। उस यमुना का जल परम शीतल है, जिसके स्पर्श से पूरा शीतल और निर्मल हो जाएगा। वहीं पर श्री कृष्ण बलराम के घूमते हुए वंशी बजाते हैं उनके सिर पर मोर पंख सुसज्जित मुकुट और शरीर पर पीत वस्त्र बहुत सुन्दर लगता है। कानों में हीरे जड़े कुडल की चमक मन को मोह लेती है।

मीरा कहती है तो प्रभु श्री कृष्ण है जो बलराम के साथ सदा समान करते रहते हैं।

विशेषः

1. कृष्ण के मनमोहक रूप का चित्रण है।
2. भक्ति भावना का आकर्षक रूप है।
3. भक्ति रस का परिपाक है।
4. 'वंशी बजावां' में अनुप्रास अलंकार है।
5. सरल–बोधगम्य राजस्थानी भाषा का प्रयोग है।

fcgkjh

leh{kk

1.

बिहारी का साहित्यिक परिचय

श्रृंगार, रीति और कला की त्रिधाराओं के संगम पर बैठकर महाकवि बिहारी ने वह अद्भुत काव्य सृष्टि की जो एक बार तो जयपुर नरेश को भी अपने कर्त्तव्य–पथ पर आरूढ़ करने में समर्थ हो सकी। ऐसी वाणी कोई बिहारी जैसा समर्थ साहित्यकार ही कह सकता है।

thou&oÙk

> *जनम ग्वालियर जानिये, खंड बुँदेले बाल।*
>
> *तरूनाई आई सुखद, मथुरा बसि ससुराल।।*

बिहारी के उपर लिखित दोहे के अनुसार इनका जन्म ग्वालियर राज्य के बसुआ गोबिन्दपुर नामक गाँव में सन् 1603 में हुआ था। इनकी ससुराल मथुरा थी। ये जाति के ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम केशवराय था, जैसा कि नीचे लिखे दोहे से स्पष्ट है–

> *प्रगट भये द्विजराज कुल, सुबस बसे ब्रज आइ।*
>
> *मेरे हरौ कलेस सबु, केशव केसवराइ।।*

महाकवि केशव के संरक्षण में इन्होंने काव्यशास्त्र का अध्ययन किया था। युवावस्था में ये अपनी ससुराल मथुरा चले गए थे। परन्तु "घरहिं जँवाई लौ घटयौ खरौं पूस दिनमान" के अनुसार शायद ससुराल में अधिक आदर प्राप्त न हुआ, अतः ये वहाँ से चले गए। जहाँगीर से भेंट होने के बाद ये आगरे के राजदरबार में रहने लगे थे। एक बार जयपुर आने पर राज–काज से महाराजा की उदासीनता देखकर बिहारी को बड़ा दुःख हुआ और इन्होंने निम्न पहिला दोहा राजा के पास लिख भेजा। परिणाम यह हुआ कि राजा की मोह निन्द्रा टूट गई, दूसरी ओर दूसरे दोहे से मुगलों का पक्ष लेकर हिन्दू राजाओं पर आक्रमण करने से जयसिंह को रोका भी–

1. नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकासु इहिकाल।

   अली–कली हीं सौं बंध्यौ, आगे कौन हवाल।।

2. स्वारथ सुकृत न, श्रम वृथा, देखि विहँग विचारि।

   बाज पराये पानि पर, तू पंछिनु न मारि।।

अपनी योग्यता और विद्वता के कारण बिहारी को जयपुर नरेश महाराजा जयसिंह ने अपने राज दरबार में स्थान दिया। यहीं रहकर बिहारी ने 'बिहारी सतसई' नामक ग्रन्थ की रचना की, इसमें 719 दोहे हैं। महाराजा प्रत्येक दोहे पर इन्हें एक अशर्फी दिया करते थे। पत्नी की मृत्यु के पश्चात् इन्होंने शेष जीवन वृन्दावन में भगवत् भजन में व्यतीत किया। इनका सन् 1663 में परलोकवास हुआ।

jpuk;

बिहारी ने किसी स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना नहीं की। महाराजा को समय–समय सुनाये गए सात सौ दोहों का संकलन ही बिहारी सतसई है। इन्हीं मार्मिक, गम्भीर एवं विद्वतापूर्ण सात सौ दोहों के बल पर ही बिहारी का हिन्दी के प्रथम श्रेणी के कवियों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। बिहारी सतसई की अनेकों टीकायें और अनेकों भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। अनुसंधान से पता चलता है कि इन दोहों की रचना में बिहारी को आठ वर्ष का समय लगा था।

dk0; fo'k"krk,

1. **सफल मुक्तककारः** बिहारी एक अच्छे भाव–शिल्पी तथा शब्द–शिल्पी हैं। वे एक सफल मुक्तककार हैं और सतसई के दोहों में मुक्तक काव्य–कला की समस्त विशेषताएँ हैं। उसके दोहों में आचार्य शुक्ल के शब्दों में 'एक सफल मुक्तककार की कल्पना की समाहार–शक्ति और भाषा की समास–शक्ति' दोनों विद्यमान हैं। उनके दोहों में गागर में सागर भरने का सफल प्रयास है।

2. **भावः** बिहारी का काव्य प्रेम और श्रृंगार का काव्य है। यद्यपि इन्होंने भक्ति, वैराग्य दर्शन नीति, इतिहास, ज्योतिष, वैद्यक आदि विषयों पर भी दोहे लिखे है, परंतु वे संख्या में बहुत कम हैं। बिहारी की कविता हृदय का स्पर्श तो करती है परन्तु प्रभाव के चिरस्थायित्व का अभाव है। श्रृंगार के संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों का सफल चित्रण हुआ है। वियोग चित्रण में बिहारी कहीं–2 हास्यास्पद अवश्य हो गए है। सूक्ष्म मनोवृतियों और अनेक अनुभवों का एक साथ चित्र प्रस्तुत करने में बिहारी अद्वितीय थे। बिहारी प्रकृति चित्रण में भी दक्ष थे। इनका षट्ऋतु वर्णन बड़ा अनूठा है। संयोग पक्ष में भावशबलता के उदाहरण देखिए–

   कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।

   भरे भौन में करत हैं, नैनन ही सब बात।।

   बतरस, लालच, लाल की, मुरली धरी लुकाय।

   सौंह करै, भौहनु हँसै, दैन कहै नहिं जाय।।

   भौंह ऊँचे, आंचरू उलटि, मौर मौरि, मुह मोरि।

   नीठि–नीठि भी तर, गई, दीठि सौ जोरि।।

उर्दू शली से प्रभावित हास्यास्पद विरह चित्रण–

आड़े दै आले बसन, जाड़े हूं की रीति।

साहस ककै सने हबस, सखी सवै ठिंग जाति।।

जब जब वे सुधि कीजिए, तब तब सुधि जाँहि।

आँखिनु आँख लगी रहें, आँखे लागति नाहि।।

दार्शनिक गूढ़ भावों की अभिव्यक्ति–

जगतु जनायौ जिहि सकल, सो हरि जान्यौ नाहिं।

ज्यों अँखियनि सब देखियै, आँखि न देखी जाँहि।।

3. **भाषाः** बिहारी की भाषा साहित्यिक ब्रज–भाषा है। इन्हें भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त था, यही कारण है कि दोहे जैसे छोटे छन्द में भी विशाल भावों की सृष्टि करने में समर्थ हो सके। भाषा में तोड़–मरोड़ नहीं है, शब्द चयन उपयुक्त है, प्रसाद और माधुर्य गुण सर्वत्र विद्यमान है। कहीं–कहीं बुँदेल खण्डी, फारसी और अरबी आदि भाषाओं के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। परन्तु अपने ढ़ंग में ढालकर। अर्थ–गाम्भीर्य इनकी भाषा की सबसे बड़ी विशेषता है।

   शैलीः मुख्य रूप से बिहारी की शैली मुक्तक शैली है। मुक्तक शैली के अन्तर्गत इन्होंने मिन्न–भिन्न शैलियों का प्रयोग किया। इनके भक्ति एवं नीति सम्बन्धी दोहों में प्रसाद गुण युक्त सरस शैली का, श्रृंगार सम्बन्धी दोहों में माधुर्य गुण युक्त व्यंजना शैली का, ज्योतिष, गणित एवं दर्शन सम्बन्धी दोहों में चमत्कारपूर्ण शैली का तथा कुछ अन्य दोहों में फारसी की अन्योक्ति प्रधान शैली का प्रयोग हुआ है। इनकी सभी शैलियों में भाव व्यंजकता एवं प्रभावोत्पादकता है। चित्रात्मकता एवं उक्ति वैचित्र्य इनकी शैली के प्राण हैं। सूक्तियों के प्रयोग ने शैली को और भी आकर्षक बना दिया है। समास पद्धति इनकी सबसे बड़ी विशेषता है।

4. **रस, छन्द एवं अलंकारः** बिहारी के काव्य में सर्वत्र रसराज श्रृंगार की प्रधानता है। श्रृंगार के वियोग एवं संयोग दोनों पक्षों का चित्रण किया गया है। वियोग की अपेक्षा संयोग अधिक आकर्षक है। शान्त रस के भी दर्शन होते हैं, परन्तु अत्यन्त साधारण।

5. **छन्दः** योजना में बिहारी ने केवल दोहा जैसा छोटा छंद ही लिखा, परन्तु अपने अपरिमित ज्ञान और अद्भुत कल्पना एवं समाहार शक्ति के बल पर इस छोटे से छन्द में इतना रस एवं विष भर दिया है कि आलोचकों को कहना पड़ा कि–

   सतसैया के दोहरे ज्यों नाविक के तीर।

   देखत में छोटे लगें घाव करें गम्भीर।।

6. **अलंकारः** इनके प्रत्येक दोहे में कोई न कोई अलंकार मिल जाता है। तात्पर्य यह है कि बिहारी ने अलंकारों का खूब प्रयोग किया है। श्लेष, यमक, रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा यत्र–तत्र बिखरे पड़े हैं।

2.

बिहारी श्रृंगार के अनुपम चितेरे

रस सिद्ध कवि बिहारी मुलतः रस के कवि है। श्रृंगार, रस, सौंदर्य एवम् यौवन बिहारी के काव्यमानस में अपनी पूर्णता से व्यक्त तरंगित हो रहे हैं। काव्य का लक्ष्य आनंद प्राप्त कराना है। श्रृंगार रस का स्थायी भाव रति अर्थात् प्रेम है। प्रेम का क्षेत्र सभी मनोविकारों में व्यापकतम है। प्रेम मानव में एक विश्व जनीन रागात्मकता का संचार करता है। श्रृंगार के दो पक्ष हैं–

(क) संयोग

(ख) वियोग

बिहारी ने इन दोनों पक्षों का जैसा लालित्यपूर्ण एवम् प्रभावक चित्रण किया है, वैसा अन्यत्र किसी ने किया नहीं है।

(क) संयोगः बिहारी के संयोग वर्णन की सामान्यतः चार विशेषताएँ हैं–

1. रूप वर्णन
2. प्रेम व्यापार
3. नायिका–भेद कथन
4. अनुभाव।

: i o.kl̸u

सुंदरता मूलतः वस्तुमूलक ही है और वह देखने वाले को अपने चरमकोटि के रूप और आकार से आकृष्ट करती है। बिहारी ने समस्त अंगों में नेत्र रूप, आकार, चंचलता, सज्जा, विशिष्ट स्थिति व भावव्यंजकता के कारण सर्वाधिक महत्व रखते है। किसी नवयौवना के श्रृंगार भावना में निमज्जित प्रफुल्ल एवम् विशाल नेत्रों का चित्र अत्यन्त आकर्षक है–

रस सिंगार मज्जन किये, कंजन मंजन दैन।
अंजन रंजन हू बिना, खंजन गंजन नैन।।

इसी तरह कवि ने केश, कपोल, नासिका, ओठ, कुच, नाभि आदि के सुंदर प्रस्तुत किए है। नायिका के इस नखशिख वर्णन में बिहारी की दृष्टि केवल बाह्य सौंदर्य पर ही नहीं रही है, वरन् उसके मानसिक तीव्र प्रभाव को भी उन्होंने व्यंजित किया। स्वयं बिहारी ने कहा है–

'तिखनि बैठि जाकी छवि, गहि गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के, चतुर चितेरे क्रूर।।'

çe0;kikj

रूपमय चैतन्य आलम्बन दृष्टा के मन में प्रेम को जागृत करता है। प्रेम के उदय, विकास और चरम का बिहारी ने सप्राण वर्णन किया है। नायिका के तीक्ष्ण व विशाल नेत्रों ने नायक को मंत्र मुग्ध कर दिया है। वह अपनी मन स्थिति व्यक्त करता है–

'अनियारे दीरघ दृगनु। किती न तरुनी समान।
वह चितवन औरे कछु, जिहिं बस होत सुजान।।'

कटाक्ष आदि से प्रेम की तीव्रता बढ़ जाती है। प्रेमी के विह्वल मन का चित्र प्रस्तुत है–

'द्रगनु लगत, बेधत हिमहिं, विमल करत अंग आन।
ए तेरे सब तै विषम, ईछन तीछन बान।।'

प्रेम की चरम अवस्था में प्रिय–प्रिया में अभेदत्व स्थापित हो जाता है। तब वे एक–दूसरे से एक क्षण के लिए भी पृथ्क होना नहीं चाहते। वे नरक की भी चिंता नहीं करते।

'प्रिय के ध्यान गरी गही रही वही है नारि।
आवु आवु ही आरसी लखि, रीझत रीझवारी।।'

इसी प्रकार आंख मिचौनी, जलक्रीडा, प्रिय–प्रिया का मिलन, स्वभाव वर्णन, हास परिहास द्वारा प्रेम के मधुर व रंगीन चित्र प्रस्तुत किए हैं।

ukf;dk&Hksn dFku

नायिका भेद कथन द्वारा श्रृंगार रस के संयोग पक्ष के उद्घाटन एवम् पोषण में अधिक सहायता मिलती है। नायिका भेद अवस्था रूचि, लज्जा आदि के आधार पर किया जाता है। प्रेम के आधार पर नायिकाओं के तीन भेद किए गए है–

- मुग्धा
- मध्या
- प्रौढ़ा
- **मुग्धाः** मुग्धा में प्रेम का अंकुरण होता है। वह लजाती हुई रसभरी बड़ी–बड़ी रतनारी आँखों से प्रिय के प्राणों को मीठा बना देती है–

औरे ओप कनी निक मु, गनी धनी सरताज।

मनोधनी के नेह की, बनी धनी पर लाज।

नवयौवना संचारिता एवम् लज्जाशीला किशोरी ही मुग्ध है। इन लक्षणों को इस दोहे में स्पष्ट किया गया है–

भावुक उमरोहों भयौ कछुक परमौ भरूआइ।

सीप हरा के मिसहियौ, निसदिन हेरत नाइ।।

- **मध्याः** मध्या नायिका वह है जिसमें लज्जा व काम की मात्रा समान होती है–

  'पतिरति की बगतियाँ कही, सखी लखी मुसकाई।

  कै कै सब टलाटली, अभी चली सुख पाइ।।'

- **प्रौढाः** प्रौढा नायिका में लज्जा कम तथा काम अधिक होता है। वह रति कला में अत्यंत दक्ष होती है–

  'विहंसि बुलाई, बिलोकि उत, प्रोढ तिया रस धूमि।

  पुलक पसिजति पूत को, पिय चूम्यौ मुहुं चूमि।।'

4. **अनुभावः** शृंगार रस में अनुभाव, हाव आदि से रस में प्रेषणीयता बिंबात्मकता स्पष्टता और विश्वजनीनता के साथ सजीवता का संचार होता है। आश्रयगत आंशिक चेष्टायें अनुभाव है और आलम्बन की काममूलक आंशिक चेष्टाएं हाव कहलाती है। अनुभाव चार प्रकार के होते हैं– कायिक, वाचिक, सात्विक व आहार्य।

- ***कायिकः****कहां लडैते दृग करै, परे हाल बेहाल।*

  कहुं मुरली, कहुं पीत पर, कहुं मुकुट बन माल।।

- ***वाचिकः*** *सकत न तब ताते वचन, नो रस को रस खोइ।*

  खिन खिज औहे खीर औ, खरी सवादिल होइ।।

- ***सात्विकः*** *मैं यह तोही में लखी भगती अपूरब बाल।*

  लहि प्रसाद माला जुमो, तनुकमम्ब की भाल।।

- ***आहार्यः*** *चमचमात चंचल नयन, विच घूंघट पर झीन।*

  मानहु सुरसरिता विमल, जल उछरत जुग मीन।।

हावों सूक्ष्म व सांकेतिक होता है। वह स्थूल व स्पष्ट होकर 'हेला' बन जाता है। कवि ने हावों के चित्रण में अपनी रससिद्धता का परिचय दिया है। जैसे–

'कहत, नटत, रीझत, खीझत, मिलत, खिलत, लजियात।

भरे मौन में करत हैं, नैंनन ही सौं बात।'

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।

सौंह करि, भौंहनि हैसे देन कहि, नरि जाइ।।

बिहारी सतसई शृंगार रस का अथाह सागर है। इन्होंने संयोग शृंगार का सातयव विस्तृत और सूक्ष्म निरीक्षण पूर्ण वर्णन किया है।

fo;kx

वियोग शृंगार को विप्रलंभ शृंगार भी कहा जाता है। विरहावस्था में विरही व्यक्ति की समस्त वृतियाँ अन्त मुखी हो जाती हैं और वह अपने ह्रदय के भावों की अभिव्यक्ति तीव्रतम व उदात्त रूप में करने लगता है। वियोग के चार भेद माने जाते हैं–

1. पूर्वराग
2. मान
3. प्रवास
4. विरह।

पूर्वराग

नायिका या नायक के मन में एक–दूसरे के गुणों को किसी से सुनकर या एक–दूसरे को प्रत्यक्ष देखकर प्रेभभाव जागृत है पर प्रतिबंधों के कारण उनका मिलन न हो सका, तो उसे पूर्वराग कहते हैं।

नायिका की सखी नायक के पास आकर नायिका के प्रति प्रेम जागृत करने हेतु उसके सुंदर नेत्रों का वर्णन कर रही है–

बरजीते सर नैन के, ऐसे देख मैं न।

हरिनी के नैंनानु तू, हरि नीके ए नैन।।

बिहारी ने नायक की अपेक्षा नायिका का गुण वर्णन अधिक किया है। सखी कृष्ण के कुंडलों का वर्णन नायिका से कर रही है–

'मकराकृति गोपाल कै, सौहत कुंडल कान।

धर्‌यौ मनौ हिय धर समरू, ड़्यौढी लसत निसान।।'

नायक के मन में वय संधिगली नायिका देखते ही प्रेम उत्पन्न हुआ–

'घूटी न सिसुता की झलक झलक्यौ जोबनु अंग।

दीपति देह दुहून मिलि, दिपति ताफता रंग।।

नायक के देखने तथा मिलने की इच्छा होने पर भी मिलन नहीं होता। तब नायिका के नेत्रों की जो दशा हुई, उसे कवि ने बताया है–

'फिरि–फिरि चितु उतही रहतु, टूटी लाज की लाव।

अंग–अंग छवि झोर मैं, भयौ भौंर की नाव।।

मान

नायक और नायिका का संयोग हो जाने पर नायक से अगर अपराध या धृष्टता हो जाये तो जो प्रेमयुक्त कोप हो जाता है, उसे मान कहते हैं। मान दो प्रकार का होता है– प्रणयमान और ईर्ष्यामान। कवि ने ईर्ष्यामान का वर्णन अधिक किया है–

'नख रेखा सोहे नई, अर सोहें सब गातु।

सौ हे होत न नैन ए, तुम सौहें कतु खाता।।'

प्रणयमान का उदाहरण देखिए–

'कहा लेहुगे खेल पैं तजौ अटपटी बात।

नैंक हँसौंहीं हैं भई भौंहे सौंहें खात।।'

प्रवास

जब नायक कार्यवश, शापवश, भयवश आदि के कारण विदेश चला जाता है तो उससे जो विरहजन्य दुख की अनुभूति होती है, उसे प्रवास कहते हैं। बिहारी के काव्य में विदेशगमन सिर्फ कार्यवश हुआ है। कवि ने प्रवास के कारण होने वाली नायिका की तीन अवस्थाओं का चित्रण किया है–

- प्रवास के समय
- विदेश में जाने के बाद
- वापिस लौटने पर

नायक के विदेश जाने की कल्पना से नायिका उदास हो जाती है। यह नायिका प्रवत्सय पतिका नायिका है–

'ललन चलन सुनि चुप रही, बोली आप न ईठि।

राख्यौ गहि गाढै गरै मनो गमन भी दीढ़ि।।'

प्रोषित पतिका नायिका का नायक विदेश में है। आकाश में बादल नायिका में प्रणय भाव को उभार रहे हैं। नायिका अपनी व्यथा अपनी सखी को सुनाती है। आगत पति का नायिका की बायीं आंख फड़क रही है। हृदय में उत्साह हो रहा है। ये सभी लक्षण उसके प्रियतम के आने के सूचक ही है।

विरह

विरह प्रेम की कसौटी है। विरहावस्था में प्रेम की अनुभूति तीव्रतम हो जाती है। इनकी नायिका विरह में मुरझा नहीं जाती, अधिक तरोताजा हो जाती है। वह पत्र लिखती है–

'कागद पर लिखत न बनत, कहत संदेसु लजात।

कहि है सब तेरो हियौ, मेरे हिय की बात।।'

विरह में कृश की नायिका को मृत्यु चश्मा लगाकर ढूढ़ँना, विरह विदग्ध नायिका की छाती पर डाले गए गुलाब जल का भाप बनकर उड़ जाना आदि अहात्मक वर्णन है। बिहारी के वियोग वर्णन में चमत्कार और अहात्मकता अधिक है। इनमें संवेदना कम है, परंतु वे अपने काव्यकौशल से इस कमी को दृश्यावधान से पूरा कर देते हैं। मानसिक अवस्थाओं का चित्रण कम हुआ है। विरह का प्रभाव कृशता, शुष्कता, दाहत्व और पांदुरता आदि के द्वारा प्रकट हुआ है। विरह ने नायिका को इतना अधिक कृशकाय बना दिया है कि वह सूखकर कांटा हो गयी है। वह साँसों के झूले पर ही झूलने लगती है–

'इत आवत चलि जावत उत, चली छः सातक हाथ।

चढ़ी हिहौंरे सी रहे, लगी उसासनु साथ।।'

कवि ने वियोग निरूपण में कहीं–कहीं लोकसीमा का उल्लंघन किया है। इस दोहे में विरह की ज्वाला का अतिरेक दिखाया गया है–

'औधाई सीसी सु लखि बिरह–बरति बिललात।

बिच ही सूखि गुलाब गौ, छींटौ छुई न गात।।'

अंततः कहा जा सकता है कि बिहारी मूलतः श्रृंगार के कवि है। इन्होंने श्रृंगार के दोनों पक्षों – संयोग व वियोग – का विशद वर्णन किया है। इनका मन संयोग वर्णन में अधिक रमा है। इनके श्रृंगार चित्रण में सूर, मीरा जैसी गंभीरता नहीं है। ये रीतिकालीन चमक दमक से प्रभावित थे।

3.

बिहारी की भक्ति

बिहारी सतसई में यदि शृंगार के पश्चात् किसी अन्य रस की प्रतिष्ठा हुई है तो वह भक्ति रस। कवि ने लगभग 50 दोहों की रचना भक्ति को विषय बनाकर की है। कवि ने भक्ति भावना को शृंगार के पश्चात सबसे अधिक स्थान दिया है। जिसमें भक्ति के विभिन्न पक्षों को संचालित करने का प्रयास किया है।

jhfrdkyhu HkfDr

"शृंगार रीतिकालीन कवियों के जीवन की वास्तविकता थी तो भक्ति उनका संस्कार। वे शृंगार वर्णन के मध्य अपने संस्कारों से कैसे अछूते रह सकते थे। अतः उस काल के कवियों की भक्ति भावना उनकी काव्य धारा के मध्य ऐसे विश्राम के क्षण हैं जहां उनके ठहर जाने के अतिरिक्त और कोई चारा नही था।"

भक्तिकाल में भक्ति ही मुक्ति का साधन एवं साध्य थी। रीतिकाल में राजनीति एवं सामाजिक ढांचा ही बिखर गया। फिर भक्ति का साधन अटूट कैसे रह सकता। उन्होंने अपने युगीन प्रभाव से इतना भर दिया कि भक्ति के अलौकिक प्रेम को लौकिक प्रेम के आधार पर टिकाया। विलासी सम्राट एवं सामन्तों की विलास भावना की तुष्टि के लिए राधा–कृष्ण को प्रेम–साक्ष्य ढूँढ लिया। केवल इसी कारण शृंगारी कवियों को भक्त कवि नहीं कहा जा सकता। उनके संस्कार इतने प्रबल थे कि घोर शृंगारी वातावरण में भी वे भगवत्–विषयक रति के उस सामान्य धरातल पर उतर आते थे कि कुछ क्षण खड़े रहने से उनका त्रिविध ताप दूर हो जाता था।

fcgkjh dh HkfDr Hkkouk

बिहारी रीतिकालीन कवि हैं। डा० विजयेंद्र स्नातक बिहारी के बारे में लिखते हैं। "बिहारी भक्त नही थे। भक्ति भावना का उनके जीवन से रसात्मक तादात्य रहा हो, इसमें संदेह नहीं।"

इससे यह सिद्ध होता है कि बिहारी के काव्य में भक्ति–भाव का वर्णन प्रसंग रूप से ही आया है।

रीतिकालीन भक्ति के बारे में डा० नगेन्द्र का कथन दृष्टव्य है "यह भक्ति भी उनकी शृंगारिकता का ही एक अंग थी। जीवन की अतिशय रसिकता से जब ये लोग घबरा उठते है तो राधा–कृष्ण का वही अनुराग उनके धर्म भीरु मन को आश्वासन देता होगा। इस प्रकार रीतिकालीन भक्ति एक और तो सामाजिक कवच और दूसरी ओर मानसिक शरण–भूमि के रूप में इनकी रक्षा करती थी।

बिहारी के भक्ति विषयक दोहे उनकी भक्ति के परिचायक न होकर उनमे चिन्तन के किसी क्षण का परिणाम है।

फिर भी 'बिहारी सतसई' के दोहों के सूक्ष्म निरीक्षण से कवि की भक्ति भावना को निम्नलिखित शीर्षकों में प्रस्तुत किया जा सकता है–

(क) भक्ति का आधार

(ख) भक्ति का स्वरूप

(ग) भक्ति के प्रति झुकाव का साधन।

¼d½ HkfDr dk vk/kkj

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्ति का मूलाधार प्रेम मिश्रित श्रद्धा को माना है। वस्तुतः भक्ति में श्रद्धा और प्रेम की अवस्थिति को भुलाया नहीं जा सकता। बिहारी अपने अराध्य के प्रति श्रद्धानत है–

'हरि कीजै तुमसौ यही, विनती बार हजार।

जेहि तेहिं भांति डरौं रहो, पर्‌यौ रहौ दरबार।।'

श्रद्धा के लिए आचार्य शुक्ल ने तीन बातों की ओर संकेत किया है।

1. आलम्बन की महत्ता
2. आत्म दैन्य
3. दृढ़ अनुरक्ति।

कवि बिहारी ने अपने दोहों में इन तीनों तत्त्वों की ओर अभिव्यक्ति की है–

1. **आलम्बन की महत्ताः** बिहारी के उपास्य वृंदावन बिहारी जी राधा कृष्ण समर्थ हैं। उनकी अनेक अलौकिक लीलाओं को स्मरण करते हुए उनकी महत्ता का बोध है–

   'प्रकट भए द्विजराज कुल, सुबस बसै ब्रज आय।

   मेरो हरौ क्लेस सब, केसौ राय।।'

2. **आत्म दैन्यः** आलम्बन के महत्त्व के साथ अपनी दीनता का मान भी उपासक को होना चाहिए। उपासक जब तक अपनी उपास्य के सम्मुख दीनत्व प्रकट नहीं करता तब तक उसके प्रति विशेष झुकाव उत्पन्न नहीं होता। बिहारी ने अपने अनेक दोहों में अपनी दीनता प्रदर्शित की है। आत्म दैन्य में अपनी तुच्छता का ज्ञान और आत्म समर्पण की भावना का प्राधान्य होता है। बिहारी में दोनों ही देखी जा सकती है–

   ज्यों है त्यौं ही तो दुगों हो हरि अपनी चाल।

   हठ न करौ अति कठिन है, मो तारिबो गोपाल।।

तुच्छता के बोध के साथ ही कवि को अपने आलम्बन की महत्ता का ज्ञान होता है। इसलिए वह अपने को अत्यंत तुच्छ समझकर भी अपने को उपास्य के प्रति समर्पित कर देता है। कवि में आत्मसमर्पण की भावना को देखा जा सकता है–

'कीजै चित सौहे तेरे जिहि पतितन के साथ।

मेरे गुण औगुण गननि, गनो न गोपीनाथ।।'

'मोही दोजै भोष जो अनेक अधमन दियौ।

जो बांधे हो तोष, तो बांधो अपने गुननि।।'

आत्मसमर्पण की भावना का चरम विकास वहाँ होता है। जब उपासक उपास्य को ही सब कुछ मान लेता है। उसके लिए संसार का वैभव उसी में समा जाता है–

'कोई कौरिक संग्रहों, कोऊ लाख हजार।

मो सम्पत्ति जदुपति सदा विपत्ति विदारन हार।।'

उपासक के लिए उपास्य की प्रत्येक चीज शिरोधार्य हो जाती है। सुख–दुख समान लगते हैं–

दियौ सुसीस चढाई लै, आधी भाँति अशरि।

जापे सुख चाहत लियौ ताकै दुखहि न फैरो।।

दीरध न लेई दुख सुख सांई न भूलि।

दई–दई क्यों करत है, दई–दई सो कबूलि।।

दृढ़ अनुरक्ति

आलम्बन के महत्व और आत्म दैन्य के बाद दृढ़ अनुराग की अत्यंत आवश्यकता होती है। उपासक को यह निश्चय है कि उपास्य बहुत दीन है, किन्तु इस पर उसकी अनुरक्ति दृढ़ नहीं हुई तो भक्ति का एक पक्ष अधूरा ही रह जाएगा। बिहारी का अपने उपास्य के प्रति अनुराग दृढ़ है–

तजि तीरथ हरि राधिका, तन दुति करि अनुराग।

जहि ब्रज के लिनिकुंजमज, पग–पग होत प्रयाग।।

सीस मुकट करि काछनी, कर मुरली माल।

इहि बानक मो मन बसो, सदा बिहारी लाल।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भक्ति के लिए जिस प्रेम युक्त श्रद्धा की आवश्यकता है, वह बिहारी में पूर्णतः प्राप्त है।

¼[k½ HkfDr dk çfr >qdko dk lk/ku

भक्ति की ओर झुकाव के साधन दोहरे होते हैं–

1. विधात्मक
2. निषेधात्मक

विधात्मक साधन भगवान की ओर झुकने के लिए कुछ करने की प्रेरणा देते हैं। और निषेधात्मक में उन वस्तुओं से बचने का प्रयास किया जाता है, जो भगवान भक्ति में बाधक सिद्ध होते हैं। बिहारी में दोनों ही रूप मिलते हैं–

विधात्मक में नाम स्मरण, गुण कीर्तन, भजन, पाठ–पूजा आदि साधनों की चर्चा होती है। बिहारी ने भी इन विधात्मक साधनों का उल्लेख किया है–

पतवारी भाला पकरि और न कछु उपाय।

तरि संसार पयोधि को हरिनाम करै नाव।।

कवि ने अपने मन को भगवान के गुण स्मरण करते हुए उसको याद करने की सलाह दी है–

यह बिरिया नहिं ओर की तू करिया वह सोंधि।

पाहन नाव चढाय जिन के पार पयोधि।।

निषेधात्मक झुकाव

भक्ति में उन साधनों के विरोध की चर्चा करना जिनके कारण भगवान के भजन में या भक्ति में बाधा पड़ती हो, निषेधात्मक रूप में आता है। भक्तों, भक्त कवियों और सन्तों सभी ने इस प्रकार के निषेधों का वर्णन किया है। सांसारिक मायाजाल, स्त्री–धन, विषय वासना आदि के अतिरिक्त बहुत से भक्तों ने पाखंड, कपट का विरोध किया है।

बिहारी ने भी इनको भक्ति के बाधक ठहराकर निषिद्ध माना है। उनके उदाहरण नीचे देखे जा सकते हैं–

'को घूत्यौ इहि जाल। परिकत कुरंग अकुलात।

ज्यों ज्यों सुरमित ज्यों चहत, त्यों–त्यों उरसत जात।

या भव पारावर को उलचि पार को जाय।

तिय छवि छाया गृहिनी, मांह बीच ही आय।।'

¼x½ HkfDr dk Lo:i

भक्ति के सम्बन्ध में बिहारी के किसी रूप को निश्चित कर पाना कठिन है। उन्होंने जहाँ एक ओर पतवारी माला पकड़ने की सलाह दी है। वहाँ जपमाला, छापा तिलक को व्यर्थ बताया है। वे एक ओर कृष्ण के भक्त हैं तो दूसरी ओर राम का गुणगान करते हैं। अतः उनकी भक्ति भावना पर समान रूप से सोचने से पूर्व उनके द्वारा अभिव्यक्त भक्ति के विभिन्न रूपों का दिग्दर्शन आवश्यक होगा। बिहारी की भक्ति जिन अनेक रूपों में दिखाई देती है वे इस प्रकार रखे जा सकते है–

'कौन भांति रहिवे बिरद, अब देख बे मुरारी।

बीधै नोसो आयके, गीधे गीधहि तारि।।'

वह सगुण भक्ति की प्रशंसा में कहता है–

लटुवा लैं प्रभु कर गहे निर्गुनी गुन लपटाय।

वहै गनी करते छूटे, निर्गुनी यै हवे जाय।।

निर्गुण रूप

हरि भजत प्रभु पीढि दै, गुन विस्तारन मान।

प्रकटत निर्गुन निकट ही, चैत्र रंग गोपाल।।

एकेश्वर रूप

अपने–अपने मत लगै, बादि मचावत सोर।

ज्यों–त्यों सबको सेइबो एके नन्द किशोर।।

अद्वैत रूप

में समझयौ निरधार, यह जग काचो कौच सो।
एके रूप अपार। प्रतिबिम्बत लखिये सदा।।

दार्शनिकः

बुधि अनुमान प्रमाण श्रुति, किये निति ठहराय।
सुक्ष्म गति पर ब्रह्म की अलख लखी नहिंजाय।।

प्रिय रूप

भक्ति का प्रिय रूप बहुत से भक्तों को अच्छा लगा हैं। इसमें मधुरा और सख्य भक्ति तो बहुत ही प्रसिद्ध रही है। मधुरा भक्ति में कवि को प्रियतम मानकर और सख्य में उसे मित्र मानकर उपास्य को अनेक प्रकार के उपालम्भ भी दिये जाते रहे हैं। बिहारी ने मधुरा, सख्य और दास्य – तीनों में मिश्रित उपालम्भ की सृष्टि अपने भक्ति सम्बन्धी दोहे में की है। इसके अनुसार कभी वे उपालम्भ देते हैं, कभी वे अपनी हठवादिता दिखाते हैं और कभी क्षोभ प्रकट करते हैं:

इनके उपालम्भ एक से एक वक्रोक्ति पूर्ण एवं सरस हैंः

"नीकी दई अनाकनी कीकी परि गुहारि।

तज्यौ मनौ तारन बिरद, बारक बारन तारि।।"

इसी प्रकार,

"कोरे ही गुण रीझते, बिसराई वह बानि।

तुमहि कान्ह मनौ भयौ, आजकल के दानि।।"

उनकी दृढ़वादिता और चुनौती देखिएः

"कौन भांति रहिवे बिरद, अब देखिवे मुरारि।

बीघे मोसों आम्के, गीधे–गीधाई तारि।।"

और एक तीखा व्यंग्य करता हैः

"बँधु भए का दीन के, को तार्‌यौ रघुराय।

तूठे तूठे फिरत हो, झूठे विरद कहाय।।"

उनकी भक्ति भावना विषयक उक्तियों को देखकर पता चलता है कि उनमें वैचारिक ज्ञान और भाव सम्प्रेषण की अपार क्षमता थी। श्रृंगार भावना में आकंठ डूबे रहने के बावजूद भी बिहारी के भक्ति विषयक छंदों की ओर पाठकों का ध्यान बरबस जाता है। इसका कारण है बिहारी के विषय की गहरी पैठ, सहृदयता तटस्थ और अभिव्यंजना कौशल।

अन्त में डा० नगेन्द्र के मत को उद्‌धृत किया जा सकता है– "रीतिकाल का कोई भी कवि भक्ति भावना से हीन नहीं है, हो भी नहीं सकता था, क्योंकि भक्ति उसमें मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी। भौतिक रस की उपासना करते हुए उनके विलास जर्जर मन में इतना नैतिक बल नहीं था कि भक्ति–रस में आस्था प्रकट करें अथवा सैद्धान्तिक निषेध कर सके।"

4.

बिहारी की बहुज्ञता

बिहारी सतसई में स्थान–स्थान पर ज्योतिष, वैद्यक, गणित, अध्यात्म, पुराण आदि का सांकेतिक निरूपण किया गया है। 'सतसई' में यद्यपि अनेक शास्त्रों तथा कला आदि का काव्य के क्षेत्र में निरूपण हुआ है फिर भी इससे यह निष्कर्ष नही निकलता है कि बिहारी उन विद्याओं अथवा शास्त्रों के अधिकारी विद्वान थे। गणित, वैद्यक, अध्यात्म विद्या के सर्वसाधारण में प्रचलित तथा सर्वविदित तथ्यों का ही बिहारी ने उल्लेख किया है, जिससे उनके रूचि–वैचित्रय का तो बोध अवश्य होता है, पर इसके आकार पर उन्हे कथित शास्त्रों का विशेषज्ञ नही समझा जा सकता।

गणित

बिहारी की निपुणता केवल उसी दृष्टि से सिद्ध होती है कि लोक–व्यवहार में युग–प्रचलित तथा प्रसिद्ध विविध शास्त्रों को कवि ने काव्य के क्षेत्र में उतारने का सफल प्रयत्न किया है। उदाहरण के लिए बिन्दी लगाकर अंक के दसगुणा होने की बात गणित का साधारण विद्यार्थी भी जानता है और लोक मे भी सर्वविदित है। परन्तु नारी के मुख की कान्ति का माथे पर बिन्दी से दस गुणा से अधिक बढ़ जाना यह सूझ केवल बिहारी की निराली उपज समझी जायेगी।

वैद्यक

गणित के अतिरिक्त बिहारी ने अन्य शास्त्रों की जानकारी भी 'सतसई' में प्रकट की है। उदाहरणार्थ आयुर्वेद या वैद्यक सम्बन्धी ज्ञान का परिचायक एक दोहा देखिये–

'मैं लखि नारी ज्ञानु करि, राख्या निरधारू यह।

वहई रोग निदानु वह, बैदु ओषधि बह।।'

इसमें नाड़ी ज्ञान द्वारा रोग के निदान तथा ओषधि की चर्चा की गई है, परन्तु इतने से ही बिहारी को 'धन्वन्तरि' नही माना जा सकता। इसी प्रकार बिहारी ने 'सुदर्शन चूर्ण', 'पारद–भष्म' का भी वर्णन किया है।

प्रेम रस में भीगा हुआ हृदय विरहाग्नि में संतप्त होकर आँखों के मार्ग से आँसूं बनकर बह रहा है–

'तच्यौ आँच अब बिरह की रह्यौ प्रेमरम भीजि।

नैननु कै मग जलु बहै, हियौ पसीजि–पसीजि।।'

कितनी सुन्दर कल्पना है और स्नत्य में वैद्यक का रंग गंगा–जमनी जल की तरह मिलकर सौन्दर्य का संगम बन गया है।

ज्योतिष

'बिहारी सतसई' में ज्योतिष विद्या का उपयोग बिहारी ने अन्य शास्त्रों की अपेक्षा अधिक किया है। इसके अतिरिक्त जहाँ अन्य शास्त्रों के उल्लेख से केवल इतना ज्ञात होता है कि बिहारी को उन शास्त्रों की साधारण और लोक–प्रचलित मोटी–मोटी बातों की जानकारी भी, उनका गम्भीर और पांडित्यपूर्व अध्ययन कवि को नही था, वहाँ ज्योतिष के विषय में बिहारी का पर्याप्त और विशेष ज्ञान का परिचय मिलता है। अतः बिहारी को ज्योतिष शास्त्र का पर्याप्त ज्ञान था, इसे स्वीकार करने में किसी को आपत्ति नही होनी चाहिए। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं–

'मंगल बिन्दु सुंरगु मुखु, ससि केसरि आड़ गुरू।
इक नारि लहि संगु, रसमय किय लोचन जगतु।।'

इसी प्रकार शनि के मीन लग्न में होने से राजा बनने का योग होता है, इस सिद्धांत का उल्लेख निम्न दोहे में है–

'सनि–कज्जल चख–झख लगन, उदज्यौ सुदिव सनेह।

क्यौं न नृपति ह्वै भोगवे, बहि सुवेंस सबु देह।।'

दर्शन शास्त्र

बिहारी के अनेक दोहों में दार्शनिक ज्ञान का भी परिचय मिलता है। परन्तु इस क्षेत्र में उतनी ही बातों का उल्लेख है, जिनका ज्ञान प्रायः साधारण शिक्षित वर्ग को प्रायः हुआ करता है। बिहारी ने नरहरिदास के पास रहकर दर्शनशास्त्र सम्बंधी ज्ञान प्राप्त किया था, जिसका उपयोग प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनो रूपों में 'बिहारी–सतसई' में मिलता है। जैसे–

"मैं समुझयौ निरधार, यह जागु कांचो कांच सौ।

एकै रूप अपार, प्रतिबिंबित लखियतु जहाँ।।"

इस दोहे में एक परमात्मा के संसार में अनेक रूपों में प्रतिबिंबित होने की दार्शनिक विचारधारा सरल सुन्दर ढंग से व्यक्त की गई है।

इस प्रकार के अतिरंजित वर्णनों में अद्वैतवाद के सिद्धांत भी दिग्दर्शन कराया गया है–

जोग जुगति सिखए सबै, मनौ महामुनि मैन।

चाहत पिय अद्वैतता, काननु सेवत नैन।।

परन्तु इन उल्लेखों से बिहारी तत्त्वज्ञानी दार्शनिक कदापि सिद्ध नही होते।

पुराण

'बिहारी सतसई' में पौराणिक आख्यानों का भी संकेत किया गया है। इससे बिहारी के पौराणिक–अध्ययन का भी पता चलता है। परन्तु रामायण, महाभारत तथा अन्य पुराणों के जिन प्रसंगो को आधार बनाया गया है, वे प्रायः सर्वविदित कथानक हैं, अतः इसे बिहारी के विशेष और गहन अध्ययन का प्रमाण नही समझा जा सकता। उदाहरणार्थ कुछ दोहे प्रस्तुत हैं–

पिय बछुरन कौ दुसह दुख, हरषु जात प्यौसार।

दुरजोधन लौं देखियति, तजत प्रान इहि बार।।

सांसारिक ज्ञान

बिहारी को लोक–जीवन का भी गहरा अनुभव था। राजदरबार के अतिरिक्त शिष्ट समाज के साथ उसका निरंतर सम्पर्क बना रहा। भ्रमण भी खूब किया। निरीक्षण शक्ति तो जन्मजात ही थी। अतः अपने व्यापक और विविध अनुभवों से जो ज्ञान कवि को प्राप्त हुआ, उसे किसी न किसी रूप में उसकी रचना में प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।

वे सभी विषयों के प्रकांड पंडित तो नही थे, परन्तु ज्योतिष में उनका अध्ययन अपेक्षाकृत गम्भीर था। लोक–जीवन का प्रत्यक्ष अनुभव होने से वह अपने युग की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक – गति–विधियों, खेल–तमाशों, अन्धविश्वासों, रीति–रिवाजों से पूरी तरह परिचित थे। उनकी साधना एकांतनिष्ठ नही थी, उनका ज्ञान भी केवल पुस्तकों तक सीमित नही था। बिहारी एक जागरूक, बहुश्रुत, बहुपठित और बहुरूचि के कलाकार थे।

5.

बिहारी की काव्यकला

बिहारी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने लगभग 700 दोहे लिखे, परंतु उन्होंने गागर में सागर भर दिया है। कवि के काव्य के दो पक्ष होते हैं–

(क) भाव पक्ष

(ख) शिल्प पक्ष

¼d½ Hkko i{k

कवि मूलतः शृंगार के कवि हैं, परंतु अन्य विषयों यथा भक्ति, नीति, प्रकृति आदि पर भी उनकी लेखनी चली है।

शृंगार वर्णन

कवि ने शृंगार के दोनों पक्षों – संयोग व वियोग – का विशद वर्णन किया है। संयोग शृंगार के अंतर्गत इन्होंने शृंगारिक व्यापार, चेष्टाओं, हाव–भाव आदि का बड़ा सहज और जीवंत वर्णन किया है। इन्होंने नायिका के रूप वर्णन, नखाशिख वर्णन, संधि आदि के स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत किए हैं। नायिका के मुख का वर्णन करते हुए वे कहते हैं–

छप्यौ छबीलों मुँहु लसै, नीले अंचर चीर।

मनौ कलानिधि झलमलै, कालिंदी के नीर।।

कवि के संयोग चित्रों में केवल शहरी जीवन ही नहीं, अपितु गाँव की मनोहारी छटाएँ भी समाहित है। नदी सरोवर, स्नान, झूलना, फागुन की मादकता, फसलों का वर्णन आदि ऐसे दृश्य चित्र हैं जो अपूर्व सौंदर्य प्रदान करते हैं। झूलें का एक दृश्य और अकस्मात् नायक–नायिका का मिलन अवधेय है जिसमें सरलता और चतुरता का अद्भुत योग है–

'हेरि हिंडोरै गगन तैं परी–परी सी टूटि।

धरी धाइ पिय बीच ही, करी खरी रस लूटि।।

वियोग वर्णन में कवि ने पूर्वराग, मान, प्रवास, करूण आदि चारों वियोग शृंगार रूपों का उद्‌भावन अपने दोहों में किया है, लेकिन प्रवास के निरूपण में कवि का चित्र खूब रमा है। वियोग शृंगार निरूपण में कवि ने अनेक स्थानों पर स्वाभाविकता और लोकसीमा का भी अतिक्रमण कर डाला है। प्रस्तुत दोहे में नायिका की विरह ज्वाला का अतिश्योक्ति पूर्ण वर्णन है–

औंधाई सीसी सु लखि बिरह–वरति विललात।

बिच ही सूखि गुलाब गौ, छींटौ छुई न गात।।

बहुज्ञता

बिहारी की कविता में नीति, प्रकृति, समाज, संस्कृति, सौंदर्य के अनेक बिंब विद्यमान है। उनके दोहों में आयुर्वेद, ज्योतिष, गणित, राजनीति, मनोविज्ञान, युद्धध, काम आदि विषयों का ज्ञान भरा पड़ा है। वे बहुश्रुत कवि हैं। उन्हें लोक का व्यापक गहरा ज्ञान था। समाज–संस्कृति, प्रकृति–परिवेश आदि से संपृवत यह दोहा दर्शनीय है जिसमें घर के दामाद की तुलना पूस के दिन से की गई है–

'आवत जात न जानियतु, तजि तेजहिं सियरान।

घरहिं जँवाई लौ घट्यौ, खरौ पूस दिन मान।।

दरबारी माहौल का कवि ने इस प्रकार वर्णन किया है–

'तंत्री–नाद। कवित्त–रस, सरस राग, रति–रंग।

अनबूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग।।

भक्ति भावना

बिहारी के काव्य में भक्ति संबंधी 45 दोहे हैं। इनके दोहों में भक्ति का प्रवाह भक्तिकाल के कवियों जैसा दिखाई पड़ता है। कवि ने अपनी 'सतसई' में दीनता, लघुता, अपावनता तथा प्रभु की शक्ति, शील, सौंदर्य आदि का वर्णन किया है। उदाहरण–

'कौन भाँति रहिहै बिरदु, अब देखिबी मुरारी।

बीधे मोसों आइकै, गीधे गीधहिं तारि।।

कवि श्रीकृष्ण को उलाहना देते हुए कहता है–

'कब कौ टेरतु दीन रट, होत न स्याम सहाइ।

हुमहूँ लागी जगत–गुरू, जग–नाइक, जग बाइ।।'

विषय की विविधता

कवि ने भक्ति, नीति, श्रृंगार, वीरता, वैद्यक आदि विषयों को अपने दोहों में वर्णित किया है। कवि स्वयं मानता है कि–

'करि बिहारी सतसई भरी अनेक स्वाद।'

कवि ने मुक्तक काव्य की रचना की है। इन्होंने सत्संग का महत्व, कुसंग के त्याग का उपदेश दिया है। इन्होंने प्रकृति का आलम्बन व प्रकृति रूपों में वर्णन किया है। जैसे–

बैठि रही अति सघन बन, पैठि सदन–तन मॉह।

देखि दुपहरी जेठ की, छाहौं चाहति छाँह।।

¼[k½ f'kYi i{k

बिहारी ने 'गागर में सागर' भरा है। उनके दोहे अर्थ–गाम्भीर्य के निर्कष है। कवि की सतसई ब्रज भाषा का श्रृंगार है। कवि का काव्य भाषा और भाव–दोनों के समन्वय से महिमामंडित है। बिहारी सतसई की लोकप्रियता का सबसे बड़ा आधार उसकी कलात्मक चारूता है। सचमुच में इनके दोहे बेजोड़ है–

सतसैया के दोहरे, ज्यों नायक के तीर।

देखन में छोटे लगैं बेधैं सकल सरीर।।

इनके शिल्प की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–

समास पूर्ण शब्द प्रयोग

दोहा जैसे लघु आकार के छन्दों में बिहारी ने भाव सागर भर दिया हैं। इसके लिए आवश्यक था कि समास पूर्ण शब्दो का प्रयोग बड़ी कुशलता से हो। थोड़े शब्दों में बहुत कुछ कहने के लिए भाषा का समासयुक्त होना आवश्यक है। ऐसी समास बहुत भाषा में रूपक अलंकार का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया गया है। उनके कुछ सामासिक शब्द छोटे तो कुछ लम्बे भी प्राप्त होते हैं। सामासिक शब्द चाहे छोटे हो चाहे लम्बे, पर बिहारी की भाव व्यंजना में न बाधा खड़ी हुई है, न भाषा में कोई क्लिष्टता है।

'रनित भृंग घंटावली, सरत दान मधुनीर।

मंद–मंद आवत चल्यौ, कुजंर–कुंज समीर।।

मंगल बिन्दु सुंरग मुख, ससि केसर आड़ गुरू।

इक नारी लहि संग, रसमय किए लोचन जगत।।

चित्रोपम विशेषणों का प्रयोग

चित्रोपम विशेषणों का प्रयोग करने में बिहारी की विशेष रूचि थी। पाठक पर सहसा प्रभाव डालने की दृष्टि से सामान्य विशेषण उपयोगी साबित नहीं होते। अतः बिहारी ने अपने काव्य में चित्रोपम विशेषणों का बहुत प्रयोग किया है। उत्तेजनापूर्ण ऐन्द्रिय भावना उत्पन्न करने में वे बेजोड़ होते हैं। प्रसंग विशेष को देखते हुए बिहारी ने नयन के लिए अनियोर नयन, अहेरी नयन, कचरारे नयन, चंचल नैन आदि विशेषणों का प्रयोग किया है।

अनियारे दीरघ दृगनुं, किती न तरूनी समान।

वह चितवनि और कछु, जिहि बस होत सुजान।।

न केवल विशेषणों के प्रयोग का कौशल कवि में था बल्कि उसमें अपने शब्दों द्वारा सजीव वर्णन कर वर्ण्य का चित्र ही पाठकों या श्रोताओं के समक्ष उपस्थित करने की क्षमता थी। नायक–नायिकाओं के कायिक अनुभवों को बिहारी ने यों शब्द बद्ध किया है कि समूचा चित्र ही आँखों में घूमने लगता है।

चित्र–योजना

सतसईकार बिहारी की भाषा चित्रात्मक है। जो एक चित्रकार अपनी तूलिका के माध्यम करता है, वहीं काम बिहारी ने अपनी लेखनी के द्वारा किया है। चित्रकार के चित्र स्थिर होते हैं। जबकि बिहारी के विभिन्न चित्र चलचित्र के समान चंचल एवं गत्यात्मक हैं।

बिहारी ने अपनी सतसई में न जाने कितने ही भावों अनुभावों को आकार ही नहीं अपितु प्राणदान भी दिया है। पहले भी वर्णन किया जा चुका है कि बिहारी ने नयनों के लिए कितने ही विशेषणों का प्रयोग किया है। यदि हम इनके स्थान पर दूसरे पर्यायवाची शब्दो का प्रयोग करें तो अर्ध का सौंदर्य सुंदरता से संवलित नहीं हो पाता।

उदाहरण देखिएः

'बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।

सौंह करैं भौहनि हसै, देन कहै नहि जाय।।'

वर्ण चित्र

बिहारी की भाषा ने वर्ण चित्रों की भी सृष्टि की है। वर्ण बोध का प्रथम उदाहरण तो, 'बिहारी सतसई' के प्रथम दोहे में ही मिल जाता है जहां कवि 'राधा नागरि' की प्रार्थना करता हुआ कहा है कि–

'मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।

जा तन की झांई परै, श्याम हरित दुति होय।।'

रंगो के मिश्रण का एक और चित्र देखिए–

'अधर धरत हरि के परत, ओढ डाढि पट जोति।

हरित बांस की बांसुरी, इन्द्रधनुष रंग होति।।'

अलंकारमयी

सुन्दर अलंकृत होकर सुन्दरतम हो जाती है। बिहारी के दोहे प्रायः अलंकारों के आकार हैं। अलंकार विधान सें भाषा का उपयोगी रूप सामने आया है–

श्लेष अनुप्रास

'मेरी भवबाधा हरौ, राधा नागरि सोय।

जा तन की झांई पेरे, स्याम हरित दुतिहोय।।'

यमकः

'कनक कनक ते सौगुनी मादकता अधिकाय।

उइ खाए बौराए जग, उइ पायें बौराय।।'

विरोधाभास

'या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहीं कोय।

ज्यों–ज्यों बूड़े स्याम रंग त्यौं त्यौं उज्ज्वलु होया।।'

वक्रोक्ति

'बंधु भए का दीन के, को तारयो जदुराई।

तूठे तूठे फिरत हौ, झूठैं विरद कहाइ।।'

मुहावरेदार

मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा में आकर्षक शक्ति का संचार होता है। रसधार और भी तीव्र हो जाता है। बिहारी ने अनेक प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों का अत्यंत औचित्यपूर्ण प्रयोग किया है। यथाः

- 'पीनस वोरो जो तजे, सोरा जानि कपूर।'
- 'खरी पातरी कान की, कौन बहाऊ बानि।'

  आक कली न रली करै, अलि अलो जिय जानि।।
- 'धूर मुकति मुंह दीन।'
- 'मूड़ चढाए हूं रहे, परयौ पीढि कचमार।

  रहॅ गेरे परि राखिवो, तऊ हिये परहार।।'
- 'गैड़ी दै गुन रावेर कहति कलैड़ी दीढि।'

लाक्षणिक प्रयोग

लाक्षणिक प्रयोगों में भी बिहारी सिद्धहस्त है। उनकी भाषा सर्वत्र तीर की भाँति सधे हुए, सीधे और लाक्षणिक प्रयोग करती है। कचनार और हार पर किये गये लाक्षणिक प्रयोग का एक उदाहरण दृष्टव्य है–

मूड चढाए हूं रहे परयौ पीढि कचमार।

रहे गरै परि राखिबो, तऊ हिये पर हार।।

कई लोकप्रिय लाक्षणिक प्रयोग एक ही दोहे में प्रयुक्त हुए हैं–

दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।

दृग परति गांठि दुरजन हिये, दई नई यह रीति।।

अन्य भाषाएँ

कविवर बिहारी ने प्रमुख रूप से ब्रज भाषा में सतसई का सृजन किया है, किन्तु साथ–साथ बुन्देली, अवधी, फारसी और उर्दू के भी अनेक शब्दों का प्रयोग किया। सतसई में पूर्ण स्वाभाविकता से किया गया हैं। बुन्देली भाषा तो बिहारी की मातृभाषा थी। अतः उसका ललित प्रयोग तो स्वाभाविक है।

- **पूर्वी अवधी प्रयोगः** दीन, कीन, लीन, लजियात जेही, केही।
- **बुन्देली प्रयोगः** खैर, करवी, पायवी, मरोर चाला आदि।

कई दोहे पूर्णतया ही बुन्देली भाषा में रचे गए है–

चिलक चिकनई चटकस्यो लफति सटकलों आइ।

नारी सलोनी सांवरी, नागिन को डसि जाई।।

उर्दू फारसीः मुसलमानो का राज्यकाल था, अतः उर्दू का वातावरण था ही। उसका प्रभाव भी बिहारी पर पड़ा था। सतसई में अनेक शब्द उर्दू के प्रयुक्त हुए हैं, जैसे– इज़ाफा, खुबी, खुशहाल, अदब, हद, पायन्दान, बरजोर, हुक्म आदि।

धन्यात्मकता या नाद सौन्दर्य

धन्यात्मकता या नाद सौन्दर्य के लिए बिहारी हिन्दी काव्य जगत में विख्यात है। इस दिशा में उनका वैश्ष्ट्‌य निर्विवाद है।

नायिका की रसभरी अंग चेष्टाओं का ध्वन्यात्मक वर्णन प्रस्तुत दोहे में दृष्टव्य है।

'बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।

सौंह करैं, मौंहनि हंसै, देन कहै, नहि जाय।।'

'अनियारे दीरघ दृगनि किती न तरूनी समान।

वह चितवक और कछु, जिहि बस होत सुजान।।'

यह नेत्र सौन्दर्य का चित्र अपनी ध्वन्यात्मकता में अद्वितीय है। 'और कछु' के द्वारा प्रतीयमान अर्ध की ओर इंगित है।

पद मैत्री और नाद सौन्दर्य को अनुप्रास के साथ आकर्षक रूप में सजाया गया है–

'कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत लजियात।
भरे यौन में करत हैं, नैनन ही सो बात।।
रस सिंगार मंजन किये, कंजनु, भंजन दैन।
अंजन, रंजन हूं बिना, खंजन गंजन नैन।।'

प्रवाहात्मकता

दोहे जैसे छोटे छन्द में और जबकि काव्य मुक्तक शैली में रचा गया हो, तो प्रवाह की संभावना प्रायः नहीं रहती है। 'बिहारी' ने इन सीमाओं के होते हुए भी प्रवाह की लोकोत्तर सृष्टि की है।

कवि की रस धार एवं प्रवाहात्मकता की अनेक मर्मज्ञों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। शुक्ल जी ने हर दोहे को रस की पिचकारी ही कहा है। रस प्रवाह का उदाहरण दृष्टव्य हैः

'मुख उधारि पिउ लखि रहत, रहयौ नगौ मिससैन।

फरके ओठ, उठे पुलक, गए उधरि, जुरि नैन।।'

नायक–नायिका की प्रेममयी चेष्टाएं व्यंजित हैं। नायिका सोने का बहाना कर रही थी कि औष्ठ फड़क उठे। बस दोनों नेत्र मिल गये।

निष्कर्षतः बिहारी की भाषा सभी दृष्टियों से श्रेष्ठ है। व्याकरण और सौन्दर्य की विरोधी कसौटियों पर भी वह खरी उतरती है। विश्वनाथ प्रताप मिश्र के शब्दों में, "बिहारी का भाषा पर सच्चा अधिकार था। बिहारी को भाषा का पंडित कहना चाहिए। भाषा की दृष्टि से बिहारी की समता करने वाले, भाषा पर वैसा ही अधिकार रखने वाला कोई मुक्तककार नहीं दिखाई पड़ता।"

6.

व्याख्या

HkfDr&uhfr

"मेरी भव ... ... दुति होइ ।।1।।"

शब्दार्थः भव–बाधा = सांसारिक विघन बाधाएँ; नागरि = चतुर; झाई = परछाई, झलक, ध्यान; स्यामु = श्याम वर्ण, वाले कृष्ण, श्रीकृष्ण, दुखादि; हरित–दुति = हरे रंग से मुक्त, प्रसन्न, प्रभावहीन।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी के 'भक्ति–नीति' शीर्षक से ली गई है। इसमें गुणसम्पन्न राधा की वन्दना की गई है। यह दोहा 'बिहारी सतसई' का प्रथम दोहा है, जो मंगला चरण के रूप में रखा गया है।

व्याख्याः रीतिकालीन कवि बिहारी ने राधा की अर्चना करते हुए दोहे की रचना की है। इसके तीन अर्थ सामने आते हैं–

1. जिस चतुर राधिका के शरीर की परछाई पड़ते ही श्याम वर्ण वाले श्रीकृष्ण का रंग हरे रंग का हो जाता है। वह राधा मेरी सांसारिक कठिनाइयों को समाप्त करें।
2. जिस चतुर राधिका के शरीर की झलक पड़ते ही श्रीकृष्ण आनन्द विभोर हो उठते हैं। वह राधा मेरी सांसारिक कठिनाइयों को समाप्त करें।
3. जिस चतुर राधिका के रूप का ध्यान करने से दुखादि समाप्त हो जाता है। वह राधा मेरी सांसारिक कठिनाइयों को समाप्त करें।

विशेषः

1. भक्ति–भावना की अभिव्यक्ति है।
2. राधा की उपासना है।
3. झाई, स्यामु, हरित–दुति शब्दों में एकाधिक अर्थ होने से श्लेष अलंकार है।
4. आकर्षक लयात्मकता है।
5. ब्रज भाषा का सुन्दर रूप है।

"जी की दई ... ... तारि ।।2।।"

शब्दार्थः जी की = अच्छी; अनाकनी = अनसुनी; फीकी = प्रभावहीन; तारन–बिरदु = उद्धार करने का यश; बारक = एक बार; बारनु = हाथी; तारि = मुक्ति देना।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत दोहा पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी के 'भक्ति–नीति' शीर्षक से लिया गया है। इसमें भक्त भगवान से बड़ी आशा लगाने के बाद निराशा में उलाहना दे रहा है–

व्याख्याः हे प्रभु, आपने हमारी प्रार्थना को पूरी अनसुनी की है। ऐसा लगता है हमारी आवाज ही कमजोर हो गई है, जिससे आपको सुनाई नहीं पड़ रही है। ऐसा लगता है आपने एक बार मगर से हाथी को बचाकर 'तारनहारा' बन गए और फिर दूसरों का उद्धार करना ही छोड़ दिया है।

विशेषः

1. इसमें उपालम्भ के साथ ईश्वर को याद किया गया है।
2. इसमें 'मगर' और 'हाथी' की पौराणिक कथा का चित्रण भी है।
3. "तज्यों मानौं ... " में उत्प्रेक्षा अलंकार है।
4. व्यंग्यात्मक भाषा का प्रभावी प्रयोग है।
5. ब्रज भाषा का सुन्दर रूप है।
6. दोहा–छन्द की योजना।
7. मुक्तक शैली।

"कौन भाँति ... ... गीधहिं तारि ।।3।।"

शब्दार्थः भाँति = तरह; रहिहै = रहेगा, बच पायेगा; बिरदु = यश, गौरव; बीधे = उलझना, भिड़ना; मोसों = मुझसे; गीधहिं = गिद्ध, जटायु; तारि = उद्धार।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत दोहा पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी के 'भक्ति–नीति' शीर्षक से लिया गया है। इसमें कवि ने अपने को सबसे बड़ा पापी बताते हुए पतितपालक को उद्धार के लिए आह्वान किया है।

व्याख्याः बिहारी ने आराध्य कृष्ण को आह्वान करते हुए कहा है। हे कृष्ण, अब मुझे यही देखा है कि आप के 'पतितपावन' नाम का यश कैसे बचता है। जटायु जैसे सामान्य पापी का उद्धार आपने किया है और मैं सबसे बड़ा पापी हूँ। मेरा उद्धार कर पाना अत्यन्त कठिन है। अब आपके सामने मुझ जैसा बड़ा पापी है।

विशेषः

1. भक्ति–भावना की सुन्दर अभिव्यक्ति है।
2. जटायु के उद्धार की पौराणिक संदर्भ है।
3. भक्ति का प्रतिद्वन्द्वात्मक रूप है।
4. 'गीधे गीधहि' में अनुप्रास अलंकार है।
5. मुक्तक रचना का स्वरूप है।

6. सुन्दर लयात्मकता है।
7. भक्ति–रस का परिपाक है।

"नहिं परागु ... ... कौन हवाल ।।4।।"

शब्दार्थः परागु = पराग; मधु = मकरन्द के कण; विकास = खिला रूप; अली = भ्रमर; इहिं = इस; हवाल = दशा।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत दोहा पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'भक्ति–नीति' शीर्षक से लिया गया है। इसमें भ्रमर के माध्यम से जयपुर के राजा को शासन–व्यवस्था पर ध्यान देने के लिए प्रेरणा दी गई है।

व्याख्याः बिहारी ने अविकसित कली के मोहपाश में उलझे भौरों को देख कर कहा है। हे भ्रमर! तू अभी से इस कली के मोहपाश में फँस गया है। इसमें अभी न इसमें फाग के कण, मधु का उद्भव हो पाया है और न इसका खिलना संभव हुआ, फिर भी तुम्हारी यह दशा है। जब यह कली खिल कर फूल बन जाएगी, तब तुम्हारी क्या दशा होगी।

इसमें अन्योक्ति के रूप में संकेत किया गया है कि अल्पवयस्क नायिका की ओर नायक आकर्षित होकर सब कुछ भूल गया है जब यौवनावस्था होगी तो क्या होगा।

विशेषः

1. कहा जाता है राजा जयसिंह के द्वारा अवयस्क नायिका पर इतने आसक्त हो गये थे कि राजकाज भूल गए थे। ऐसे में बिहारी ने अन्योक्ति में उन्हें सजग करने के लिए दोहा लिखा था।
2. अन्योक्ति का सुन्दर स्वरूप है।
3. व्यंग्य का आकर्षक रूप है।
4. ब्रज भाषा का सहज रूप है।
5. 'मधुर मधु' में अनुप्रास अलंकार है।
6. आकर्षक गेयता है।
7. दोहा छन्द की योजना है।

"जगतु जनायौ ... ... देखी जाँहि ।।5।।"

शब्दार्थः जनायौ = ज्ञान दिया; जिहिं = जिसने; सकल = सम्पूर्ण; आँरिवनु = आँखों से।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत दोहा पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'भक्ति–नीति' शीर्षक से लिया गया है। इसमें गुरू के द्वारा शिष्य का सर्वव्यापी ईश्वर के विषय में जानकारी दी गई है–

व्याख्याः हे मानव! तुम उस ईश्वर को भी नहीं जान पाये जिसने इस संसार की रचना की है और मनुष्य को ज्ञान दिया है। यह ठीक उसी प्रकार हो रहा है जैसे आँखों से सब कुछ देख लेते हैं, किन्तु उन आँखों को देख पाना संभव नहीं होता है।

विशेषः

1. मानव को उद्‌बोधन का रूप है।
2. 'जगतु जनायौं' में अनुप्रास अलंकार है।
3. आकर्षक लयात्मकता है।
4. मुक्तक रचना है।
5. दोहा छन्द की योजना है।

"सीतलताऽरु सुबास ... ... जानि कपूरू ।।6।।"

शब्दार्थः सीतलताऽरू = शीतलता और; सुबास = सुगंध; मूरू = महत्त्व; जीनस वारै = नाक में होने वाला रोग जिससे गँध का अनुभव समाप्त हो जाता है; कपूरू = कर्पूर।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत दोहा पाठ्‌यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'भक्ति–नीति' शीर्षक से लिया गया है। इसमें महत्व वाली वस्तु को यदि कोई पहचान न पाये, तो उसकी महत्ता के अप्रभावित होने की बात बताई गई है।

व्याख्याः बिहारी नैतिक संदर्भ को सामने रख कर कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति नाक के रोग पीनस हो जाने के कारण यदि कपूर की शीतलता और उसकी सुगंध को नहीं जान पाता है, तब भी कपूर की शीतलता और सुरभि ज्यों की त्यों रहती है।

इसमें अन्योक्ति से यह अर्थ निकलता है कि गुणी व्यक्ति को यदि कोई व्यक्ति विशेष न समझ पाये, तो वह गुणी ही रहेगा।

विशेषः

1. अन्योक्ति का आकर्षक रूप है।
2. 'सीतलताऽरू सुबास', 'महिमा–मुरू' में अनुप्रास अलंकार है।
3. सुन्दर लयात्मकता है।
4. अन्योक्ति का आकर्षक रूप है।
5. दोहा छन्द की योजना।

"भोरैं ही ... ... के दानि ।।7।।"

शब्दार्थः थोरैं = थोड़े; रीमते = खुश होते; बिसराई = भुला दी; बानि = आदत, निश्चय; आज–काल्हि = आज कल।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत दोहा पाठ्‌यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'भक्ति–नीति' शीर्षक से लिया गया है। इसमें ईश्वर के भी विचारों में परिवर्तन आने का संदर्भ प्रस्तुत किया गया है।

व्याख्याः बिहारी कहते हैं, हे प्रभु पहले आप थोड़े से गुणों को देख कर भक्त पर प्रसन्न हो जाते थे। अब वह आदत तुम में दिखाई नहीं देती है। ऐसा देखकर लगता है कि तुम्हें भी आजकल के दानियों का स्वभाव अपना लिया है। अर्थात् आज जैसे धनिक दान नहीं देते वैसे ही तुम भक्त पर कृपा करना छोड़ चुके हो।

विशेषः

1. कवि समसामयिक राजाओं को उद्बोधित कर रहा है।
2. ईश–भक्ति का भी स्वरूप है।
3. "तुमहूँ कान्ह मनौ" ... में उत्प्रेक्षा अलंकार है।
4. ब्रज भाषा का सुबोध रूप है।
5. दोहा छन्द की योजना।

"कब को ... ... जग बाइ ।।8।।"

शब्दार्थः बेरत = आवाज लगाना; रट = लगातार याद करना; तुमहूँ = तुम्हें भी; जग–नाइक = जग के नायक; जग–बाइ = संसार की हवा।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पद्यांश पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'भक्ति–नीति' शीर्षक से लिया गया है। भक्त ईश्वर को लगातार पुकार रहा है और उसकी सुनवाई ईश्वर के यहाँ न होने से इस प्रकार कहता है।

व्याख्याः बिहारी लिखते हैं कि प्रभु श्रीकृष्ण को सहायता के लिए लगातार आवाज लगा रहा हूँ, किन्तु श्याम सहायक नहीं हो रहे है। ऐसे में लगता है कि संसार को दिशा दिखाने वाले, संसार के नायक को सांसारिक हवा लग गई है। इससे भक्त विह्वल है।

विशेषः

1. भक्ति–भावना की आकर्षण प्रस्तुति है।
2. 'स्याम सहाय' में अनुप्रास अलंकार है।
3. सुन्दर लयात्मकता है।
4. ब्रज भाषा का आकर्षक स्वरूप है।
5. दोहा छन्द की योजना।
6. 'जग बाइ लगना' मुहावरे का प्रभावी प्रयोग है।

"तभी नाद ... ... सब अंग ।।9।।"

शब्दार्थः तभी नाद = वीणा आदि की लयात्मक ध्वनि; कवित–रस = काव्य–रस; राग = पूरी लयात्मकता; रति–रंग = काम केलि; अन बूड़े = आधे या उचटे मन से; बूडे = डुबकी लगाते हैं, ध्यान मग्न होकर रस लेते हैं।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत दोहा पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'भक्ति–नीति' से लिया गया है। इसमें गीत, संगीत और प्रेम के संदर्भ में तन्मयता को उपलब्धि का आधार कहा है।

व्याख्याः बिहारी ने लिखा हैं कि जो व्यक्ति एकाग्र न होकर वीणा आदि का संगीत, काव्य का रसास्वादन और काम–के लिए का आनन्द उठाना चाहेगा, वह सदा असफल होगा। जो व्यक्ति इनमें पूरे मन से डुबकी लगा कर आनन्द लेना चाहता है, वह सफल हो जाता है। अर्थात् उसे पूरा आनन्द संभावित है।

विशेषः

1. नैतिक और भृंगारिक संदर्भ है।
2. 'राग रति रंग' में अनुप्रास अलंकार है।
3. 'बूड़े', 'बूड़े' में दो अर्थो के प्रयोग से यमक अलंकार है।
4. सुन्दर गेयता–लयात्मकता है।
5. दोहा छन्द की योजना।

"या अनुरागी .... उज्जलु होइ ।।10।।"

शब्दार्थः अनुरागी = प्रेमी; बूड़े = डूबे; स्याम रंग = काला रंग, कृष्ण का प्रेम; उज्जलु = निर्मल।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'भक्ति–नीति' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें कृष्ण–भक्ति के विषय में चर्चा की गई है।

व्याख्याः बिहारी ने लिखा है कि कृष्ण का प्रेम बहुत ही अनूठा होता है। कृष्ण–भक्त के मन की दशा को कोई अन्य नहीं समझ सकता है। इस भक्ति की सबसे बड़ी विशेषता है कि भक्त जैसे–जैसे प्रेम में मग्न होता जाता है, उसका मन वैसे–वैसे निर्मल होता चला जाता है।

विशेषः

1. भक्ति–भावना का सहज चित्र है।
2. 'ज्यों–ज्यों', 'त्यों–त्यों' में पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार है।
3. ब्रज भाषा का स्वरूप है।
4. सुन्दर गेयता है।
5. आकर्षक लयात्मकता है।

"जपमाला ... ... राँचै रामु ।।11।।"

शब्दार्थः सरै = काम पूरा करना; एकौ = एक भी; काँचे = कच्चा; साँचे = सच्चे; राँचे = रचना, प्रसन्न होना।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'भक्ति–नीति' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें दिखावे की भक्ति न करके मन से ईश–आराधना करने का संकेत किया गया है।

व्याख्याः बिहारी का कथन है कि प्रसन्नता प्राप्त के लिए ईश–भक्ति में माला लेकर उसकी कड़ियों को घुमाते रहने, शरीर के विभिन्न अंगों पर और अपने कपड़े पर राम–राम छपा लेने से या मस्तक पर तिलक लगाने से कोई लाभ नहीं है। चंचल मन लगातार सांसारिक प्रलोभनों में भटकता रहता है। ईश्वर भक्ति और उससे मिलने वाला आनन्द मन की एकाग्रता में ही संभव है।

विशेषः

1. बाह्याडंबर का स्पष्ट खण्डन है।
2. भक्ति–भावना का आकर्षक रूप है।
3. सुन्दर लयात्मकता है।
4. ब्रज भाषा का सहज रूप है।
5. दोहा छंद की योजना।

"घर–घर ... ... बडौ लखात ।।12।।"

शब्दार्थः डोलत = फिरना; जनु = व्यक्ति; जाचत = माँगना; चसमा = ऐनक; चखनु = आँखो पर।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'भक्ति–नीति' से ली गई हैं। इसमें नैतिक तथ्य स्पष्ट किया गया है कि लालच में दर–दर भटकना पड़ता है और दूसरों के आगे हाथ फैलाना पड़ता है।

व्याख्याः बिहारी का कथन है कि मनुष्य लालच के वश में होकर दीन भाव से घर–घर जाना पड़ता है और अनगिनत लोगों से लगातार माँगते रहना पड़ता है। जब मनुष्य पर लोभ का दबाव होता है, तो उसे हर व्यक्ति धनी और सम्पन्न दिखाई देता है और मांगते रहने की इच्छा जगती है।

विशेषः

1. नैतिक शिक्षा का स्वरूप है।
2. लोलुपता से बचने का संकेत है।
3. 'घर–घर', 'जनु–जनु' में पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार है।
4. 'लोभ चश्मा दिए' मुहावरे का सुन्दर प्रयोग।

5. 'जाचत जाइ' और 'चंसमा चखनु' में अनुप्रास अलंकार है।

6. प्रसाद और माधुर्य गुण सम्पन्न शैली है।

"बडेन हूजै ... ... न जाइ ।।13।।"

शब्दार्थः हूजै = होते हैं; गुनन = गुणों; बिरद = यश; बडाई = चर्चा; गढ्यौ = बनाया।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'भक्ति–नीति' शीर्षक से ली गई है। इसमें व्यक्ति की विशेषताओं से ही उसे यश मिलने की बात कही गई है। बड़ा या अच्छा नाम रख लेने से कोई बड़ा नहीं होता है।

व्याख्याः बिहारी का कथन है कि गुण विहीन व्यक्ति कितना भी बड़ा या अच्छा नाम रख ले उसे महत्व मिलना संभव नहीं होता है। जैसे धतूरे को यदि कनक कहें, तो धतूरे को महत्त्व मिलना असंभव है। धतूरे को कनक कहने से धतूरे से गहना नहीं बनाया जा सकेगा।

विशेषः

1. गुण सम्पन्नता से महत्त्व की बात कही गई है।
2. 'बिनु बिरद बड़ाई', 'गहनौ गढ्यौ' में अनुप्रास अलंकार है।
3. ब्रज भाषा का बोधगम्य स्वरूप है।
4. सुन्दर लयात्मकता है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"कनक कनक ... ... ही बौराइ ।।14।।"

शब्दार्थः कनक = सोना, धतूरा; मादकता = नशा; अधिकाइ = अधिक; बौराइ = पागल होना।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'भक्ति–नीति' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें सोने अर्थात् अधिक धन सम्पन्नता में होने वाले नशे की चर्चा की गई है।

व्याख्याः बिहारी कहते हैं कि सोने में धतूरे से सौ गुणी अधिक मादकता होती है। स्पष्ट है कि धतूरा खाने से मनुष्य पागल हो जाता है, किन्तु सोना अर्थात् अधिक धन सम्पत्ति पाते ही वह पागल हो जाता है।

विशेषः

1. अधिक सम्पन्नता में मानव मूल्यों का कम हो जाना दर्शाया गया है।
2. 'कनक–कनक' में यमक अलंकार है।
3. ब्रज भाषा का बोधगम्य रूप है।

4. सुन्दर लयात्मकता–गेयता है।

5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"स्वारथु सुकृत ... ... न मारि ।।15।।"

शब्दार्थः स्वारथु = स्वार्थ; सुकृत = पुण्य; पानि = हाथ; पच्छीनु = पक्षियों को।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी के 'भक्ति–नीति' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें नैतिक शिक्षा देते हुए किसी को कष्ट न देते हुए अच्छे कार्य करने की प्रेरणा दी गई है।

व्याख्याः बिहारी ने संकेत किया है कि हे बाज, तू दूसरे के हाथ में पड़कर पक्षियों को मत मारो। इससे न तो तुम्हारा कुछ लाभ होगा, न कोई पुण्य कार्य होगा, और तुम्हारा परिश्रम भी बेकार हो जाएगा। इसलिए यह कार्य छोड़ दो।

यहाँ दूसरा अर्थ निकलता है – कहा जाता है कि शाहजहाँ को खुश करने के लिए बिहारी के आश्रयदाता जयसिंह हिन्दुओं को कष्ट पहुंचा रहे थे। तब बिहारी ने उन्हें मना किया था कि इससे न तुम्हारा स्वार्थ सिद्ध होगा, न कोई पुण्य कार्य होगा और तुम्हारा परिश्रम भी बेकार हो जाएगा।

विशेषः

1. मूल्य–निर्धारक, संरक्षक तथ्य है।

2. अन्योक्ति का आकर्षक रूप है।

3. 'स्वारथु सुकृत', 'बिंहग–विचार', 'परायें, पानि परि' में अनुप्रास अलंकार है।

4. मुक्तक शैली का प्रयोग है।

5. ब्रज भाषा का सुन्दर प्रयोग।

"सीस मुकुट ... ... बिहारी लाल ।।16।।"

शब्दार्थः सीस = सिर; मुकुट = ताज; कटि = कमर; कर = हाथ; उर = गले में; माल = माला; बानक = वेश, स्वरुप; बिहारी लाल = कृष्ण।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'भक्ति–नीति' शीर्षक से ली गई है। इसमें अपने आराध्य के उपासना की चर्चा की गई है।

व्याख्याः बिहारी कहते हैं हे प्रभु आप का वह ह्रदय मेरे ह्रदय में बस गया जब आपके सिर पर मोर पंखों से सुशोभित ताज है, कमर में पीली धोती है, हाथ में वंशी है और गले में वनमाला पड़ी है। मेरा मन अन्य रूप की ओर आकर्षित ही नहीं होता है।

विशेषः

1. भक्ति–भावना का आकर्षक रूप है।

2. सुन्दर गेयता है।
3. 'कटि काछनी', 'मो मन' 'बंसी बिहारी' में यमक अलंकार है।
4. ब्रज भाषा का सरल रूप है।
5. मुक्तक शैली का उपयोगी प्रयोग है।

"दीरध साँस ... ... सु कुबूल ।।17।।"

शब्दार्थः दीरध साँस = लम्बी साँस, आह भरना; साईं हि = प्रभु को; दई = विधता; सु = वह; कुबूल = स्वीकार करो।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'भक्ति–नीति' शीर्षक से ली गई हैं। इसमे दुःखी व्यक्ति को दुःख से मुक्ति के उपाय के रूप में भक्ति करना का संकेत किया गया है।

व्याख्याः बिहारी ने मुसीबत में दुःखी होते मनुष्य को सहारा देते हुए लिखा हैं कि हे मनुष्य! दुःख आने पर परेशान होकर लम्बी–लम्बी आहें न भरें और सुख के आगमन में मस्त होकर प्रभु को मत भुलाओ। संकट मे आकर हे प्रभु! हे प्रभु कह कह कर मत दुःखी हो, ईश्वर ने जो भी समस्याएँ, कठिनाइयाँ और विषमताएँ और सफलताए और उत्कर्ष दिए हैं उसे स्वीकार कर कार्य करते रहो।

विशेषः

1. संकट में, सुख में समरस रहने का संकेत है।
2. 'दई–दई' में भाव विह्वल विशेष भाव के कारण वीप्सा अलंकार है।
3. मुक्तक शैली का अनुकूल प्रयोग है।
4. ब्रज भाषा का आकर्षक प्रयोग है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"नर की अरू ... ... ऊँचौ होइ ।।18।।"

शब्दार्थः नर = मनुष्य; अरू = और; नीर = पानी; जोइ = समझे; जेतो = जो; के = होकर; वे तो = वह तो।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'भक्ति–नीति' से ली गई हैं। इसमें मानव को विनम्रता से गुण सम्पन्नता और गुण सम्पन्नता से सफल होने की नैतिक शिक्षा दी गई है।

व्याख्याः बिहारी ने सफलताद्योतक विनम्रता के नैतिक मार्ग अपनाने की प्रेरणा देते हुए कहा है कि मनुष्य की और नल के पानी की गति समान ही होती है। ये दोनों जितने नीचे या विनम्र होकर चलते हैं वे उतने ही ऊँचे पहुंचते हैं। अर्थात् मनुष्य विनम्रता से गौरव प्राप्त करता है और नल को नीचा कर देने से पानी का दबाव बढ़ जाता है।

विशेषः

1. नैतिक शिक्षा का आकर्षक दोहा है।
2. विनम्रता मनुष्य की गरिमा का आधार है।
3. 'नल–नीर' में अनुप्रास अलंकार है।
4. ब्रज भाषा का बोधगम्य प्रयोग।
5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"बढ़त–बढ़त ... ... समूल कुम्हलाइ ।।19।।"

शब्दार्थः सलिलु = पानी; मन–सरोजु = मनरूपी कमल; बरू = वरन्; समूल = मूल सहित, पूरी तरह; कुम्हलाइ = मुरझाना, नष्ट होना।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'भक्ति–नीति' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें मनुष्य की इच्छाओं के विषय में कनिक बढ़ते जाने के तथ्य को रेखांकित किया गया है।

व्याख्याः बिहारी का कहना है कि सम्पत्ति की बुद्धि के साथ मनुष्य का मन बढ़ते–बढ़ते बहुत विस्तृत हो जाता है। इसके पश्चात जिस प्रकार पानी के घटने से कमल नहीं घटता है उसी प्रकार सम्पत्ति के घटने पर मन नहीं घटता है।

विशेषः

1. मानव–मन के विस्तार होने का आकर्षक चित्रण है।
2. 'सम्पत्ति–सलिल', 'मन–सरोज' में रूपक अलंकार है।
3. 'बढ़त–बढ़त', 'घटत–घटत' में पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार है।
4. मुक्तक काव्य रूप है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग है।

"कल लै ... ... गाहकु कौनु ।।20।।"

शब्दार्थः कर = हाथ; सराहि = प्रशंसा, बड़ाई; मौनु = चुप्पी; गँधी = इम का व्यापारी; अंध = मूर्ख; गवई = मूर्ख; गाहकु = ग्राहक।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'भक्ति–नीति' से लिया गया है। इसमें गुणी व्यक्ति का गुणहीन व्यक्तियों में सम्मान न पाने के संदर्भ को रेखांकित किया गया है।

व्याख्याः प्रथम अर्थ – बिहारी ने कहा है, हे गंधी अर्थात् इम बेचने वाले गाँव के गँवारों में तुम्हारे गुलाब के इम के पारखी नहीं हैं। एक बार सराहना करके चुप हो जाते हैं। अर्थात् इन्हें इम दिखाना व्यर्थ है।

द्वितीय अर्थ – कबीर ने कहा है कि हे विद्वान या गुणी व्यक्ति! तुम इन मूर्ख लोगों के सम्मुख अपनी उत्तमता का बखान क्यों कर रहे हो? ये गुणों के पारखी नहीं हैं। ये एक बार सराहना करके चुप हो जाते है।

विशेषः

1. नैतिक बात का सुन्दर उद्‌घाटन है।
2. 'सूँधि सराहि', गवई गाहुक' में अनुप्रास अलंकार है।
3. ब्रज भाषा का सुबोध रूप है।
4. मुक्तक काव्य का सुन्दर प्रयोग है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग है।

feyu fojg

"चितई ललचौहें ... ... छबीली छाँव ।।21।।"

शब्दार्थः चितई = देखकर; ललचौहें = ललचाई हुए; चखनु = नेत्र; डटिकर = अच्छी प्रकार; माँह = में; छुवाई = छू कर; छिनकु = क्षण भर; छबीली = सुन्दर; छाँव = परछाई।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'मिलन–विरह' से ली गई है। इसमें नायक द्वारा सुन्दरी नायिका के प्रेम–आकर्षण की चर्चा करता है।

व्याख्याः बिहारी ने लिखा है कि नायक के द्वारा नायिका के प्रेम–प्रकट करने के विषय में कहा गया है कि नायिका ने घूंघट के पर्दे के बीच से ललचाई नजरों से मुझे देखा और पूरी चतुरता से अपनी परछाई से मुझे छूती हुई चंचलता से निकल गई।

विशेषः

1. परछाई स्पर्श करा कर प्रेम प्रकट करने की आकर्षक पद्धति है।
2. 'छिनकु छबीली छाँह' में अनुप्रास अलंकार है।
3. मिलन का चित्ताकर्षक रूप है।
4. संयोग श्रृंगार का अनूठा चित्रण
5. मुक्त शैली की योजना है।
6. श्रृंगार रस का परिपाक है।

"मृव नरत ... ... सौं बात ।।22।।"

शब्दार्थः नरत = नकारना, मना करना; रीझत = प्रसन्न होना; खिझत = झुंझलाना; खिलत = प्रसन्न होना; मौन = भवन; सौं = सब।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'मिलन–विरह' से ली गई हैं। इसमें चतुर–नायिका और नायक की सांकेतिक भाषा में प्रेमवार्ता का चित्रण किया गया है।

व्याख्याः बिहारी दास लिखते हैं कि आँगन में भीड़ है और नायक आँखों की सांकेतिक भाषा में प्रेमवार्ता के लिए नायिका को आमंत्रित करता है नायिका इशारे से इन्कार करती है, नायक ऐसे मे खुश होता है, तो नायिका झुंझला उठती है। इसके साथ दोनों की आँखे मिलती हैं और दोनों प्रसन्न होते हैं इससे नायिका लज्जित होती है। इस प्रकार भरे आँगन में गुरुओं और स्वजनों के बीच प्रेमवार्ता हो जाती है।

विशेषः

1. सर्वाधिक भाव–मंगीर दोहा है।
2. शब्दों से कार्य–व्यापार (प्रेम–वार्ता) का आकर्षक चित्रण है।
3. अनुप्रास अलंकार का आकर्षक प्रयोग है।
4. श्रृंगार रस का मनभावन परिपाक है।
5. दोहा छन्द की योजना।

"कंज–नयनि .... नंद कुमार ।।23।।"

शब्दार्थः कंज = कमल; नयनि = आँख; मंजन = स्नान; ब्यौरति = साँवरती; बार = केश; कच = केश; चितवति = देखती है।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' कृत 'मिलन–विरह' से ली गई हैं। इसमें श्रृंगार करती नायिका का आकर्षक चित्रण है।

व्याख्याः बिहारी कहते हैं कि कोमलांगी नायिका स्नान करके अपने कमलवत नयनों में काजल लगा चुकी है। अब बैठी हुई अपनी उंगलियों को बालों के मध्य डाल कर उन्हें सँवारने में लगी हुई है, ऐसे में उसकी नजरें नायक कृष्ण पर लगी हुई हैं।

विशेषः

1. राधा (नायिका) के सौन्दर्य का चित्रण है।
2. राधा–कृष्ण के प्रेम की अभिव्यक्ति है।
3. श्रृंगार रस का सुन्दर परिपाक है।

4. मुक्तक काव्य रूप है।

5. दोहा छन्द प्रयोग है।

"बतरस लालच ... ... नरि जाय ।।24।।"

शब्दार्थः बतरस = बातों का आनन्द; लाल = नायक (श्रीकृष्ण), लुकाइ = छिपाया; सौंह = सौगंध; भौंहनि = भौंहों से; दैन = देने से; नरिजाय = नकारना।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' कृत 'मिलन–विरह' से ली गई हैं। इसमें प्रेम–वार्ता के आकर्षण से नायिका की मुरली चुराई गई है और संवाद होता है।

व्याख्याः बिहारी कहते हैं कि राधा ने प्रेमवार्ता के लिए नायक की मुरली चुरा ली और छुपा दिया है। कृष्ण को वंशी बहुत प्यारी है। वे जब मुरली माँगते हैं, तो राधा सौगन्ध के साथ कहती है मैंने मुरली नहीं छुपाई है, लेकिन उसकी भौंहें हँस देती है। नायक चोरी समझ जाता है। जब वह देने के लिए कहता है, तो वह नकार देती है।

विशेषः

1. नायिका–नायक की प्रेमलीला का चित्रण है।

2. 'लालच लाल' में अनुप्रास अलंकार है।

3. मिलन श्रृंगार–चित्रण है।

4. श्रृंगार रस का आकर्षक परिपाक है।

5. दोहा छन्द की योजना।

"नेह न नैनन ... ... प्यास बुझाय ।।25।।"

शब्दार्थः नेह = प्रेम; नैनन = आँखों; बलाइ = मुसीबत; नीर = आँसू; लऊ = फिर भी; बुझाइ = बुझती है।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' कृत 'मिलन–विरह' से ली गई हैं। नायिका ने अपनी विरह–वेदना में आँखों की स्थिति का चित्रण किया है।

व्याख्याः बिहारी लिखते हैं कि नायिका अपनी अंतरंग सखी से कहती है कि हे सखी! इस प्रेम का स्वरूप बहुत विचित्र है। आँखों के लिए संकट हो गया है। ये आँसुओं से लगातार भरी रहती है फिर भी उनकी प्यास बुझती ही नहीं, क्योंकि वे कृष्ण के दर्शन की प्यासी हैं।

विशेषः

1. राधा की विरह कथा का वर्णन है।

2. आँखों की अद्भुत स्थिति का चित्रण है।

3. 'नेहु न नैनन' में अनुप्रास अलंकार है।

4. श्रृंगार रस का परिपाक है।

5. मुक्तक काव्य का स्वरूप है।

"याकैं उर ... ... बात बुझाइ ।।26।।"

शब्दार्थः याकैं = उसके; उर = हृदय; लाइ = आग; पजरै = प्रज्वलित होती है या फैलती है; बात = चर्चा, वायु।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'मिलन–विरह' से ली गई हैं। इसमें दो सखियाँ नायिका की विषम विरह अवस्था की चर्चा कर रही हैं।

व्याख्याः नायिका की एक सखी दूसरी सखी से कहती है कि उसके हृदय में कुछ और ही प्रकार की विरह अग्नि जल रही है, जो शीतल गुलाब जल छिड़कने से और ही धधक उठती है। वह प्रियतम के दर्शन रूपी हवा के लगने से ही शांत हो सकती है।

विशेषः

1. विरह की व्यथा का आकर्षक चित्रण है।

2. श्रृंगार रस का परिपाक है।

3. ब्रज भाषा का बोधगम्य रूप है।

4. मुक्तक काव्य का रूप है।

5. दोहा छन्द की योजना।

"कौन मुने ... ... बदरा बदराय ।।27।।"

शब्दार्थः कासौं = किससे; सुरति = रूप; बिसारी = भुला दी; नाह = नाथ (श्रीकृष्ण); बदावदी = शर्त के साथ।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'मिलन–विरह' शीर्षक से ली गई हैं इसमें नायिका की विरह वेदना का मार्मिक चित्रण किया गया है।

व्याख्याः विरहिणी नायिका अपनी सखी से अपनी विरह व्यथा के विषय में कहती है कि मेरी विरह को सुनने वाला कोई नहीं है। मैं किससे कहूँ यह समझ में नहीं आता है। मेरे दुःख दर्द में सहयोगी मेरे प्रियतम ने मुझे भुला दिया है। ऐसे में ये बादल मेरे पीछे पड़े हैं और घिर–घिर कर मेरा प्राण लेने पर उतारूँ है।

विशेषः

1. विरह वेदना का चित्रण है।

2. प्रकृति का उद्दीपन रूप है।
3. ब्रज भाषा का आकर्षक रूप है।
4. 'कासौं कहौं' और 'बदरा बदराह' में अनुप्रास अलंकार है।
5. आकर्षक लयात्मकता और गेयता है।

"कहा कहौं ... ... भई असीस ।।28।।"

शब्दार्थः कहा कहौं = कैसे कहूँ; बाकी = उसकी; प्रानुन = प्राणों; जरिबौ = जलना, मरना; मरिबौ = मर जाना; असीस = आशीर्वाद।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'मिलन–विरह' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें नायिका की विरह–दशा का चित्रण किया गया है। नायिका की एक सखी नायक (श्रीकृष्ण) से नायिका की दयनीय दशा का विवेचन करती हुई कहती है–

व्याख्याः हे कृष्ण! मैं नायिका की विरह दशा का क्या वर्णन करूँ आप तो उसके प्राणों के सहारे हैं। उसे विरह में जलता हुआ देख कर मुझे ऐसा लगता है कि उसका मरना भी अच्छा होगा, क्योंकि मृत्यु के पश्चात उसे विरह से मुक्ति मिल जाएगी।

विशेषः

1. विरह वेदना का मार्मिक चित्रण है।
2. संवादात्मक शैली का प्रयोग है।
3. 'कहा कहौं', 'ज्वाल जरिबो' में अनुप्रास अलंकार है।
4. ब्रज भाषा का बोधगम्य रूप है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"मरनु भलौ ... ... दुखु होह ।।29।।"

शब्दार्थः मरनु = मरना; भलौ = अच्छा; निहचय = निश्चय; दुहुँ = दोनों।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'मिलन–विरह' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें नायिका की विरह–व्यथा का चित्रण है। नायिका ने विरह में जल कर मौत को गले लगा लिया है। तब नायक दुखी है और नायिका की सखियाँ उसे समझा रही हैं–

व्याख्याः नायिका की सखियाँ नायक से कह रही है कि नायिका का विरह–व्यथा में जल कर मरना अच्छा ही रहा है। मरने से एक दुःख से मुक्ति मिल जाती है जबकि विरह में दोनों दुःखों को झेलना पड़ता है। इसे अच्छी प्रकार से समझ कर आपको दुःखी नहीं होना चाहिए।

विशेषः

1. विरह–व्यथा का मार्मिक चित्रण है।

2. संवादात्मक शैली का प्रयोग है।

3. ब्रज भाषा का अनुकूल प्रयोग है।

4. सुन्दर गेयता है।

5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"औंधाई सीसी ... ... न गात ।।30।।"

शब्दार्थः औंधाई = उलटी; लरिव = देखकर; बिललात = बिलखना; बिच = बीच में; गौ = गया।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'मिलन–विरह' शीर्षक से ली गई है इसमें नायिका के विरह तप्त शरीर का चित्रांकन किया गया है। नायिका के विरह–तप्त शरीर की चर्चा करती हुई सखियाँ नायक से कहती हैं–

व्याख्याः विरह में तप्त और लगातार बिलखते हुए देखकर उसकी विरह तप्तता को शांत करने के लिए गुलाब जल की शीशी उसके ऊपर पलट दी गई, किन्तु गुलाब जल की एक बूँद भी उसके शरीर को छू नहीं पाई बीच में ही भाप बन कर उड गया।

विशेषः

1. नायिका के विरह तप्त शरीर का मार्मिक चित्रण है।

2. पूरे दोहे में अतिशयोक्ति अलंकार है।

3. 'बिरह बरनि बिल्लात' में अनुप्रास अलंकार है।

4. शृंगार रस का आकर्षक परिपाक है।

5. ब्रज भाषा का आकर्षक परिपाक है।

"इति आवत ... ... उसासनु साथ ।।31।।"

शब्दार्थः इति = इधर; उत = उधर; छसातक = छः सात; हिडोले = हिंडोला; उसासनु = उच्छ्वास।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'मिलन–विरह' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें नायिका की विरह–व्यथा में अत्यन्त दुबली हो जाने का चित्रण किया गया है। सखी के द्वारा नायिका की विचित्र हुई स्थिति का चित्रण किया जा रहा है।

व्याख्याः नायिका विरह में इतनी दुबली हो गई है कि साँस छोंड़ने पर हवा के प्रवाह में छः सात हाथ पीछे हो जाती है और साँस लेने पर छः सात हाथ खिंच कर आगे चली जाती है। इस प्रकार लम्बी–लम्बी साँसों में हिंडोले पर चढ़ी हुई सी आगे–पीछे आती जाती है।

विशेषः

1. विरह–व्यथा का प्रबल प्रभाव दर्शाया गया है।

2. पूरे दोहे में अतिशयोक्ति अलंकार है।
3. ब्रज भाषा का बोधगम्य रूप है।
4. मुक्तक काव्य रूप है।
5. प्रसाद एवं माधुर्य गुण सम्पन्न शैली का स्वरूप है।

"इन दुखिया ... ... अनदेखैं अकुलांहि ।।32।।"

शब्दार्थः अँखियानु = आँखों; सिरज्योई = बनाया ही; अनदेखे = बिना देखे; अकुलाँहि = व्याकुल होना।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'मिलन–विरह' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें नायिका के मिलन और विरह में प्रेम–प्रवाह का चित्रण किया गया है। नायिका अपनी सखी से इस विषय में कहती है।

व्याख्याः हे सखी! मेरी इन आँखों के लिए विधाता ने सुख बनाया ही नहीं। जब प्रियतम (श्रीकृष्ण) सामने होते है लज्जावश उनकी ओर देख नहीं पाती हैं और जब वे दूर रहते हैं तो उन्हें देखने के लिए व्याकुल रहती है। इस प्रकार इन्हें दुःख ही दुख झेलना है।

विशेषः

1. विरह–वेदना का कष्टप्रद स्वरूप है।
2. 'सुख सिरज्यौंई' में अनुप्रास अलंकार है।
3. ब्रज भाषा का सरल–बोधगम्य रूप है।
4. सूक्ष्म भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग।

çe& l kUn;l

"कहा भयौ ... ... उड़ायक हाथ ।।33।।"

शब्दार्थः कहा = क्या; भयौ = हुआ; बीछुरे = बिछुड़ गए; मो = मेरा; मनु = मन; तोमन = तुम्हारा मन; गुड़ी = पतंग; उड़ायक = उड़ाने वाला।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'प्रेम–सौन्दर्य' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें नायिका–नायक के मध्य प्रगाढ़ प्रेम का चित्रण किया गया है। नायिका ने अपने प्रियतम को अपना संदेश लिख कर भेजा है।

व्याख्याः नायिका कहती है कि हम एक दूसरे से बिछुड़ गए हैं, तो कोई बात नहीं, क्योंकि मेरा मन तो तुम्हारे ही पास है। मैं तो उस पतंग के ही समान हूँ, जो कितनी भी दूर हो जाए, किन्तु वह उड़ाने वाले के ही हाथ में होती है। वह डोरी से उड़ाता रहता है।

विशेषः

1. प्रेम का दृढ़ बन्धन–चित्रण है।
2. श्रृंगार रस का परिपाक है।
3. 'मो मनु' अनुप्रास अलंकार है।
4. ब्रज भाषा का बोधगम्य रूप है।
5. गेयता का सुन्दर स्वरूप है।

"कागद पर ... ... की बात ।।34।।"

शब्दार्थः सँदेसु = संदेश; लजात = लज्जित होना; कहिहैं = कहेगा।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'प्रेम सौन्दर्य' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें भारतीय परंपरा से नायिका और नायक की प्रेमाभिव्यक्ति का संदर्भ प्रस्तुत किया गया है। सवासी नायको नायिका संकेत कर रही है।

व्याख्याः प्रेम के विविध भावों को कागज पर लिख पाना संभव नहीं (क्योंकि आँखों के आंसू भिगा देते हैं और विरह तप्त हाथ कागज को जला देते हैं) यदि किसी के द्वारा अपना संदेश कह कर भेजू तो लज्जा आती है। इसलिए तुम अपने दिल से पूछ लो मेरे दिल की बात बता देंगे क्योंकि दोनों का दिल तो एक हो गया है।

विशेषः

1. भारतीय परंपरा का आदर्श प्रेम–चित्रण।
2. विरह का मार्मिक चित्रण है।
3. श्रृंगार रस का परिपाक है।
4. ब्रज भाषा का सुन्दर प्रयोग।
5. सुन्दर गेयता और लयात्मकता है।

"दृग उरझत ... ... यह रीति ।।35।।"

शब्दार्थः दृग = आँख; उरझत = उलझते; कुटुम = परिवार; परति = पड़ती है; दई = विधाता; रीति = ढंग।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'प्रेम–सौन्दर्य' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें प्रेम करने वाले और प्रेम के विषय में सामाजिक दृष्टि का परिचय कराया गया है।

व्याख्याः बिहारी कहते हैं कि जब दो प्राणियों की आँखें मिलती हैं, तो दोनों में प्रेम पल्लवित होता है, तो दोनों परिवारों का सम्बन्ध खराब हो जाता है, इसे देख कर चतुर व्यक्ति सह प्रेमभाव का अनुभव

करते है और दुष्ट व्यक्तियों के हृदय में ईर्ष्या उत्पन्न हो जाती है। यह प्रेम–प्रक्रिया की नई दिशाएँ हैं।

विशेषः

1. प्रेम के विषय की स्थितियों का चित्रण है।
2. 'चतुर चित' में अनुप्रास अलंकार है।
3. 'दृग उरझना' और दुर्जन हिये गाँठ पड़ना' मुहावरों का आकर्षक प्रयोग है।
4. ब्रज भाषा का अनुकूल प्रयोग है।
5. माधुर्य और प्रसाद गुण–सम्पन्न शैली का प्रयोग।

"जुवति जोन्ह ... ... सँग जाइ ।।36।।"

शब्दार्थः जुवति = युवती; जोन्ह = ज्योत्स्ना, चाँदनी; लखाइ = दिखाई देना; सौंधे = सुगन्ध; डारैं = सहारे; अली–सखी = भौंरा।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'प्रेम–सौन्दर्य' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें नायिका के गौरांग वर्ण की सुन्दरता की प्रेरक चर्चा की गई है। सखियाँ नायिका की सुन्दरता का वर्णन करती हुई कहती हैं–

व्याख्याः हे सखी! नायिका इतनी गोरी है कि चाँदनी रात की चाँदनी में ऐसे मिल गई है कि दिखाई ही नहीं दे रही है। उसकी सखियाँ साथ चलती हुई देख नहीं पा रही है। उसकी सखियाँ उसके अंगों से निकलने वाली सुगंध के सहारे पीछे–पीछे चली जा रही हैं।

विशेषः

1. परम सुन्दरी गोरे रंग की नायिका का चित्रण है।
2. 'जुबति जोन्ह' में अनुप्रास अलंकार है।
3. अतिशयोक्ति अलंकार है।
4. सुन्दर ब्रज भाषा का स्वरूप है।
5. आकर्षक गेयता है।

"झीने पर ... ... सपल्लव डार ।।37।।"

शब्दार्थः झीने = पतले, बारीक; झुलमुली = झलकती; झलकति = झलकती है; ओप = चमक; सुरतरू = कल्पवृक्ष; लसति = सुशोभित होती है; डार = डाल।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'प्रेम–सौन्दर्य' से ली गई हैं। इसमें नायिका के शारीरिक सौन्दर्य का चित्रांकन किया गया है।

व्याख्याः बिहारी ने लिखा है कि नायिका के सौन्दर्य के विषय में नायक सोच रहा है कि हल्के बारीक वस्त्रों के मध्य से नायिका के शरीर का आकर्षक सौन्दर्य मन में हिलोरे पैदा करता है। उसे देख कर ऐसा लगता है मानो कल्पवृक्ष की पल्लवयुक्त हरी भरी डाली मन रूप समुद्र में लहरा रही है।

विशेषः

1. नायिका के सौन्दर्य का मनभावन चित्रण है।
2. "सुरता की मनु ... " में उत्प्रेक्षा अलंकार है।
3. 'झुलमुली झलकति' में अनुप्रास अलंकार है।
4. ब्रज भाषा का बोधगम्य रूप है।
5. भाषा में मधुर ध्वन्यात्मकता है।
6. दोहा छन्द का प्रयोग।

"तो पर वारौं .... उरबसी–समान ।।38।।"

शब्दार्थः वारौं = न्योछावर करूँ; उरबसी = उर्वशी; सुजान = चातुर्यपूर्ण, चतुर; कैं = के; उर = हृदय।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'पद्य–शिखर' के बिहारी कृत 'प्रेम–सौन्दर्य' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें राधा के परम सौन्दर्य की बहुविधि चर्चा की गई है। मानिनी राधा जिद कर बैठी है। ऐसे में उसकी सखी उसे समझा कर कहती है कि तुम्हारे परम सौन्दर्य को कृष्ण भुला ही नहीं सकते हैं।

व्याख्याः सखी राधा को समझाती हुई कहती है, हे राधा! तुम्हारे सौन्दर्य पर उर्वशी सी अप्सराओं के सौन्दर्य को भी न्योछावर कर दूँ। तुम तो चतुर हो, सोचो तुम तो श्री कृष्ण के हृदय में आभूषण के रूप में स्थान पा चुकी हो, इस कारण वे तुम्हें छोड़ कर किसी की ओर आकर्षित ही नहीं हो सकते हैं।

विशेषः

1. इसमें राधा के परम सौन्दर्य का चित्रण है।
2. उरवसी (उर्वशी) शब्द–प्रयोग में यमक अलंकार है।
3. उरबसी–समान में समस्त पद रचना है।
4. ब्रज भाषा का सरल रूप है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"पाइ महावर ... ... भीजत जाइ ।।39।।"

शब्दार्थः पाइ = पैर; महावर = स्त्रियों के पैरों में लगाया जाने वाला लाल–गुलाबी रंग; भीजत = रगड़ना।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'प्रेम–सौंदर्य' से ली गई हैं। इसमें नायिका के सौन्दर्य की चर्चा की गई है। नायिका रक्ति वर्ण बहुत आकर्षक है। नाइन पैरों में रंग लगाने के लिए भ्रमवश पहले लगाया रंग समझ कर उसे छुड़ाने में लगी है। वह उसकी एड़ी का स्वाभाविक रंग है। सखियाँ इस विषय की आपस में चर्चा कर रही हैं–

व्याख्याः नायिका के पैरों में महावर (रंग) लगाने के लिए नाइन उपक्रम कर रही है। वह पैरों के रंक्तिम रंग को पहले लगाई महावर समझ कर उसे छुड़ाने के लिए बार–बार रगड़ रही है, किन्तु वह छूटे कैसे वह तो पैरों का स्वाभाविक रंग है।

विशेषः

1. नायिका का सौन्दर्य–चित्रण है।
2. नायिका के शरीर का रक्तिम स्वरूप का दिव्य–चित्रण है।
3. 'फिर–फिर ... जाइ' भ्रांतिमान अलंकार है।
4. 'फिर–फिर' में पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार है।
5. ब्रज भाषा का सरल रूप है।
6. दोहा छन्द का प्रयोग।

"रंग सिंगार ... ... मंजनु नैन ।।40।।"

शब्दार्थः सिंगार = श्रृंगार; मंजनु = सुन्दर बनाना; कंजनु = कमलों को; भंजनु = हराया; अंजनु = अंजन; रंजन = सुखद लगना; गंजनु = तिरस्कार; खंजनु = विशेष पक्षी।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'प्रेम–सौन्दर्य' से ली गई हैं। इनमें नायिका के सुन्दर और चंचल आँखों का मन–भावन चित्रण किया गया है।

व्याख्याः नायिका की आँखों की प्रशंसा करती हुई सखी कहती है कि नायिका की आँखें श्रृंगार रस से पूर्ण रूपेण सुसज्जित हैं। इसके आगे कमल की सुन्दरता फीकी लगती है। इनके आँखों में अंजन भी नहीं लगा तब भी ये आँखें खंजन की सुन्दर आँखों को मात दे रही है। इस प्रकार नायिका की आँखों की सुन्दरता अद्वितीय है।

विशेषः

1. नायिका की आँखों की अनुपम सुन्दरता का चित्रण है।

2. श्रृंगार रस का सुन्दर परिपाक है।
3. दोहे में सुन्दर ध्वन्यात्मकता है।
4. अनूठा बिम्ब–विधान प्रस्तुत होता है।
5. सरल सुबोध ब्रज भाषा है।
6. दोहा छन्द की योजना।

"सायक–सम .... जलजात लजात ।।41।।"

शब्दार्थः सायक = सान्ध्य समय; मायक = मायावी; त्रिविध रंग = तीन (सफेद, लाल, काला) रंग; झखौ = मछली; बिलखि = रोकर; दुरिजाति = छिप जाती है; जलजात = कमल।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'प्रेम–सौन्दर्य' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें नायिका के सौन्दर्य का चित्रांकन किया गया है। एक सखी नायिका के नेत्रों के सौन्दर्य की चर्चा करती हुए सामने आती है।

व्याख्याः उसके नेत्रों का सौन्दर्य सांध्यकालीन सौन्दर्य की भाँति मायावी हैं। जिस प्रकार सांध्य बेला के प्रकाश में सफेद, लाल और काले तीनों रंगों का आभास होता है, उसी प्रकार इनकी आखें तीनों रंगों से रंगी दिखाई देती हैं। पानी की मछली इनकी आँखों की सुन्दरता को देख कर छिप जाती है और कमल भी इसके सौन्दर्य के सम्मुख लज्जित होता है।

विशेषः

1. आकर्षक सौन्दर्य–चित्रण है।
2. 'सायक सम मायक नयन' में उपमा अलंकार है।
3. दुरि जाना, 'लखि लजात' मुहावरों का सुन्दर प्रयोग है।
4. दूसरी पंक्ति में प्रतीप अलंकार है।
5. ब्रज भाषा का सरल रूप है।
6. दोहा छन्द की योजना।

"अंग–अंग ... ... उज्यारौ गेह ।।42।।"

शब्दार्थः नग = आभूषण में जड़े रत्न; दीपशिखा = दीपक की लव; बढ़ाएँ हूँ = बुझा देने पर भी; बड़ो = बहुत; उज्यारौ = उजाला; गेह = गृह, घर।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'प्रेम–सौन्दर्य' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें नायिका के सौन्दर्य की चर्चा की गई है। यह सौन्दर्य चित्रण नायक के सामने नायिका की सखी द्वारा किया जा रहा है।

व्याख्या: नायिका के गहनों में लगे हुए रत्नों की जगमगाहट से उसका शरीर दीपक की लव के समान आभा प्रकट करता रहता है। इस प्रकार उनके घर में दीपक बुझा देने के बाद भी पूरी जगमगाहट रहती है।

विशेषः

1. नायिका के शारीरिक सौन्दर्य का चमत्कारिक चित्रण है।
2. 'दीपसिखा सी देह' में उपमा अलंकार है।
3. अंग–अंग में पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार है।
4. 'जात जल' में अनुप्रास अलंकार है।
5. ब्रज भाषा का सुबोध रूप है।

"छुटी न सिसुता ... ... ताफता–रँग ।।43।।"

शब्दार्थ: सिसुता = शैशव; ललक्यौ = प्रकट होने लगा; जोबनु = यौवन; दीपति = चमक; दुहून = दीनों; ताफता = विशेष प्रकार के रेशम का रंग।

संदर्भ–प्रसंग: प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'प्रेम–सौन्दर्य' से ली गई हैं। इसमें नायिका के यौवन की देहरी पर कदम रखने वाली वयः संधि उम्र का वर्णन किया गया है। सखी नायिका का सौन्दर्य नायक के समक्ष प्रस्तुत कर रही है।

व्याख्या: नायिका के बचपन के दिन बीत रहे हैं और यौवन की झलक आने लगी है। इस प्रकार वह यौवन की देहरी पर कदम रख रही है और बचपन का भी भाव है। बचपन और यौवन के संधिकाल में उसका शरीर दो रंगों के ताने बाने से बने ताफता रंग के रेशमी कपड़े के समान 'धूपछाहीं' आभा से आकर्षित कर रहा है।

विशेषः

1. इसमें वयः संधि नायिका के सौन्दर्य का आकर्षक चित्रण है।
2. 'दिपति ताफता रंग' में उपमा अलंकार है।
3. ब्रज भाषा का बोधगम्य रूप है।
4. 'दीपति देह दुहून' में अनुप्रास अलंकार है।
5. गेयता और लयात्मकता का आकर्षक रूप है।

"पत्रा हीं तिथि ... ... ओप उजास ।।44।।"

शब्दार्थ: पत्रा = पंचांग; वा = उसके; चहुँ पास = चारों ओर; पून्यौई = पूर्णिमा; आनन = मुख; ओप = चमक; उजास = प्रकाश।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'प्रेम–सौन्दर्य' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें नायिका की मुखाकृति की अपूर्व आभा का मनोहारी चित्रण सखी के द्वारा नायक के सम्मुख किया जा रहा है।

व्याख्याः नायिका के मुख की आभा की जगमगाहट से उसके घर के आस–पास ऐसा प्रकाश फैला रहता है कि लगता है पूर्णमासी ही है। तिथियों का ज्ञान केवल पंचांग देख कर ही होता है। इस प्रकार नायिका के मुख की आभा चांद के समान हो गई है।

विशेषः

1. मुख–सौन्दर्य का चमत्कारिक चित्रण है।
2. 'आनन ओप' में अनुप्रास अलंकार है।
3. अतिशयोक्ति अलंकार है।
4. सरल सुबोध ब्रज भाषा का प्रयोग है।
5. दोहा छन्द की योजना।

"लिखनि बैठि ... ... चितेरे कूर ।।45।।"

शब्दार्थः जाकी = जिसकी; सबी = छवि; गरबगरूर = अत्यधिक घमंड; केते = कितने; चितेरे = चित्रकार; कूर = असफल।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक के 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'प्रेम–सौन्दर्य' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें नायिका के सौन्दर्य के अनूठे रूप का चित्रण सखी के द्वारा नायक के समक्ष किया जा रहा है।

व्याख्याः नायिका का चित्र बनाने के लिए अनेक चित्रकार बहुत ही घमण्ड से बैठे किन्तु कोई भी चित्रकार चित्र खीचने में सफल नहीं हो पाया। क्योंकि नायिका के सौन्दर्य में प्रतिपल वृद्धि होती रहती है इसलिए चित्रकार असफल होते रहे है। ऐसा सुन्दर स्वरूप नायिका का है।

विशेषः

1. इसमें नायिका के विकसित यौवन का आकर्षक चित्रण है।
2. 'गहि–गहि' में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।
3. अनूठी व्यंजना शक्ति का उपयोग है।
4. श्रृंगार रस का आकर्षक परिपाक है।

5. सूक्ष्म भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति है।

6. दोहा छन्द की योजना।

"सोहत ओढ़ैं ... ... परयौ प्रभात ।।46।।"

शब्दार्थः सोहत = सुशोभित; पीतु = पीत, पीला; पटु = पट, वस्त्र; सलोने = सुन्दर, आकर्षक; सैल = पर्वत; आतप = धूप।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'प्रेम–सौन्दर्य' से ली गई हैं। इसमें राधा अपनी सखियों से कृष्ण के अनूठे सौन्दर्य की चर्चा कर रही है।

व्याख्याः हे सखी, श्री कृष्ण आकर्षक सांवले शरीर पर पीले वस्त्र ऐसे सुशोभित हो रहे हैं, मानो नील मणि पर्वत पर प्रातः कालीन सूर्य की किरणें पड़ रही हों और आकर्षक दृश्य अभर रहा हों।

विशेषः

1. कृष्ण सौन्दर्य का आकर्षक चित्रण है।

2. "मनो नीलमणि सैल ... " में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

3. 'पीतु पर', 'स्याम सलोनैं' में अनुप्रास अलंकार है।

4. ब्रज भाषा का आकर्षक रूप है।

5. दोहा छन्द की योजना।

çÑfr&fp=

"बैठि रही ... ... चाहति छाँह ।।47।।"

शब्दार्थः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'प्रकृति–चित्र' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें प्रकृति में जेष्ठ की तपती दोपहरी का प्रभावी चित्रण किया है।

व्याख्याः जेठ मास की दोपहरी में सभी प्राणी गर्मी से परेशान है छाया भी गर्मी से बचने के लिए घने जंगलों में और घर में आश्रय ढूढ़ रही है। इस प्रकार गर्मी में छाया परेशान हो कर छाया ढूँढ़ रही है।

विशेषः

1. ग्रीष्म ऋतु की तप्त दोपहरी का प्रभावी चित्र है।

2. 'सदन–तन' में रूपक अलंकार है।
3. 'देखि दुपहरी' में अनुप्रास अलंकार है।
4. सूक्ष्म भाव की सजीव प्रस्तुति है।
5. दोहा छंद की योजना।

"रनित भृंग–घंरावली .... कुंज समीरू ।।48।।"

शब्दार्थः रनित = गूँजते हुए; भृंग = भ्रमर; आवतु = आती है; कुंजर = हाथी; समीरू = हवा।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'प्रकृति–चित्र' से ली गई हैं। इसमें प्रकृति में मन्द–मन्द बहती बसंत की हवा का सुन्दर चित्रण किया गया है।

व्याख्याः बसंत ऋतु में भँवरों की गूंज घंटावली की भाँति गूंज रही है, लताओं से मकरन्द के सुभमित कणों के रूप में ऐसा लगता है कि मदमस्त हाथी मंद–मंद गति से चला आ रहा है। इस प्रकार मंद–मंद गति, मधुर ध्वनि और सुरभि के साथ हवा चल रही है।

विशेषः

1. बसंत ऋतु की शीतल वायु का मोहक चित्रांकन है।
2. हवा का मानवीकरण किया गया है।
3. ब्रज भाषा का सरल आकर्षक प्रयोग है।
4. बसंत की हवा को हाथी के रूप में प्रस्तुति से रूपक अलंकार है।
5. 'मंद–मंद' में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।
6. 'कुंजस कुंज' में अनुप्रास अलंकार है।
7. दोह छन्द की योजना।

"कहलाने एकत ... ... दाध–निदाध ।।49।।"

शब्दार्थः एकत = एक साथ; अहि = साँप; मयूर = मोर; बाघ = शेर; दीरध दाध = भयंकर गर्मी; निदाध = गर्मी का मौसम।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' कृत 'प्रकृति–चित्र' से ली गई हैं। इसमें ग्रीष्म ऋतु की गर्मी से वन के प्राणियों के लिए तपोवन बन जाने का दृश्य प्रस्तुत किया गया है।

व्याख्याः ग्रीष्म के तपते वातावरण में समग्र पृथ्वी तपोवन सी बन गई है। इसीलिए एक दूसरे के भयंकर शत्रु साँप–मोर, हिरन और बाघ आदि सभी एक साथ रहने लग गये है। अर्थात् भयंकर गर्मी में तपकर शत्रुता भूल गए हैं।

विशेषः

1. ग्रीष्म ऋतु का व्यंजनात्मक चित्रण है।
2. 'मयूर मृग' और 'दीरध दाध' में अनुप्रास अलंकार है।
3. सुन्दर गेयता और लयात्मकता है।
4. आकर्षक बिम्ब–विधान है।
5. दोहा छन्द की योजना।

"सधन कुंज ... ... जमुना के तीर ।।50।।"

शब्दार्थः सधन = घने; सुरभि = सुगंधित; समीर = हवा; अजौ = अब भी; उहि = उस।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'प्रकृति–चित्र' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें यमुना के तीर की हवा में कृष्ण की स्मृति का मनमोहन चित्रांकन है।

व्याख्याः हे सखी! उस यमुना के किनारे की धनी लताओं के झुरमुट की शीतल और सुगंधित हवा आज भी उस दिन की स्मृतियाँ ताजी कर देती हैं जब कृष्ण के साथ विचरण करती थी।

विशेषः

1. यमुना तक का मनमोहक चित्रण है।
2. कृष्ण की मधुर स्मृति का चित्रांकन है।
3. राधा–कृष्ण प्रेम की अभिव्यक्ति है।
4. 'सुखद सीतल सुरभि समीर' में वृत्यानुप्रास अलंकार का सुन्दर प्रयोग।

5. माधुर्य और प्रसाद गुण सम्पन्न शैली का स्वरुप है।
6. आकर्षक अभिव्यंजना है।
7. सुबोध सरल ब्रज भाषा का रूप।

2.

बिहारी श्रृंगार के अनुपम चितेरे

रस सिद्ध कवि बिहारी मुलतः रस के कवि है। श्रृंगार, रस, सौंदर्य एवम् यौवन बिहारी के काव्यमानस में अपनी पूर्णता से व्यक्त तरंगित हो रहे हैं। काव्य का लक्ष्य आनंद प्राप्त कराना है। श्रृंगार रस का स्थायी भाव रति अर्थात् प्रेम है। प्रेम का क्षेत्र सभी मनोविकारों में व्यापकतम है। प्रेम मानव में एक विश्व जनीन रागात्मकता का संचार करता है। श्रृंगार के दो पक्ष हैं–

(क) संयोग

(ख) वियोग

बिहारी ने इन दोनों पक्षों का जैसा लालित्यपूर्ण एवम् प्रभावक चित्रण किया है, वैसा अन्यत्र किसी ने किया नहीं है।

(क) संयोगः बिहारी के संयोग वर्णन की सामान्यतः चार विशेषताएँ हैं–

1. रूप वर्णन
2. प्रेम व्यापार
3. नायिका–भेद कथन
4. अनुभाव।

:i o.kZu

सुंदरता मूलतः वस्तुमूलक ही है और वह देखने वाले को अपने चरमकोटि के रूप और आकार से आकृष्ट करती है। बिहारी ने समस्त अंगों में नेत्र रूप, आकार, चंचलता, सज्जा, विशिष्ट स्थिति व भावव्यंजकता के कारण सर्वाधिक महत्व रखते है। किसी नवयौवना के श्रृंगार भावना में निमण्जित प्रफुल्ल एवम् विशाल नेत्रों का चित्र अत्यन्त आकर्षक है–

रस सिंगार मज्जन किये, कंजन मंजन दैन।
अंजन रंजन हू बिना, खंजन गंजन नैन।।

इसी तरह कवि ने केश, कपोल, नासिका, ओठ, कुच, नाभि आदि के सुंदर प्रस्तुत किए है। नायिका के इस नखशिख वर्णन में बिहारी की दृष्टि केवल बाह्य सौंदर्य पर ही नहीं रही है, वरन् उसके मानसिक तीव्र प्रभाव को भी उन्होंने व्यंजित किया। स्वयं बिहारी ने कहा है–

'तिखनि बैठि जाकी छवि, गहि गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के, चतुर चितेरे क्रूर।।'

çe0;kikj

रूपमय चैतन्य आलम्बन दृष्टा के मन में प्रेम को जागृत करता है। प्रेम के उदय, विकास और चरम का बिहारी ने सप्राण वर्णन किया है। नायिका के तीक्ष्ण व विशाल नेत्रों ने नायक को मंत्र मुग्ध कर दिया है। वह अपनी मन स्थिति व्यक्त करता है–

'अनियारे दीरघ दृगनु। किती न तरुनी समान।
वह चितवन और कछु, जिहिं बस होत सुजान।।'

कटाक्ष आदि से प्रेम की तीव्रता बढ़ जाती है। प्रेमी के विह्वल मन का चित्र प्रस्तुत है–

'द्रगनु लगत, बेधत हिमहिं, विमल करत अंग आन।
ए तेरे सब तै विषम, ईछन तीछन बान।।'

प्रेम की चरम अवस्था में प्रिय–प्रिया में अभेदत्व स्थापित हो जाता है। तब वे एक–दूसरे से एक क्षण के लिए भी पृथ्क होना नहीं चाहते। वे नरक की भी चिंता नहीं करते।

'प्रिय के ध्यान गरी गही रही वही है नारि।
आवु आवु ही आरसी लखि, रीझत रीझवारी।।'

इसी प्रकार आंख मिचौनी, जलक्रीडा, प्रिय–प्रिया का मिलन, स्वभाव वर्णन, हास परिहास द्वारा प्रेम के मधुर व रंगीन चित्र प्रस्तुत किए हैं।

ukf;dk&Hksn dFku

नायिका भेद कथन द्वारा श्रृंगार रस के संयोग पक्ष के उद्घाटन एवम् पोषण में अधिक सहायता मिलती है। नायिका भेद अवस्था रूचि, लज्जा आदि के आधार पर किया जाता है। प्रेम के आधार पर नायिकाओं के तीन भेद किए गए है–

- मुग्धा
- मध्या
- प्रौढ़ा
- **मुग्धाः** मुग्धा में प्रेम का अंकुरण होता है। वह लजाती हुई रसभरी बड़ी–बड़ी रतनारी आँखों से प्रिय के प्राणों को मीठा बना देती है–

औरे ओप कनी निक मु, गनी धनी सरताज।

मनोधनी के नेह की, बनी धनी पर लाज।

नवयौवना संचारिता एवम् लज्जाशीला किशोरी ही मुग्ध है। इन लक्षणों को इस दोहे में स्पष्ट किया गया है–

भावुक उमरोहों भयौ कछुक परमौ भरूआइ।

सीप हरा के मिसहियौ, निसदिन हेरत नाइ।।

- **मध्या:** मध्या नायिका वह है जिसमें लज्जा व काम की मात्रा समान होती है–

  'पतिरति की बगतियाँ कही, सखी लखी मुसकाई।

  कै कै सब टलाटली, अभी चली सुख पाइ।।'

- **प्रौढा:** प्रौढा नायिका में लज्जा कम तथा काम अधिक होता है। वह रति कला में अत्यंत दक्ष होती है–

  'विहंसि बुलाई, बिलोकि उत, प्रोढ तिया रस धूमि।

  पुलक पसिजति पूत को, पिय चूम्यौ मुहुं चूमि।।'

4. **अनुभाव:** शृंगार रस में अनुभाव, हाव आदि से रस में प्रेषणीयता बिंबात्मकता स्पष्टता और विश्वजनीनता के साथ सजीवता का संचार होता है। आश्रयगत आंशिक चेष्टायें अनुभाव है और आलम्बन की काममूलक आंशिक चेष्टाएं हाव कहलाती है। अनुभाव चार प्रकार के होते हैं– कायिक, वाचिक, सात्विक व आहार्य।

- ***कायिक:****कहां लडैते दृग करै, परे हाल बेहाल।*

  कहुं मुरली, कहुं पीत पर, कहुं मुकुट बन माल।।

- ***वाचिक:*** *सकत न तब ताते वचन, नो रस को रस खोइ।*

  खिन खिज औहे खीर औ, खरी सवादिल होइ।।

- ***सात्विक:*** *मैं यह तोही में लखी भगती अपूरब बाल।*

  लहि प्रसाद माला जुमो, तनुकमम्ब की भाल।।

- ***आहार्य:*** *चमचमात चंचल नयन, विच घूंघट पर झीन।*

  मानहु सुरसरिता विमल, जल उछरत जुग मीन।।

हावों सूक्ष्म व सांकेतिक होता है। वह स्थूल व स्पष्ट होकर 'हेला' बन जाता है। कवि ने हावों के चित्रण में अपनी रससिद्धता का परिचय दिया है। जैसे–

'कहत, नटत, रीझत, खीझत, मिलत, खिलत, लजियात।

भरे मौन में करत हैं, नैंनन ही सौं बात।'

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।

सौंह करि, भौंहनि हैसे देन कहि, नरि जाइ।।

बिहारी सतसई श्रृंगार रस का अथाह सागर है। इन्होंने संयोग श्रृंगार का सातयव विस्तृत और सूक्ष्म निरीक्षण पूर्ण वर्णन किया है।

fo;kx

वियोग श्रृंगार को विप्रलंभ श्रृंगार भी कहा जाता है। विरहावस्था में विरही व्यक्ति की समस्त वृतियाँ अन्त मुखी हो जाती हैं और वह अपने ह्रदय के भावों की अभिव्यक्ति तीव्रतम व उदात्त रूप में करने लगता है। वियोग के चार भेद माने जाते हैं–

1. पूर्वराग
2. मान
3. प्रवास
4. विरह।

पूर्वराग

नायिका या नायक के मन में एक–दूसरे के गुणों को किसी से सुनकर या एक–दूसरे को प्रत्यक्ष देखकर प्रेभभाव जागृत है पर प्रतिबंधों के कारण उनका मिलन न हो सका, तो उसे पूर्वराग कहते हैं।

नायिका की सखी नायक के पास आकर नायिका के प्रति प्रेम जागृत करने हेतु उसके सुंदर नेत्रों का वर्णन कर रही है–

बरजीते सर नैन के, ऐसे देख मैं न।

हरिनी के नैंनानु तू, हरि नीके ए नैन।।

बिहारी ने नायक की अपेक्षा नायिका का गुण वर्णन अधिक किया है। सखी कृष्ण के कुंडलों का वर्णन नायिका से कर रही है–

'मकराकृति गोपाल कै, सौहत कुंडल कान।

धर्‌यौ मनौ हिय धर समरू, ड़्यौढी लसत निसान।।'

नायक के मन में वय संधिगली नायिका देखते ही प्रेम उत्पन्न हुआ–

'घूटी न सिसुता की झलक झलक्यौ जोबनु अंग।

दीपति देह दुहून मिलि, दिपति ताफता रंग।।

नायक के देखने तथा मिलने की इच्छा होने पर भी मिलन नहीं होता। तब नायिका के नेत्रों की जो दशा हुई, उसे कवि ने बताया है–

'फिरि–फिरि चितु उतही रहतु, टूटी लाज की लाव।

अंग–अंग छवि झोर मैं, भयौ भौंर की नाव।।

मान

नायक और नायिका का संयोग हो जाने पर नायक से अगर अपराध या धृष्टता हो जाये तो जो प्रेमयुक्त कोप हो जाता है, उसे मान कहते हैं। मान दो प्रकार का होता है– प्रणयमान और ईर्ष्यामान। कवि ने ईर्ष्यामान का वर्णन अधिक किया है–

'नख रेखा सोहे नई, अर सोहें सब गातु।

सौ हे होत न नैन ए, तुम सौहें कतु खाता।।'

प्रणयमान का उदाहरण देखिए–

'कहा लेहुगे खेल पैं तजौ अटपटी बात।

नैंक हँसौंहीं हैं भई भौंहे सौंहें खात।।'

प्रवास

जब नायक कार्यवश, शापवश, भयवश आदि के कारण विदेश चला जाता है तो उससे जो विरहजन्य दुख की अनुभूति होती है, उसे प्रवास कहते हैं। बिहारी के काव्य में विदेशगमन सिर्फ कार्यवश हुआ है। कवि ने प्रवास के कारण होने वाली नायिका की तीन अवस्थाओं का चित्रण किया है–

- प्रवास के समय
- विदेश में जाने के बाद
- वापिस लौटने पर

नायक के विदेश जाने की कल्पना से नायिका उदास हो जाती है। यह नायिका प्रवत्सय पतिका नायिका है–

'ललन चलन सुनि चुप रही, बोली आप न ईठि।

राख्यौ गहि गाढै गरै मनो गमन भी दीढ़ि।।'

प्रोषित पतिका नायिका का नायक विदेश में है। आकाश में बादल नायिका में प्रणय भाव को उभार रहे हैं। नायिका अपनी व्यथा अपनी सखी को सुनाती है। आगत पति का नायिका की बायीं आंख फड़क रही है। हृदय में उत्साह हो रहा है। ये सभी लक्षण उसके प्रियतम के आने के सूचक ही है।

विरह

विरह प्रेम की कसौटी है। विरहावस्था में प्रेम की अनुभूति तीव्रतम हो जाती है। इनकी नायिका विरह में मुरझा नहीं जाती, अधिक तरोताजा हो जाती है। वह पत्र लिखती है–

'कागद पर लिखत न बनत, कहत संदेसु लजात।

कहि है सब तेरो हियौ, मेरे हिय की बात।।'

विरह में कृश की नायिका को मृत्यु चश्मा लगाकर ढूढ़ँना, विरह विदग्ध नायिका की छाती पर डाले गए गुलाब जल का भाप बनकर उड़ जाना आदि अहात्मक वर्णन है। बिहारी के वियोग वर्णन में चमत्कार और अहात्मकता अधिक है। इनमें संवेदना कम है, परंतु वे अपने काव्यकौशल से इस कमी को दृश्यावधान से पूरा कर देते हैं। मानसिक अवस्थाओं का चित्रण कम हुआ है। विरह का प्रभाव कृशता, शुष्कता, दाहत्व और पांदुरता आदि के द्वारा प्रकट हुआ है। विरह ने नायिका को इतना अधिक कृशकाय बना दिया है कि वह सूखकर कांटा हो गयी है। वह साँसों के झूले पर ही झूलने लगती है–

'इत आवत चलि जावत उत, चली छः सातक हाथ।

चढ़ी हिहौंरे सी रहे, लगी उसासनु साथ।।'

कवि ने वियोग निरूपण में कहीं–कहीं लोकसीमा का उल्लंघन किया है। इस दोहे में विरह की ज्वाला का अतिरेक दिखाया गया है–

'औधाई सीसी सु लखि बिरह–बरति बिललात।

बिच ही सूखि गुलाब गौ, छींटौ छुई न गात।।'

अंततः कहा जा सकता है कि बिहारी मूलतः श्रृंगार के कवि है। इन्होंने श्रृंगार के दोनों पक्षों – संयोग व वियोग – का विशद वर्णन किया है। इनका मन संयोग वर्णन में अधिक रमा है। इनके श्रृंगार चित्रण में सूर, मीरा जैसी गंभीरता नहीं है। ये रीतिकालीन चमक दमक से प्रभावित थे।

3.

बिहारी की भक्ति

बिहारी सतसई में यदि श्रृंगार के पश्चात् किसी अन्य रस की प्रतिष्ठा हुई है तो वह भक्ति रस। कवि ने लगभग 50 दोहों की रचना भक्ति को विषय बनाकर की है। कवि ने भक्ति भावना को श्रृंगार के पश्चात सबसे अधिक स्थान दिया है। जिसमें भक्ति के विभिन्न पक्षों को संचालित करने का प्रयास किया है।

jhfrdkyhu HkfDr

"श्रृंगार रीतिकालीन कवियों के जीवन की वास्तविकता थी तो भक्ति उनका संस्कार। वे श्रृंगार वर्णन के मध्य अपने संस्कारों से कैसे अछूते रह सकते थे। अतः उस काल के कवियों की भक्ति भावना उनकी काव्य धारा के मध्य ऐसे विश्राम के क्षण हैं जहां उनके ठहर जाने के अतिरिक्त और कोई चारा नही था।"

भक्तिकाल में भक्ति ही मुक्ति का साधन एवं साध्य थी। रीतिकाल में राजनीति एवं सामाजिक ढांचा ही बिखर गया। फिर भक्ति का साधन अटूट कैसे रह सकता। उन्होंने अपने युगीन प्रभाव से इतना भर दिया कि भक्ति के अलौकिक प्रेम को लौकिक प्रेम के आधार पर टिकाया। विलासी सम्राट एवं सामन्तों की विलास भावना की तुष्टि के लिए राधा–कृष्ण को प्रेम–साक्ष्य ढूँढ लिया। केवल इसी कारण श्रृंगारी कवियों को भक्त कवि नहीं कहा जा सकता। उनके संस्कार इतने प्रबल थे कि घोर श्रृंगारी वातावरण में भी वे भगवत्–विषयक रति के उस सामान्य धरातल पर उतर आते थे कि कुछ क्षण खड़े रहने से उनका त्रिविध ताप दूर हो जाता था।

fcgkjh dh HkfDr Hkkouk

बिहारी रीतिकालीन कवि हैं। डा० विजयेंद्र स्नातक बिहारी के बारे में लिखते हैं। "बिहारी भक्त नही थे। भक्ति भावना का उनके जीवन से रसात्मक तादात्य रहा हो, इसमें संदेह नहीं।"

इससे यह सिद्ध होता है कि बिहारी के काव्य में भक्ति–भाव का वर्णन प्रसंग रूप से ही आया है।

रीतिकालीन भक्ति के बारे में डा० नगेन्द्र का कथन दृष्टव्य है "यह भक्ति भी उनकी श्रृंगारिकता का ही एक अंग थी। जीवन की अतिशय रसिकता से जब ये लोग घबरा उठते है तो राधा–कृष्ण का वही अनुराग उनके धर्म भीरु मन को आश्वासन देता होगा। इस प्रकार रीतिकालीन भक्ति एक और तो सामाजिक कवच और दूसरी ओर मानसिक शरण–भूमि के रूप में इनकी रक्षा करती थी।

बिहारी के भक्ति विषयक दोहे उनकी भक्ति के परिचायक न होकर उनमे चिन्तन के किसी क्षण का परिणाम है।

फिर भी 'बिहारी सतसई' के दोहों के सूक्ष्म निरीक्षण से कवि की भक्ति भावना को निम्नलिखित शीर्षकों में प्रस्तुत किया जा सकता है–

(क) भक्ति का आधार

(ख) भक्ति का स्वरूप

(ग) भक्ति के प्रति झुकाव का साधन।

¼d½ HkfDr dk vk/kkj

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्ति का मूलाधार प्रेम मिश्रित श्रद्धा को माना है। वस्तुतः भक्ति में श्रद्धा और प्रेम की अवस्थिति को भुलाया नहीं जा सकता। बिहारी अपने अराध्य के प्रति श्रद्धानत है–

'हरि कीजै तुमसौ यही, विनती बार हजार।

जेहि तेहिं भांति डरौं रहो, पर्‌यौ रहौ दरबार।।'

श्रद्धा के लिए आचार्य शुक्ल ने तीन बातों की ओर संकेत किया है।

1. आलम्बन की महत्ता
2. आत्म दैन्य
3. दृढ़ अनुरक्ति।

कवि बिहारी ने अपने दोहों में इन तीनों तत्त्वों की ओर अभिव्यक्ति की है–

1. **आलम्बन की महत्ताः** बिहारी के उपास्य वृंदावन बिहारी जी राधा कृष्ण समर्थ हैं। उनकी अनेक अलौकिक लीलाओं को स्मरण करते हुए उनकी महत्ता का बोध है–

   'प्रकट भए द्विजराज कुल, सुबस बसै ब्रज आय।

   मेरो हरौ क्लेस सब, केसौ राय।।'

2. **आत्म दैन्यः** आलम्बन के महत्त्व के साथ अपनी दीनता का मान भी उपासक को होना चाहिए। उपासक जब तक अपनी उपास्य के सम्मुख दीनत्व प्रकट नहीं करता तब तक उसके प्रति विशेष झुकाव उत्पन्न नहीं होता। बिहारी ने अपने अनेक दोहों में अपनी दीनता प्रदर्शित की है। आत्म दैन्य में अपनी तुच्छता का ज्ञान और आत्म समर्पण की भावना का प्राधान्य होता है। बिहारी में दोनों ही देखी जा सकती है–

   ज्यों है त्यौं ही तो दुगों हो हरि अपनी चाल।

   हठ न करौ अति कठिन है, मो तारिबो गोपाल।।

तुच्छता के बोध के साथ ही कवि को अपने आलम्बन की महत्ता का ज्ञान होता है। इसलिए वह अपने को अत्यंत तुच्छ समझकर भी अपने को उपास्य के प्रति समर्पित कर देता है। कवि में आत्मसमर्पण की भावना को देखा जा सकता है–

'कीजै चित सौहे तेरे जिहि पतितन के साथ।

मेरे गुण औगुण गननि, गनो न गोपीनाथ।।'

'मोही दोजै भोष जो अनेक अधमन दियौ।

जो बांधे हो तोष, तो बांधो अपने गुननि।।'

आत्मसमर्पण की भावना का चरम विकास वहाँ होता है। जब उपासक उपास्य को ही सब कुछ मान लेता है। उसके लिए संसार का वैभव उसी में समा जाता है–

'कोई कौरिक संग्रहों, कोऊ लाख हजार।

मो सम्पत्ति जदुपति सदा विपत्ति विदारन हार।।'

उपासक के लिए उपास्य की प्रत्येक चीज शिरोधार्य हो जाती है। सुख–दुख समान लगते हैं–

दियौ सुसीस चढाई लै, आधी भाँति अशरि।

जापे सुख चाहत लियौ ताकै दुखहि न फैरो।।

दीरध न लेई दुख सुख सांई न भूलि।

दई–दई क्यों करत है, दई–दई सो कबूलि।।

दृढ़ अनुरक्ति

आलम्बन के महत्व और आत्म दैन्य के बाद दृढ़ अनुराग की अत्यंत आवश्यकता होती है। उपासक को यह निश्चय है कि उपास्य बहुत दीन है, किन्तु इस पर उसकी अनुरक्ति दृढ़ नहीं हुई तो भक्ति का एक पक्ष अधूरा ही रह जाएगा। बिहारी का अपने उपास्य के प्रति अनुराग दृढ़ है–

तजि तीरथ हरि राधिका, तन दुति करि अनुराग।

जहि ब्रज के लिनिकुंजमज, पग–पग होत प्रयाग।।

सीस मुकट करि काछनी, कर मुरली माल।

इहि बानक मो मन बसो, सदा बिहारी लाल।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भक्ति के लिए जिस प्रेम युक्त श्रद्धा की आवश्यकता है, वह बिहारी में पूर्णतः प्राप्त है।

¼[k½ HkfDr d: çfr >qdko d: lk/ku

भक्ति की ओर झुकाव के साधन दोहरे होते हैं–

1. विधात्मक
2. निषेधात्मक

विधात्मक साधन भगवान की ओर झुकने के लिए कुछ करने की प्रेरणा देते हैं। और निषेधात्मक में उन वस्तुओं से बचने का प्रयास किया जाता है, जो भगवान भक्ति में बाधक सिद्ध होते हैं। बिहारी में दोनों ही रूप मिलते हैं–

विधात्मक में नाम स्मरण, गुण कीर्तन, भजन, पाठ–पूजा आदि साधनों की चर्चा होती है। बिहारी ने भी इन विधात्मक साधनों का उल्लेख किया है–

पतवारी भाला पकरि और न कछु उपाय।

तरि संसार पयोधि को हरिनाम करै नाव।।

कवि ने अपने मन को भगवान के गुण स्मरण करते हुए उसको याद करने की सलाह दी है–

यह बिरिया नहिं ओर की तू करिया वह सोंधि।

पाहन नाव चढाय जिन के पार पयोधि।।

निषेधात्मक झुकाव

भक्ति में उन साधनों के विरोध की चर्चा करना जिनके कारण भगवान के भजन में या भक्ति में बाधा पड़ती हो, निषेधात्मक रूप में आता है। भक्तों, भक्त कवियों और सन्तों सभी ने इस प्रकार के निषेधों का वर्णन किया है। सांसारिक मायाजाल, स्त्री–धन, विषय वासना आदि के अतिरिक्त बहुत से भक्तों ने पाखंड, कपट का विरोध किया है।

बिहारी ने भी इनको भक्ति के बाधक ठहराकर निषिद्ध माना है। उनके उदाहरण नीचे देखे जा सकते हैं–

'को घूत्यौ इहि जाल। परिकत कुरंग अकुलात।

ज्यों ज्यों सुरमित ज्यों चहत, त्यों–त्यों उरसत जात।

या भव पारावर को उलचि पार को जाय।

तिय छवि छाया गृहिनी, मांह बीच ही आय।।'

¼x½ HkfDr dk Lo:i

भक्ति के सम्बन्ध में बिहारी के किसी रूप को निश्चित कर पाना कठिन है। उन्होंने जहाँ एक ओर पतवारी माला पकड़ने की सलाह दी है। वहाँ जपमाला, छापा तिलक को व्यर्थ बताया है। वे एक ओर कृष्ण के भक्त हैं तो दूसरी ओर राम का गुणगान करते हैं। अतः उनकी भक्ति भावना पर समान रूप से सोचने से पूर्व उनके द्वारा अभिव्यक्त भक्ति के विभिन्न रूपों का दिग्दर्शन आवश्यक होगा। बिहारी की भक्ति जिन अनेक रूपों में दिखाई देती है वे इस प्रकार रखे जा सकते है–

'कौन भांति रहिवे बिरद, अब देख बे मुरारी।

बीधै नोसो आयके, गीधे गीधहि तारि।।'

वह सगुण भक्ति की प्रशंसा में कहता है–

लटुवा लैं प्रभु कर गहे निर्गुनी गुन लपटाय।

वहै गनी करते छूटे, निर्गुनी यै हवे जाय।।

निर्गुण रूप

हरि भजत प्रभु पीढि दै, गुन विस्तारन मान।

प्रकटत निर्गुन निकट ही, चैत्र रंग गोपाल।।

एकेश्वर रूप

अपने–अपने मत लगै, बादि मचावत सोर।

ज्यों–त्यों सबको सेइबो एके नन्द किशोर।।

अद्वैत रूप

में समझयौ निरधार, यह जग काचो कौच सो।
एके रूप अपार। प्रतिबिम्बत लखिये सदा।।

दार्शनिकः

बुधि अनुमान प्रमाण श्रुति, किये निति ठहराय।
सुक्ष्म गति पर ब्रह्म की अलख लखी नहिंजाय।।

प्रिय रूप

भक्ति का प्रिय रूप बहुत से भक्तों को अच्छा लगा हैं। इसमें मधुरा और सख्य भक्ति तो बहुत ही प्रसिद्ध रही है। मधुरा भक्ति में कवि को प्रियतम मानकर और सख्य में उसे मित्र मानकर उपास्य को अनेक प्रकार के उपालम्भ भी दिये जाते रहे हैं। बिहारी ने मधुरा, सख्य और दास्य – तीनों में मिश्रित उपालम्भ की सृष्टि अपने भक्ति सम्बन्धी दोहे में की है। इसके अनुसार कभी वे उपालम्भ देते हैं, कभी वे अपनी हठवादिता दिखाते हैं और कभी क्षोभ प्रकट करते हैं:

इनके उपालम्भ एक से एक वक्रोक्ति पूर्ण एवं सरस हैं:

"नीकी दई अनाकनी कीकी परि गुहारि।

तज्यौ मनौ तारन बिरद, बारक बारन तारि।।"

इसी प्रकार,

"कोरे ही गुण रीझते, बिसराई वह बानि।

तुमहि कान्ह मनौ भयौ, आजकल के दानि।।"

उनकी दृढ़वादिता और चुनौती देखिए:

"कौन भांति रहिवे बिरद, अब देखिवे मुरारि।

बीघे मोसों आम्के, गीधे–गीधाई तारि।।"

और एक तीखा व्यंग्य करता है:

"बँधु भए का दीन के, को तार्‌यौ रघुराय।

तूठे तूठे फिरत हो, झूठे विरद कहाय।।"

उनकी भक्ति भावना विषयक उक्तियों को देखकर पता चलता है कि उनमें वैचारिक ज्ञान और भाव सम्प्रेषण की अपार क्षमता थी। शृंगार भावना में आकंठ डूबे रहने के बावजूद भी बिहारी के भक्ति विषयक छंदों की ओर पाठकों का ध्यान बरबस जाता है। इसका कारण है बिहारी के विषय की गहरी पैठ, सहृदयता तटस्थ और अभिव्यंजना कौशल।

अन्त में डा० नगेन्द्र के मत को उद्‌धृत किया जा सकता है– "रीतिकाल का कोई भी कवि भक्ति भावना से हीन नहीं है, हो भी नहीं सकता था, क्योंकि भक्ति उसमें मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी। भौतिक रस की उपासना करते हुए उनके विलास जर्जर मन में इतना नैतिक बल नहीं था कि भक्ति–रस में आस्था प्रकट करें अथवा सैद्धान्तिक निषेध कर सके।"

4.

बिहारी की बहुज्ञता

बिहारी सतसई में स्थान–स्थान पर ज्योतिष, वैद्यक, गणित, अध्यात्म, पुराण आदि का सांकेतिक निरूपण किया गया है। 'सतसई' में यद्यपि अनेक शास्त्रों तथा कला आदि का काव्य के क्षेत्र में निरूपण हुआ है फिर भी इससे यह निष्कर्ष नही निकलता है कि बिहारी उन विद्याओं अथवा शास्त्रों के अधिकारी विद्वान थे। गणित, वैद्यक, अध्यात्म विद्या के सर्वसाधारण में प्रचलित तथा सर्वविदित तथ्यों का ही बिहारी ने उल्लेख किया है, जिससे उनके रूचि–वैचित्रय का तो बोध अवश्य होता है, पर इसके आकार पर उन्हे कथित शास्त्रों का विशेषज्ञ नही समझा जा सकता।

गणित

बिहारी की निपुणता केवल उसी दृष्टि से सिद्ध होती है कि लोक–व्यवहार में युग–प्रचलित तथा प्रसिद्ध विविध शास्त्रों को कवि ने काव्य के क्षेत्र में उतारने का सफल प्रयत्न किया है। उदाहरण के लिए बिन्दी लगाकर अंक के दसगुणा होने की बात गणित का साधारण विद्यार्थी भी जानता है और लोक मे भी सर्वविदित है। परन्तु नारी के मुख की कान्ति का माथे पर बिन्दी से दस गुणा से अधिक बढ़ जाना यह सूझ केवल बिहारी की निराली उपज समझी जायेगी।

वैद्यक

गणित के अतिरिक्त बिहारी ने अन्य शास्त्रों की जानकारी भी 'सतसई' में प्रकट की है। उदाहरणार्थ आयुर्वेद या वैद्यक सम्बन्धी ज्ञान का परिचायक एक दोहा देखिये–

'मैं लखि नारी ज्ञानु करि, राख्या निरधारू यह।

वहई रोग निदानु वह, बैदु ओषधि बह।।'

इसमें नाड़ी ज्ञान द्वारा रोग के निदान तथा ओषधि की चर्चा की गई है, परन्तु इतने से ही बिहारी को 'धन्वन्तरि' नही माना जा सकता। इसी प्रकार बिहारी ने 'सुदर्शन चूर्ण', 'पारद–भष्म' का भी वर्णन किया है।

प्रेम रस में भीगा हुआ ह्रदय विरहाग्नि में संतप्त होकर आँखों के मार्ग से आँसूं बनकर बह रहा है–

'तच्यौ आँच अब बिरह की रह्यौ प्रेमरम भीजि।

नैननु कै मग जलु बहै, हियौ पसीजि–पसीजि।।'

कितनी सुन्दर कल्पना है और स्नत्य में वैद्यक का रंग गंगा–जमनी जल की तरह मिलकर सौन्दर्य का संगम बन गया है।

ज्योतिष

'बिहारी सतसई' में ज्योतिष विद्या का उपयोग बिहारी ने अन्य शास्त्रों की अपेक्षा अधिक किया है। इसके अतिरिक्त जहाँ अन्य शास्त्रों के उल्लेख से केवल इतना ज्ञात होता है कि बिहारी को उन शास्त्रों की साधारण और लोक–प्रचलित मोटी–मोटी बातों की जानकारी भी, उनका गम्भीर और पांडित्यपूर्व अध्ययन कवि को नही था, वहाँ ज्योतिष के विषय में बिहारी का पर्याप्त और विशेष ज्ञान का परिचय मिलता है। अतः बिहारी को ज्योतिष शास्त्र का पर्याप्त ज्ञान था, इसे स्वीकार करने में किसी को आपत्ति नही होनी चाहिए। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं–

'मंगल बिन्दु सुरंगु मुखु, ससि केसरि आड़ गुरू।
इक नारि लहि संगु, रसमय किय लोचन जगतु।।'

इसी प्रकार शनि के मीन लग्न में होने से राजा बनने का योग होता है, इस सिद्धांत का उल्लेख निम्न दोहे में है–

'सनि–कज्जल चख–झख लगन, उदज्यौ सुदिव सनेह।

क्यौं न नृपति ह्वै भोगवे, बहि सुवेंस सबु देह।।'

दर्शन शास्त्र

बिहारी के अनेक दोहों में दार्शनिक ज्ञान का भी परिचय मिलता है। परन्तु इस क्षेत्र में उतनी ही बातों का उल्लेख है, जिनका ज्ञान प्रायः साधारण शिक्षित वर्ग को प्रायः हुआ करता है। बिहारी ने नरहरिदास के पास रहकर दर्शनशास्त्र सम्बंधी ज्ञान प्राप्त किया था, जिसका उपयोग प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनो रूपों में 'बिहारी–सतसई' में मिलता है। जैसे–

"मैं समुझयौ निरधार, यह जागु कांचो कांच सौ।

एकै रूप अपार, प्रतिबिबिंत लखियतु जहाँ।।"

इस दोहे में एक परमात्मा के संसार में अनेक रूपों में प्रतिबिबिंत होने की दार्शनिक विचारधारा सरल सुन्दर ढंग से व्यक्त की गई है।

इस प्रकार के अतिरंजित वर्णनों में अद्वैतवाद के सिद्धांत भी दिग्दर्शन कराया गया है–

जोग जुगति सिखए सबै, मनौ महामुनि मैन।

चाहत पिय अद्वैतता, काननु सेवत नैन।।

परन्तु इन उल्लेखों से बिहारी तत्त्वज्ञानी दार्शनिक कदापि सिद्ध नही होते।

पुराण

'बिहारी सतसई' में पौराणिक आख्यानों का भी संकेत किया गया है। इससे बिहारी के पौराणिक–अध्ययन का भी पता चलता है। परन्तु रामायण, महाभारत तथा अन्य पुराणों के जिन प्रसंगो को आधार बनाया गया है, वे प्रायः सर्वविदित कथानक हैं, अतः इसे बिहारी के विशेष और गहन अध्ययन का प्रमाण नही समझा जा सकता। उदाहरणार्थ कुछ दोहे प्रस्तुत हैं–

पिय बछुरन कौ दुसह दुख, हरषु जात म्यौसार।

दुरजोधन लौं देखियति, तजत प्रान इहि बार।।

सांसारिक ज्ञान

बिहारी को लोक–जीवन का भी गहरा अनुभव था। राजदरबार के अतिरिक्त शिष्ट समाज के साथ उसका निरंतर सम्पर्क बना रहा। भ्रमण भी खूब किया। निरीक्षण शक्ति तो जन्मजात ही थी। अतः अपने व्यापक और विविध अनुभवों से जो ज्ञान कवि को प्राप्त हुआ, उसे किसी न किसी रूप में उसकी रचना में प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।

वे सभी विषयों के प्रकांड पंडित तो नही थे, परन्तु ज्योतिष में उनका अध्ययन अपेक्षाकृत गम्भीर था। लोक–जीवन का प्रत्यक्ष अनुभव होने से वह अपने युग की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक – गति–विधियों, खेल–तमाशों, अन्धविश्वासों, रीति–रिवाजों से पूरी तरह परिचित थे। उनकी साधना एकांतनिष्ठ नही थी, उनका ज्ञान भी केवल पुस्तकों तक सीमित नही था। बिहारी एक जागरूक, बहुश्रुत, बहुपठित और बहुरूचि के कलाकार थे।

5.

बिहारी की काव्यकला

बिहारी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने लगभग 700 दोहे लिखे, परंतु उन्होंने गागर में सागर भर दिया है। कवि के काव्य के दो पक्ष होते हैं—

(क) भाव पक्ष

(ख) शिल्प पक्ष

¼d½ Hkko i{k

कवि मूलतः शृंगार के कवि हैं, परंतु अन्य विषयों यथा भक्ति, नीति, प्रकृति आदि पर भी उनकी लेखनी चली है।

शृंगार वर्णन

कवि ने शृंगार के दोनों पक्षों — संयोग व वियोग — का विशद वर्णन किया है। संयोग शृंगार के अंतर्गत इन्होंने शृंगारिक व्यापार, चेष्टाओं, हाव—भाव आदि का बड़ा सहज और जीवंत वर्णन किया है। इन्होंने नायिका के रूप वर्णन, नखाशिख वर्णन, संधि आदि के स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत किए हैं। नायिका के मुख का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—

छप्यौ छबीलों मुँहु लसै, नीले अंचर चीर।

मनौ कलानिधि झलमलै, कालिंदी के नीर।।

कवि के संयोग चित्रों में केवल शहरी जीवन ही नहीं, अपितु गाँव की मनोहारी छटाएँ भी समाहित है। नदी सरोवर, स्नान, झूलना, फागुन की मादकता, फसलों का वर्णन आदि ऐसे दृश्य चित्र हैं जो अपूर्व सौंदर्य प्रदान करते हैं। झूलें का एक दृश्य और अकस्मात् नायक—नायिका का मिलन अवधेय है जिसमें सरलता और चतुरता का अद्भुत योग है—

'हेरि हिंडोरै गगन तैं परी—परी सी टूटि।

धरी धाइ पिय बीच ही, करी खरी रस लूटि।।

वियोग वर्णन में कवि ने पूर्वराग, मान, प्रवास, करूण आदि चारों वियोग शृंगार रूपों का उद्भावन अपने दोहों में किया है, लेकिन प्रवास के निरूपण में कवि का चित्र खूब रमा है। वियोग शृंगार निरूपण में कवि ने अनेक स्थानों पर स्वाभाविकता और लोकसीमा का भी अतिक्रमण कर डाला है। प्रस्तुत दोहे में नायिका की विरह ज्वाला का अतिश्योक्ति पूर्ण वर्णन है—

औंधाई सीसी सु लखि बिरह—वरति विललात।

बिच ही सूखि गुलाब गौ, छींटौ छुई न गात।।

बहुज्ञता

बिहारी की कविता में नीति, प्रकृति, समाज, संस्कृति, सौंदर्य के अनेक बिंब विद्यमान है। उनके दोहों में आयुर्वेद, ज्योतिष, गणित, राजनीति, मनोविज्ञान, युद्धध, काम आदि विषयों का ज्ञान भरा पड़ा है। वे बहुश्रुत कवि हैं। उन्हें लोक का व्यापक गहरा ज्ञान था। समाज–संस्कृति, प्रकृति–परिवेश आदि से संपृवत यह दोहा दर्शनीय है जिसमें घर के दामाद की तुलना पूस के दिन से की गई है–

'आवत जात न जानियतु, तजि तेजहिं सियरान।

घरहिं जँवाई लौ घट्यौ, खरौ पूस दिन मान।।

दरबारी माहौल का कवि ने इस प्रकार वर्णन किया है–

'तंत्री–नाद। कवित्त–रस, सरस राग, रति–रंग।

अनबूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग।।

भक्ति भावना

बिहारी के काव्य में भक्ति संबंधी 45 दोहे हैं। इनके दोहों में भक्ति का प्रवाह भक्तिकाल के कवियों जैसा दिखाई पड़ता है। कवि ने अपनी 'सतसई' में दीनता, लघुता, अपावनता तथा प्रभु की शक्ति, शील, सौंदर्य आदि का वर्णन किया है। उदाहरण–

'कौन भाँति रहिहै बिरदु, अब देखिबी मुरारी।

बीधे मोसों आइकै, गीधे गीधहिं तारि।।

कवि श्रीकृष्ण को उलाहना देते हुए कहता है–

'कब कौ टेरतु दीन रट, होत न स्याम सहाइ।

हुमहूँ लागी जगत–गुरू, जग–नाइक, जग बाइ।।'

विषय की विविधता

कवि ने भक्ति, नीति, श्रृंगार, वीरता, वैद्यक आदि विषयों को अपने दोहों में वर्णित किया है। कवि स्वयं मानता है कि–

'करि बिहारी सतसई भरी अनेक स्वाद।'

कवि ने मुक्तक काव्य की रचना की है। इन्होंने सत्संग का महत्व, कुसंग के त्याग का उपदेश दिया है। इन्होंने प्रकृति का आलम्बन व प्रकृति रूपों में वर्णन किया है। जैसे–

बैठि रही अति सघन बन, पैठि सदन–तन मॉह।

देखि दुपहरी जेठ की, छाहौं चाहति छाँह।।

¼[k½ f'kYi i{k

बिहारी ने 'गागर में सागर' भरा है। उनके दोहे अर्थ–गाम्भीर्य के निर्कष है। कवि की सतसई ब्रज भाषा का श्रृंगार है। कवि का काव्य भाषा और भाव–दोनों के समन्वय से महिमामंडित है। बिहारी सतसई की लोकप्रियता का सबसे बड़ा आधार उसकी कलात्मक चारूता है। सचमुच में इनके दोहे बेजोड़ है–

सतसैया के दोहरे, ज्यों नायक के तीर।

देखन में छोटे लगैं बेधैं सकल सरीर।।

इनके शिल्प की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–

समास पूर्ण शब्द प्रयोग

दोहा जैसे लघु आकार के छन्दों में बिहारी ने भाव सागर भर दिया हैं। इसके लिए आवश्यक था कि समास पूर्ण शब्दो का प्रयोग बड़ी कुशलता से हो। थोड़े शब्दों में बहुत कुछ कहने के लिए भाषा का समासयुक्त होना आवश्यक है। ऐसी समास बहुत भाषा में रूपक अलंकार का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया गया है। उनके कुछ सामासिक शब्द छोटे तो कुछ लम्बे भी प्राप्त होते हैं। सामासिक शब्द चाहे छोटे हो चाहे लम्बे, पर बिहारी की भाव व्यंजना में न बाधा खड़ी हुई है, न भाषा में कोई क्लिष्टता है।

'रनित भृंग घंटावली, सरत दान मधुनीर।

मंद–मंद आवत चल्यौ, कुजंर–कुंज समीर।।

मंगल बिन्दु सुंरग मुख, ससि केसर आड़ गुरू।

इक नारी लहि संग, रसमय किए लोचन जगत।।

चित्रोपम विशेषणों का प्रयोग

चित्रोपम विशेषणों का प्रयोग करने में बिहारी की विशेष रूचि थी। पाठक पर सहसा प्रभाव डालने की दृष्टि से सामान्य विशेषण उपयोगी साबित नहीं होते। अतः बिहारी ने अपने काव्य में चित्रोपम विशेषणों का बहुत प्रयोग किया है। उत्तेजनापूर्ण ऐन्द्रिय भावना उत्पन्न करने में वे बेजोड़ होते हैं। प्रसंग विशेष को देखते हुए बिहारी ने नयन के लिए अनियोर नयन, अहेरी नयन, कचरारे नयन, चंचल नैन आदि विशेषणों का प्रयोग किया है।

अनियारे दीरघ द्दगनुं, किती न तरूनी समान।

वह चितवनि और कछु, जिहि बस होत सुजान।।

न केवल विशेषणों के प्रयोग का कौशल कवि में था बल्कि उसमें अपने शब्दों द्वारा सजीव वर्णन कर वर्ण्य का चित्र ही पाठकों या श्रोताओं के समक्ष उपस्थित करने की क्षमता थी। नायक–नायिकाओं के कायिक अनुभवों को बिहारी ने यों शब्द बद्ध किया है कि समूचा चित्र ही आँखों में घूमने लगता है।

चित्र–योजना

सतसईकार बिहारी की भाषा चित्रात्मक है। जो एक चित्रकार अपनी तूलिका के माध्यम करता है, वहीं काम बिहारी ने अपनी लेखनी के द्वारा किया है। चित्रकार के चित्र स्थिर होते हैं। जबकि बिहारी के विभिन्न चित्र चलचित्र के समान चंचल एवं गत्यात्मक हैं।

बिहारी ने अपनी सतसई में न जाने कितने ही भावों अनुभावों को आकार ही नहीं अपितु प्राणदान भी दिया है। पहले भी वर्णन किया जा चुका है कि बिहारी ने नयनों के लिए कितने ही विशेषणों का प्रयोग किया है। यदि हम इनके स्थान पर दूसरे पर्यायवाची शब्दो का प्रयोग करें तो अर्ध का सौंदर्य सुंदरता से संवलित नहीं हो पाता।

उदाहरण देखिएः

'बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।

सौंह करैं भौहनि हसै, देन कहै नहि जाय।।'

वर्ण चित्र

बिहारी की भाषा ने वर्ण चित्रों की भी सृष्टि की है। वर्ण बोध का प्रथम उदाहरण तो, 'बिहारी सतसई' के प्रथम दोहे में ही मिल जाता है जहां कवि 'राधा नागरि' की प्रार्थना करता हुआ कहा है कि–

'मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।

जा तन की झांई परै, श्याम हरित दुति होय।।'

रंगो के मिश्रण का एक और चित्र देखिए–

'अधर धरत हरि के परत, ओढ डाढि पट जोति।

हरित बांस की बांसुरी, इन्द्रधनुष रंग होति।।'

अलंकारमयी

सुन्दर अलंकृत होकर सुन्दरतम हो जाती है। बिहारी के दोहे प्रायः अलंकारों के आकार हैं। अलंकार विधान सें भाषा का उपयोगी रूप सामने आया है–

श्लेष अनुप्रास

'मेरी भवबाधा हरौ, राधा नागरि सोय।

जा तन की झांई पेरे, स्याम हरित दुतिहोय।।'

यमकः

'कनक कनक ते सौगुनी मादकता अधिकाय।

उइ खाए बौराए जग, उइ पायें बौराय।।'

विरोधाभास

'या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहीं कोय।

ज्यों–ज्यों बूड़े स्याम रंग त्यौं त्यौं उज्ज्वलु होया।।'

वक्रोक्ति

'बंधु भए का दीन के, को तारयो जदुराई।

तूठे तूठे फिरत हौ, झूठैं विरद कहाइ।।'

मुहावरेदार

मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा में आकर्षक शक्ति का संचार होता है। रसधार और भी तीव्र हो जाता है। बिहारी ने अनेक प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों का अत्यंत औचित्यपूर्ण प्रयोग किया है। यथाः

- 'पीनस वोरो जो तजे, सोरा जानि कपूर।'
- 'खरी पातरी कान की, कौन बहाऊ बानि।'

  आक कली न रली करै, अलि अलो जिय जानि।।
- 'धूर मुकति मुंह दीन।'
- 'मूड़ चढाए हूं रहे, परयौ पीढि कचमार।

  रहॅ गेरे परि राखिवो, तऊ हिये परहार।।'
- 'गैड़ी दै गुन रावेर कहति कलैड़ी दीढि।'

लाक्षणिक प्रयोग

लाक्षणिक प्रयोगों में भी बिहारी सिद्धहस्त है। उनकी भाषा सर्वत्र तीर की भाँति सधे हुए, सीधे और लाक्षणिक प्रयोग करती है। कचनार और हार पर किये गये लाक्षणिक प्रयोग का एक उदाहरण दृष्टव्य है–

मूड चढाए हूं रहे परयौ पीढि कचमार।

रहे गरै परि राखिबो, तऊ हिये पर हार।।

कई लोकप्रिय लाक्षणिक प्रयोग एक ही दोहे में प्रयुक्त हुए हैं–

दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।

दृग परति गांठि दुरजन हिये, दई नई यह रीति।।

अन्य भाषाएँ

कविवर बिहारी ने प्रमुख रूप से ब्रज भाषा में सतसई का सृजन किया है, किन्तु साथ–साथ बुन्देली, अवधी, फारसी और उर्दू के भी अनेक शब्दों का प्रयोग किया। सतसई में पूर्ण स्वाभाविकता से किया गया हैं। बुन्देली भाषा तो बिहारी की मातृभाषा थी। अतः उसका ललित प्रयोग तो स्वाभाविक है।

- **पूर्वी अवधी प्रयोगः** दीन, कीन, लीन, लजियात जेही, केही।
- **बुन्देली प्रयोगः** खैर, करवी, पायवी, मरोर चाला आदि।

कई दोहे पूर्णतया ही बुन्देली भाषा में रचे गए है–

चिलक चिकनई चटकस्यो लफति सटकलों आइ।

नारी सलोनी सांवरी, नागिन को डसि जाई।।

उर्दू फारसीः मुसलमानो का राज्यकाल था, अतः उर्दू का वातावरण था ही। उसका प्रभाव भी बिहारी पर पड़ा था। सतसई में अनेक शब्द उर्दू के प्रयुक्त हुए हैं, जैसे– इज़ाफा, खुबी, खुशहाल, अदब, हद, पायन्दान, बरजोर, हुक्म आदि।

धन्यात्मकता या नाद सौन्दर्य

धन्यात्मकता या नाद सौन्दर्य के लिए बिहारी हिन्दी काव्य जगत में विख्यात है। इस दिशा में उनका वैशिष्ट्य निर्विवाद है।

नायिका की रसभरी अंग चेष्टाओं का ध्वन्यात्मक वर्णन प्रस्तुत दोहे में दृष्टव्य है।

'बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।

सौंह करैं, मौंहनि हंसै, देन कहै, नहि जाय।।'

'अनियारे दीरघ दृगनि किती न तरूनी समान।

वह चितवक और कछु, जिहि बस होत सुजान।।'

यह नेत्र सौन्दर्य का चित्र अपनी ध्वन्यात्मकता में अद्वितीय है। 'और कछु' के द्वारा प्रतीयमान अर्ध की ओर इंगित है।

पद मैत्री और नाद सौन्दर्य को अनुप्रास के साथ आकर्षक रूप में सजाया गया है–

'कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत लजियात।
भरे यौन में करत हैं, नैनन ही सो बात।।
रस सिंगार मंजन किये, कंजनु, भंजन दैन।
अंजन, रंजन हूं बिना, खंजन गंजन नैन।।'

प्रवाहात्मकता

दोहे जैसे छोटे छन्द में और जबकि काव्य मुक्तक शैली में रचा गया हो, तो प्रवाह की संभावना प्रायः नहीं रहती है। 'बिहारी' ने इन सीमाओं के होते हुए भी प्रवाह की लोकोत्तर सृष्टि की है।

कवि की रस धार एवं प्रवाहात्मकता की अनेक मर्मज्ञों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। शुक्ल जी ने हर दोहे को रस की पिचकारी ही कहा है। रस प्रवाह का उदाहरण दृष्टव्य हैः

'मुख उधारि पिड लखि रहत, रहयौ नगौ मिससैन।

फरके ओठ, उठे पुलक, गए उधरि, जुसि नैन।।'

नायक–नायिका की प्रेममयी चेष्टाएं व्यंजित हैं। नायिका सोने का बहाना कर रही थी कि औष्ठ फड़क उठे। बस दोनों नेत्र मिल गये।

निष्कर्षतः बिहारी की भाषा सभी दृष्टियों से श्रेष्ठ है। व्याकरण और सौन्दर्य की विरोधी कसौटियों पर भी वह खरी उतरती है। विश्वनाथ प्रताप मिश्र के शब्दों में, "बिहारी का भाषा पर सच्चा अधिकार था। बिहारी को भाषा का पंडित कहना चाहिए। भाषा की दृष्टि से बिहारी की समता करने वाले, भाषा पर वैसा ही अधिकार रखने वाला कोई मुक्तककार नहीं दिखाई पड़ता।"

6.

व्याख्या

HkfDr&uhfr

"मेरी भव ... ... दुति होइ ।।1।।"

शब्दार्थः भव–बाधा = सांसारिक विघन बाधाएँ; नागरि = चतुर; झाई = परछाई, झलक, ध्यान; स्यामु = श्याम वर्ण, वाले कृष्ण, श्रीकृष्ण, दुखादि; हरित–दुति = हरे रंग से मुक्त, प्रसन्न, प्रभावहीन।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी के 'भक्ति–नीति' शीर्षक से ली गई है। इसमें गुणसम्पन्न राधा की वन्दना की गई है। यह दोहा 'बिहारी सतसई' का प्रथम दोहा है, जो मंगला चरण के रूप में रखा गया है।

व्याख्याः रीतिकालीन कवि बिहारी ने राधा की अर्चना करते हुए दोहे की रचना की है। इसके तीन अर्थ सामने आते हैं–

1. जिस चतुर राधिका के शरीर की परछाई पड़ते ही श्याम वर्ण वाले श्रीकृष्ण का रंग हरे रंग का हो जाता है। वह राधा मेरी सांसारिक कठिनाइयों को समाप्त करें।
2. जिस चतुर राधिका के शरीर की झलक पड़ते ही श्रीकृष्ण आनन्द विभोर हो उठते हैं। वह राधा मेरी सांसारिक कठिनाइयों को समाप्त करें।
3. जिस चतुर राधिका के रूप का ध्यान करने से दुखादि समाप्त हो जाता है। वह राधा मेरी सांसारिक कठिनाइयों को समाप्त करें।

विशेषः

1. भक्ति–भावना की अभिव्यक्ति है।
2. राधा की उपासना है।
3. झाई, स्यामु, हरित–दुति शब्दों में एकाधिक अर्थ होने से श्लेष अलंकार है।
4. आकर्षक लयात्मकता है।
5. ब्रज भाषा का सुन्दर रूप है।

"जी की दई ... ... तारि ।।2।।"

शब्दार्थः जी की = अच्छी; अनाकनी = अनसुनी; फीकी = प्रभावहीन; तारन–बिरदु = उद्धार करने का यश; बारक = एक बार; बारनु = हाथी; तारि = मुक्ति देना।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत दोहा पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी के 'भक्ति–नीति' शीर्षक से लिया गया है। इसमें भक्त भगवान से बड़ी आशा लगाने के बाद निराशा में उलाहना दे रहा है–

व्याख्याः हे प्रभु, आपने हमारी प्रार्थना को पूरी अनसुनी की है। ऐसा लगता है हमारी आवाज ही कमजोर हो गई है, जिससे आपको सुनाई नहीं पड़ रही है। ऐसा लगता है आपने एक बार मगर से हाथी को बचाकर 'तारनहारा' बन गए और फिर दूसरों का उद्धार करना ही छोड़ दिया है।

विशेषः

1. इसमें उपालम्भ के साथ ईश्वर को याद किया गया है।
2. इसमें 'मगर' और 'हाथी' की पौराणिक कथा का चित्रण भी है।
3. "तज्यों मानौं ... " में उत्प्रेक्षा अलंकार है।
4. व्यंग्यात्मक भाषा का प्रभावी प्रयोग है।
5. ब्रज भाषा का सुन्दर रूप है।
6. दोहा–छन्द की योजना।
7. मुक्तक शैली।

"कौन भाँति ... ... गीधहिं तारि ।।3।।"

शब्दार्थः भाँति = तरह; रहिहै = रहेगा, बच पायेगा; बिरदु = यश, गौरव; बीधे = उलझना, भिड़ना; मोसों = मुझसे; गीधहिं = गिद्ध, जटायु; तारि = उद्धार।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत दोहा पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी के 'भक्ति–नीति' शीर्षक से लिया गया है। इसमें कवि ने अपने को सबसे बड़ा पापी बताते हुए पतितपालक को उद्धार के लिए आह्वान किया है।

व्याख्याः बिहारी ने आराध्य कृष्ण को आह्वान करते हुए कहा है। हे कृष्ण, अब मुझे यही देखा है कि आप के 'पतितपावन' नाम का यश कैसे बचता है। जटायु जैसे सामान्य पापी का उद्धार आपने किया है और मैं सबसे बड़ा पापी हूँ। मेरा उद्धार कर पाना अत्यन्त कठिन है। अब आपके सामने मुझ जैसा बड़ा पापी है।

विशेषः

1. भक्ति–भावना की सुन्दर अभिव्यक्ति है।
2. जटायु के उद्धार की पौराणिक संदर्भ है।
3. भक्ति का प्रतिद्वन्द्वात्मक रूप है।
4. 'गीधे गीधहि' में अनुप्रास अलंकार है।
5. मुक्तक रचना का स्वरूप है।

6. सुन्दर लयात्मकता है।
7. भक्ति–रस का परिपाक है।

"नहिं परागु ... ... कौन हवाल ।।4।।"

शब्दार्थः परागु = पराग; मधु = मकरन्द के कण; विकास = खिला रूप; अली = भ्रमर; इहिं = इस; हवाल = दशा।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत दोहा पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'भक्ति–नीति' शीर्षक से लिया गया है। इसमें भ्रमर के माध्यम से जयपुर के राजा को शासन–व्यवस्था पर ध्यान देने के लिए प्रेरणा दी गई है।

व्याख्याः बिहारी ने अविकसित कली के मोहपाश में उलझे भौरों को देख कर कहा है। हे भ्रमर! तू अभी से इस कली के मोहपाश में फँस गया है। इसमें अभी न इसमें फाग के कण, मधु का उद्भव हो पाया है और न इसका खिलना संभव हुआ, फिर भी तुम्हारी यह दशा है। जब यह कली खिल कर फूल बन जाएगी, तब तुम्हारी क्या दशा होगी।

इसमें अन्योक्ति के रूप में संकेत किया गया है कि अल्पवयस्क नायिका की ओर नायक आकर्षित होकर सब कुछ भूल गया है जब यौवनावस्था होगी तो क्या होगा।

विशेषः

1. कहा जाता है राजा जयसिंह के द्वारा अवयस्क नायिका पर इतने आसक्त हो गये थे कि राजकाज भूल गए थे। ऐसे में बिहारी ने अन्योक्ति में उन्हें सजग करने के लिए दोहा लिखा था।
2. अन्योक्ति का सुन्दर स्वरूप है।
3. व्यंग्य का आकर्षक रूप है।
4. ब्रज भाषा का सहज रूप है।
5. 'मधुर मधु' में अनुप्रास अलंकार है।
6. आकर्षक गेयता है।
7. दोहा छन्द की योजना है।

"जगतु जनायौ ... ... देखी जाँहि ।।5।।"

शब्दार्थः जनायौ = ज्ञान दिया; जिहिं = जिसने; सकल = सम्पूर्ण; आँरिवनु = आँखों से।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत दोहा पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'भक्ति–नीति' शीर्षक से लिया गया है। इसमें गुरू के द्वारा शिष्य का सर्वव्यापी ईश्वर के विषय में जानकारी दी गई है–

व्याख्याः हे मानव! तुम उस ईश्वर को भी नहीं जान पाये जिसने इस संसार की रचना की है और मनुष्य को ज्ञान दिया है। यह ठीक उसी प्रकार हो रहा है जैसे आँखों से सब कुछ देख लेते हैं, किन्तु उन आँखों को देख पाना संभव नहीं होता है।

विशेषः

1. मानव को उद्‌बोधन का रूप है।
2. 'जगतु जनायौं' में अनुप्रास अलंकार है।
3. आकर्षक लयात्मकता है।
4. मुक्तक रचना है।
5. दोहा छन्द की योजना है।

"सीतलताऽरु सुबास ... ... जानि कपूरू ।।6।।"

शब्दार्थः सीतलताऽरू = शीतलता और; सुबास = सुगंध; मूरू = महत्त्व; जीनस वारै = नाक में होने वाला रोग जिससे गँध का अनुभव समाप्त हो जाता है; कपूरू = कर्पूर।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत दोहा पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'भक्ति–नीति' शीर्षक से लिया गया है। इसमें महत्व वाली वस्तु को यदि कोई पहचान न पाये, तो उसकी महत्ता के अप्रभावित होने की बात बताई गई है।

व्याख्याः बिहारी नैतिक संदर्भ को सामने रख कर कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति नाक के रोग पीनस हो जाने के कारण यदि कपूर की शीतलता और उसकी सुगंध को नहीं जान पाता है, तब भी कपूर की शीतलता और सुरभि ज्यों की त्यों रहती है।

इसमें अन्योक्ति से यह अर्थ निकलता है कि गुणी व्यक्ति को यदि कोई व्यक्ति विशेष न समझ पाये, तो वह गुणी ही रहेगा।

विशेषः

1. अन्योक्ति का आकर्षक रूप है।
2. 'सीतलताऽरू सुबास', 'महिमा–मुरू' में अनुप्रास अलंकार है।
3. सुन्दर लयात्मकता है।
4. अन्योक्ति का आकर्षक रूप है।
5. दोहा छन्द की योजना।

"भोरैं ही ... ... के दानि ।।7।।"

शब्दार्थः थोरैं = थोड़े; रीमते = खुश होते; बिसराई = भुला दी; बानि = आदत, निश्चय; आज–काल्हि = आज कल।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत दोहा पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'भक्ति–नीति' शीर्षक से लिया गया है। इसमें ईश्वर के भी विचारों में परिवर्तन आने का संदर्भ प्रस्तुत किया गया है।

व्याख्याः बिहारी कहते हैं, हे प्रभु पहले आप थोड़े से गुणों को देख कर भक्त पर प्रसन्न हो जाते थे। अब वह आदत तुम में दिखाई नहीं देती है। ऐसा देखकर लगता है कि तुम्हें भी आजकल के दानियों का स्वभाव अपना लिया है। अर्थात् आज जैसे धनिक दान नहीं देते वैसे ही तुम भक्त पर कृपा करना छोड़ चुके हो।

विशेषः

1. कवि समसामयिक राजाओं को उद्बोधित कर रहा है।
2. ईश–भक्ति का भी स्वरूप है।
3. "तुमहूँ कान्ह मनौ" ... में उत्प्रेक्षा अलंकार है।
4. ब्रज भाषा का सुबोध रूप है।
5. दोहा छन्द की योजना।

"कब को ... ... जग बाइ ।।8।।"

शब्दार्थः बेरत = आवाज लगाना; रट = लगातार याद करना; तुमहूँ = तुम्हें भी; जग–नाइक = जग के नायक; जग–बाइ = संसार की हवा।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पद्यांश पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'भक्ति–नीति' शीर्षक से लिया गया है। भक्त ईश्वर को लगातार पुकार रहा है और उसकी सुनवाई ईश्वर के यहाँ न होने से इस प्रकार कहता है।

व्याख्याः बिहारी लिखते हैं कि प्रभु श्रीकृष्ण को सहायता के लिए लगातार आवाज लगा रहा हूँ, किन्तु श्याम सहायक नहीं हो रहे है। ऐसे में लगता है कि संसार को दिशा दिखाने वाले, संसार के नायक को सांसारिक हवा लग गई है। इससे भक्त विह्वल है।

विशेषः

1. भक्ति–भावना की आकर्षण प्रस्तुति है।
2. 'स्याम सहाय' में अनुप्रास अलंकार है।
3. सुन्दर लयात्मकता है।
4. ब्रज भाषा का आकर्षक स्वरूप है।
5. दोहा छन्द की योजना।
6. 'जग बाइ लगना' मुहावरे का प्रभावी प्रयोग है।

"तभी नाद ... ... सब अंग ।।9।।"

शब्दार्थः तभी नाद = वीणा आदि की लयात्मक ध्वनि; कवित–रस = काव्य–रस; राग = पूरी लयात्मकता; रति–रंग = काम केलि; अन बूड़े = आधे या उचटे मन से; बूडे = डुबकी लगाते हैं, ध्यान मग्न होकर रस लेते हैं।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत दोहा पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'भक्ति–नीति' से लिया गया है। इसमें गीत, संगीत और प्रेम के संदर्भ में तन्मयता को उपलब्धि का आधार कहा है।

व्याख्याः बिहारी ने लिखा हैं कि जो व्यक्ति एकाग्र न होकर वीणा आदि का संगीत, काव्य का रसास्वादन और काम–के लिए का आनन्द उठाना चाहेगा, वह सदा असफल होगा। जो व्यक्ति इनमें पूरे मन से डुबकी लगा कर आनन्द लेना चाहता है, वह सफल हो जाता है। अर्थात् उसे पूरा आनन्द संभावित है।

विशेषः

1. नैतिक और भृंगारिक संदर्भ है।
2. 'राग रति रंग' में अनुप्रास अलंकार है।
3. 'बूड़े', 'बूड़े' में दो अर्थो के प्रयोग से यमक अलंकार है।
4. सुन्दर गेयता–लयात्मकता है।
5. दोहा छन्द की योजना।

"या अनुरागी .... उज्जलु होइ ।।10।।"

शब्दार्थः अनुरागी = प्रेमी; बूड़े = डूबे; स्याम रंग = काला रंग, कृष्ण का प्रेम; उज्जलु = निर्मल।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'भक्ति–नीति' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें कृष्ण–भक्ति के विषय में चर्चा की गई है।

व्याख्याः बिहारी ने लिखा है कि कृष्ण का प्रेम बहुत ही अनूठा होता है। कृष्ण–भक्त के मन की दशा को कोई अन्य नहीं समझ सकता है। इस भक्ति की सबसे बड़ी विशेषता है कि भक्त जैसे–जैसे प्रेम में मग्न होता जाता है, उसका मन वैसे–वैसे निर्मल होता चला जाता है।

विशेषः

1. भक्ति–भावना का सहज चित्र है।
2. 'ज्यों–ज्यों', 'त्यों–त्यों' में पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार है।
3. ब्रज भाषा का स्वरूप है।
4. सुन्दर गेयता है।
5. आकर्षक लयात्मकता है।

"जपमाला ... ... राँचै रामु ।।11।।"

शब्दार्थः सरै = काम पूरा करना; एकौ = एक भी; काँचे = कच्चा; साँचे = सच्चे; राँचे = रचना, प्रसन्न होना।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'भक्ति–नीति' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें दिखावे की भक्ति न करके मन से ईश–आराधना करने का संकेत किया गया है।

व्याख्याः बिहारी का कथन है कि प्रसन्नता प्राप्त के लिए ईश–भक्ति में माला लेकर उसकी कड़ियों को घुमाते रहने, शरीर के विभिन्न अंगों पर और अपने कपड़े पर राम–राम छपा लेने से या मस्तक पर तिलक लगाने से कोई लाभ नहीं है। चंचल मन लगातार सांसारिक प्रलोभनों में भटकता रहता है। ईश्वर भक्ति और उससे मिलने वाला आनन्द मन की एकाग्रता में ही संभव है।

विशेषः

1. बाह्याडंबर का स्पष्ट खण्डन है।
2. भक्ति–भावना का आकर्षक रूप है।
3. सुन्दर लयात्मकता है।
4. ब्रज भाषा का सहज रूप है।
5. दोहा छंद की योजना।

"घर–घर ... ... बडौ लखात ।।12।।"

शब्दार्थः डोलत = फिरना; जनु = व्यक्ति; जाचत = माँगना; चसमा = ऐनक; चखनु = आँखो पर।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'भक्ति–नीति' से ली गई हैं। इसमें नैतिक तथ्य स्पष्ट किया गया है कि लालच में दर–दर भटकना पड़ता है और दूसरों के आगे हाथ फैलाना पड़ता है।

व्याख्याः बिहारी का कथन है कि मनुष्य लालच के वश में होकर दीन भाव से घर–घर जाना पड़ता है और अनगिनत लोगों से लगातार माँगते रहना पड़ता है। जब मनुष्य पर लोभ का दबाव होता है, तो उसे हर व्यक्ति धनी और सम्पन्न दिखाई देता है और मांगते रहने की इच्छा जगती है।

विशेषः

1. नैतिक शिक्षा का स्वरूप है।
2. लोलुपता से बचने का संकेत है।
3. 'घर–घर', 'जनु–जनु' में पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार है।
4. 'लोभ चश्मा दिए' मुहावरे का सुन्दर प्रयोग।

5. 'जाचत जाइ' और 'चंसमा चखनु' में अनुप्रास अलंकार है।
6. प्रसाद और माधुर्य गुण सम्पन्न शैली है।

"बडेन हूजै ... ... न जाइ ।।13।।"

शब्दार्थः हूजै = होते हैं; गुनन = गुणों; बिरद = यश; बडाई = चर्चा; गढ्यौ = बनाया।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'भक्ति–नीति' शीर्षक से ली गई है। इसमें व्यक्ति की विशेषताओं से ही उसे यश मिलने की बात कही गई है। बड़ा या अच्छा नाम रख लेने से कोई बड़ा नहीं होता है।

व्याख्याः बिहारी का कथन है कि गुण विहीन व्यक्ति कितना भी बड़ा या अच्छा नाम रख ले उसे महत्व मिलना संभव नहीं होता है। जैसे धतूरे को यदि कनक कहें, तो धतूरे को महत्त्व मिलना असंभव है। धतूरे को कनक कहने से धतूरे से गहना नहीं बनाया जा सकेगा।

विशेषः

1. गुण सम्पन्नता से महत्त्व की बात कही गई है।
2. 'बिनु बिरद बड़ाई', 'गहनौ गढ्यौ' में अनुप्रास अलंकार है।
3. ब्रज भाषा का बोधगभ्य स्वरूप है।
4. सुन्दर लयात्मकता है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"कनक कनक ... ... ही बौराइ ।।14।।"

शब्दार्थः कनक = सोना, धतूरा; मादकता = नशा; अधिकाइ = अधिक; बौराइ = पागल होना।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'भक्ति–नीति' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें सोने अर्थात् अधिक धन सम्पन्नता में होने वाले नशे की चर्चा की गई है।

व्याख्याः बिहारी कहते हैं कि सोने में धतूरे से सौ गुणी अधिक मादकता होती है। स्पष्ट है कि धतूरा खाने से मनुष्य पागल हो जाता है, किन्तु सोना अर्थात् अधिक धन सम्पत्ति पाते ही वह पागल हो जाता है।

विशेषः

1. अधिक सम्पन्नता में मानव मूल्यों का कम हो जाना दर्शाया गया है।
2. 'कनक–कनक' में यमक अलंकार है।
3. ब्रज भाषा का बोधगम्य रूप है।

4. सुन्दर लयात्मकता–गेयता है।

5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"स्वारथु सुकृत ... ... न मारि ।।15।।"

शब्दार्थः स्वारथु = स्वार्थ; सुकृत = पुण्य; पानि = हाथ; पच्छीनु = पक्षियों को।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी के 'भक्ति–नीति' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें नैतिक शिक्षा देते हुए किसी को कष्ट न देते हुए अच्छे कार्य करने की प्रेरणा दी गई है।

व्याख्याः बिहारी ने संकेत किया है कि हे बाज, तू दूसरे के हाथ में पड़कर पक्षियों को मत मारो। इससे न तो तुम्हारा कुछ लाभ होगा, न कोई पुण्य कार्य होगा, और तुम्हारा परिश्रम भी बेकार हो जाएगा। इसलिए यह कार्य छोड़ दो।

यहाँ दूसरा अर्थ निकलता है – कहा जाता है कि शाहजहाँ को खुश करने के लिए बिहारी के आश्रयदाता जयसिंह हिन्दुओं को कष्ट पहुंचा रहे थे। तब बिहारी ने उन्हें मना किया था कि इससे न तुम्हारा स्वार्थ सिद्ध होगा, न कोई पुण्य कार्य होगा और तुम्हारा परिश्रम भी बेकार हो जाएगा।

विशेषः

1. मूल्य–निर्धारक, संरक्षक तथ्य है।

2. अन्योक्ति का आकर्षक रूप है।

3. 'स्वारथु सुकृत', 'बिंहग–विचार', 'परायें, पानि परि' में अनुप्रास अलंकार है।

4. मुक्तक शैली का प्रयोग है।

5. ब्रज भाषा का सुन्दर प्रयोग।

"सीस मुकुट ... ... बिहारी लाल ।।16।।"

शब्दार्थः सीस = सिर; मुकुट = ताज; कटि = कमर; कर = हाथ; उर = गले में; माल = माला; बानक = वेश, स्वरुप; बिहारी लाल = कृष्ण।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'भक्ति–नीति' शीर्षक से ली गई है। इसमें अपने आराध्य के उपासना की चर्चा की गई है।

व्याख्याः बिहारी कहते हैं हे प्रभु आप का वह ह्रदय मेरे ह्रदय में बस गया जब आपके सिर पर मोर पंखों से सुशोभित ताज है, कमर में पीली धोती है, हाथ में वंशी है और गले में वनमाला पड़ी है। मेरा मन अन्य रूप की ओर आकर्षित ही नहीं होता है।

विशेषः

1. भक्ति–भावना का आकर्षक रूप है।

2. सुन्दर गेयता है।
3. 'कटि काछनी', 'मो मन' 'बंसी बिहारी' में यमक अलंकार है।
4. ब्रज भाषा का सरल रूप है।
5. मुक्तक शैली का उपयोगी प्रयोग है।

"दीरध साँस ... ... सु कुबूल ।।17।।"

शब्दार्थः दीरध साँस = लम्बी साँस, आह भरना; साईं हि = प्रभु को; दई = विधता; सु = वह; कुबूल = स्वीकार करो।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'भक्ति–नीति' शीर्षक से ली गई हैं। इसमे दुःखी व्यक्ति को दुःख से मुक्ति के उपाय के रूप में भक्ति करना का संकेत किया गया है।

व्याख्याः बिहारी ने मुसीबत में दुःखी होते मनुष्य को सहारा देते हुए लिखा हैं कि हे मनुष्य! दुःख आने पर परेशान होकर लम्बी–लम्बी आहें न भरें और सुख के आगमन में मस्त होकर प्रभु को मत भुलाओ। संकट मे आकर हे प्रभु! हे प्रभु कह कह कर मत दुःखी हो, ईश्वर ने जो भी समस्याएँ, कठिनाइयाँ और विषमताएँ और सफलताए और उत्कर्ष दिए हैं उसे स्वीकार कर कार्य करते रहो।

विशेषः

1. संकट में, सुख में समरस रहने का संकेत है।
2. 'दई–दई' में भाव विह्वल विशेष भाव के कारण वीप्सा अलंकार है।
3. मुक्तक शैली का अनुकूल प्रयोग है।
4. ब्रज भाषा का आकर्षक प्रयोग है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"नर की अरू ... ... ऊँचौ होइ ।।18।।"

शब्दार्थः नर = मनुष्य; अरू = और; नीर = पानी; जोइ = समझे; जेतो = जो; के = होकर; वे तो = वह तो।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'भक्ति–नीति' से ली गई हैं। इसमें मानव को विनम्रता से गुण सम्पन्नता और गुण सम्पन्नता से सफल होने की नैतिक शिक्षा दी गई है।

व्याख्याः बिहारी ने सफलताद्योतक विनम्रता के नैतिक मार्ग अपनाने की प्रेरणा देते हुए कहा है कि मनुष्य की और नल के पानी की गति समान ही होती है। ये दोनों जितने नीचे या विनम्र होकर चलते हैं वे उतने ही ऊँचे पहुंचते हैं। अर्थात् मनुष्य विनम्रता से गौरव प्राप्त करता है और नल को नीचा कर देने से पानी का दबाव बढ़ जाता है।

विशेषः

1. नैतिक शिक्षा का आकर्षक दोहा है।
2. विनम्रता मनुष्य की गरिमा का आधार है।
3. 'नल–नीर' में अनुप्रास अलंकार है।
4. ब्रज भाषा का बोधगम्य प्रयोग।
5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"बढ़त–बढ़त ... ... समूल कुम्हलाइ ।।19।।"

शब्दार्थः सलिलु = पानी; मन–सरोजु = मनरूपी कमल; बरू = वरन्; समूल = मूल सहित, पूरी तरह; कुम्हलाइ = मुरझाना, नष्ट होना।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'भक्ति–नीति' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें मनुष्य की इच्छाओं के विषय में कनिक बढ़ते जाने के तथ्य को रेखांकित किया गया है।

व्याख्याः बिहारी का कहना है कि सम्पत्ति की बुद्धि के साथ मनुष्य का मन बढ़ते–बढ़ते बहुत विस्तृत हो जाता है। इसके पश्चात जिस प्रकार पानी के घटने से कमल नहीं घटता है उसी प्रकार सम्पत्ति के घटने पर मन नहीं घटता है।

विशेषः

1. मानव–मन के विस्तार होने का आकर्षक चित्रण है।
2. 'सम्पत्ति–सलिल', 'मन–सरोज' में रूपक अलंकार है।
3. 'बढ़त–बढ़त', 'घटत–घटत' में पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार है।
4. मुक्तक काव्य रूप है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग है।

"कल लै ... ... गाहकु कौनु ।।20।।"

शब्दार्थः कर = हाथ; सराहि = प्रशंसा, बड़ाई; मौनु = चुप्पी; गँधी = इम का व्यापारी; अंध = मूर्ख; गवई = मूर्ख; गाहकु = ग्राहक।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'भक्ति–नीति' से लिया गया है। इसमें गुणी व्यक्ति का गुणहीन व्यक्तियों में सम्मान न पाने के संदर्भ को रेखांकित किया गया है।

व्याख्याः प्रथम अर्थ – बिहारी ने कहा है, हे गंधी अर्थात् इम बेचने वाले गाँव के गँवारों में तुम्हारे गुलाब के इम के पारखी नहीं हैं। एक बार सराहना करके चुप हो जाते हैं। अर्थात् इन्हें इम दिखाना व्यर्थ है।

द्वितीय अर्थ – कबीर ने कहा है कि हे विद्वान या गुणी व्यक्ति! तुम इन मूर्ख लोगों के सम्मुख अपनी उत्तमता का बखान क्यों कर रहे हो? ये गुणों के पारखी नहीं हैं। ये एक बार सराहना करके चुप हो जाते है।

विशेषः

1. नैतिक बात का सुन्दर उद्घाटन है।
2. 'सूँधि सराहि', गवई गाहुक' में अनुप्रास अलंकार है।
3. ब्रज भाषा का सुबोध रूप है।
4. मुक्तक काव्य का सुन्दर प्रयोग है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग है।

feyu fojg

"चितई ललचौहें ... ... छबीली छाँव ।।21।।"

शब्दार्थः चितई = देखकर; ललचौहें = ललचाई हुए; चखनु = नेत्र; डटिकर = अच्छी प्रकार; माँह = में; छुवाई = छू कर; छिनकु = क्षण भर; छबीली = सुन्दर; छाँव = परछाई।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'मिलन–विरह' से ली गई है। इसमें नायक द्वारा सुन्दरी नायिका के प्रेम–आकर्षण की चर्चा करता है।

व्याख्याः बिहारी ने लिखा है कि नायक के द्वारा नायिका के प्रेम–प्रकट करने के विषय में कहा गया है कि नायिका ने घूंघट के पर्दे के बीच से ललचाई नजरों से मुझे देखा और पूरी चतुरता से अपनी परछाई से मुझे छूती हुई चंचलता से निकल गई।

विशेषः

1. परछाई स्पर्श करा कर प्रेम प्रकट करने की आकर्षक पद्धति है।
2. 'छिनकु छबीली छाँह' में अनुप्रास अलंकार है।
3. मिलन का चित्ताकर्षक रूप है।
4. संयोग श्रृंगार का अनूठा चित्रण
5. मुक्त शैली की योजना है।
6. श्रृंगार रस का परिपाक है।

"मृव नरत ... ... सौं बात ।।22।।"

शब्दार्थः नरत = नकारना, मना करना; रीझत = प्रसन्न होना; खिझत = झुंझलाना; खिलत = प्रसन्न होना; मौन = भवन; सौं = सब।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' के 'मिलन–विरह' से ली गई हैं। इसमें चतुर–नायिका और नायक की सांकेतिक भाषा में प्रेमवार्ता का चित्रण किया गया है।

व्याख्याः बिहारी दास लिखते हैं कि आँगन में भीड़ है और नायक आँखों की सांकेतिक भाषा में प्रेमवार्ता के लिए नायिका को आमंत्रित करता है नायिका इशारे से इन्कार करती है, नायक ऐसे मे खुश होता है, तो नायिका झुंझला उठती है। इसके साथ दोनों की आँखे मिलती हैं और दोनों प्रसन्न होते हैं इससे नायिका लज्जित होती है। इस प्रकार भरे आँगन में गुरुओं और स्वजनों के बीच प्रेमवार्ता हो जाती है।

विशेषः

1. सर्वाधिक भाव–मंगीर दोहा है।
2. शब्दों से कार्य–व्यापार (प्रेम–वार्ता) का आकर्षक चित्रण है।
3. अनुप्रास अलंकार का आकर्षक प्रयोग है।
4. श्रृंगार रस का मनभावन परिपाक है।
5. दोहा छन्द की योजना।

"कंज–नयनि .... नंद कुमार ।।23।।"

शब्दार्थः कंज = कमल; नयनि = आँख; मंजन = स्नान; ब्यौरति = सँवरती; बार = केश; कच = केश; चितवति = देखती है।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' कृत 'मिलन–विरह' से ली गई हैं। इसमें श्रृंगार करती नायिका का आकर्षक चित्रण है।

व्याख्याः बिहारी कहते हैं कि कोमलांगी नायिका स्नान करके अपने कमलवत नयनों में काजल लगा चुकी है। अब बैठी हुई अपनी उंगलियों को बालों के मध्य डाल कर उन्हें सँवारने में लगी हुई है, ऐसे में उसकी नजरें नायक कृष्ण पर लगी हुई हैं।

विशेषः

1. राधा (नायिका) के सौन्दर्य का चित्रण है।
2. राधा–कृष्ण के प्रेम की अभिव्यक्ति है।
3. श्रृंगार रस का सुन्दर परिपाक है।

4. मुक्तक काव्य रूप है।

5. दोहा छन्द प्रयोग है।

"बतरस लालच ... ... नरि जाय ।।24।।"

शब्दार्थः बतरस = बातों का आनन्द; लाल = नायक (श्रीकृष्ण), लुकाइ = छिपाया; सौंह = सौगंध; भौंहनि = भौंहों से; दैन = देने से; नरिजाय = नकारना।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' कृत 'मिलन–विरह' से ली गई हैं। इसमें प्रेम–वार्ता के आकर्षण से नायिका की मुरली चुराई गई है और संवाद होता है।

व्याख्याः बिहारी कहते हैं कि राधा ने प्रेमवार्ता के लिए नायक की मुरली चुरा ली और छुपा दिया है। कृष्ण को वंशी बहुत प्यारी है। वे जब मुरली माँगते हैं, तो राधा सौगन्ध के साथ कहती है मैंने मुरली नहीं छुपाई है, लेकिन उसकी भौंहें हँस देती है। नायक चोरी समझ जाता है। जब वह देने के लिए कहता है, तो वह नकार देती है।

विशेषः

1. नायिका–नायक की प्रेमलीला का चित्रण है।

2. 'लालच लाल' में अनुप्रास अलंकार है।

3. मिलन श्रृंगार–चित्रण है।

4. श्रृंगार रस का आकर्षक परिपाक है।

5. दोहा छन्द की योजना।

"नेह न नैनन ... ... प्यास बुझाय ।।25।।"

शब्दार्थः नेह = प्रेम; नैनन = आँखों; बलाइ = मुसीबत; नीर = आँसू; लऊ = फिर भी; बुझाइ = बुझती है।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' कृत 'मिलन–विरह' से ली गई हैं। नायिका ने अपनी विरह–वेदना में आँखों की स्थिति का चित्रण किया है।

व्याख्याः बिहारी लिखते हैं कि नायिका अपनी अंतरंग सखी से कहती है कि हे सखी! इस प्रेम का स्वरूप बहुत विचित्र है। आँखों के लिए संकट हो गया है। ये आँसुओं से लगातार भरी रहती है फिर भी उनकी प्यास बुझती ही नहीं, क्योंकि वे कृष्ण के दर्शन की प्यासी हैं।

विशेषः

1. राधा की विरह कथा का वर्णन है।

2. आँखों की अद्भुत स्थिति का चित्रण है।

3. 'नेहु न नैनन' में अनुप्रास अलंकार है।
4. श्रृंगार रस का परिपाक है।
5. मुक्तक काव्य का स्वरूप है।

"याकैं उर ... ... बात बुझाइ ।।26।।"

शब्दार्थः याकैं = उसके; उर = हृदय; लाइ = आग; पजरै = प्रज्वलित होती है या फैलती है; बात = चर्चा, वायु।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'मिलन–विरह' से ली गई हैं। इसमें दो सखियाँ नायिका की विषम विरह अवस्था की चर्चा कर रही हैं।

व्याख्याः नायिका की एक सखी दूसरी सखी से कहती है कि उसके हृदय में कुछ और ही प्रकार की विरह अग्नि जल रही है, जो शीतल गुलाब जल छिड़कने से और ही धधक उठती है। वह प्रियतम के दर्शन रूपी हवा के लगने से ही शांत हो सकती है।

विशेषः

1. विरह की व्यथा का आकर्षक चित्रण है।
2. श्रृंगार रस का परिपाक है।
3. ब्रज भाषा का बोधगम्य रूप है।
4. मुक्तक काव्य का रूप है।
5. दोहा छन्द की योजना।

"कौन मुने ... ... बदरा बदराय ।।27।।"

शब्दार्थः कासौं = किससे; सुरति = रूप; बिसारी = भुला दी; नाह = नाथ (श्रीकृष्ण); बदावदी = शर्त के साथ।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'मिलन–विरह' शीर्षक से ली गई हैं इसमें नायिका की विरह वेदना का मार्मिक चित्रण किया गया है।

व्याख्याः विरहिणी नायिका अपनी सखी से अपनी विरह व्यथा के विषय में कहती है कि मेरी विरह को सुनने वाला कोई नहीं है। मैं किससे कहूँ यह समझ में नहीं आता है। मेरे दुःख दर्द में सहयोगी मेरे प्रियतम ने मुझे भुला दिया है। ऐसे में ये बादल मेरे पीछे पड़े हैं और घिर–घिर कर मेरा प्राण लेने पर उतारूँ है।

विशेषः

1. विरह वेदना का चित्रण है।

2. प्रकृति का उद्दीपन रूप है।
3. ब्रज भाषा का आकर्षक रूप है।
4. 'कासौं कहौं' और 'बदरा बदराह' में अनुप्रास अलंकार है।
5. आकर्षक लयात्मकता और गेयता है।

"कहा कहौं ... ... भई असीस ।।28।।"

शब्दार्थः कहा कहौं = कैसे कहूँ; बाकी = उसकी; प्रानुन = प्राणों; जरिबौ = जलना, मरना; मरिबौ = मर जाना; असीस = आशीर्वाद।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'मिलन–विरह' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें नायिका की विरह–दशा का चित्रण किया गया है। नायिका की एक सखी नायक (श्रीकृष्ण) से नायिका की दयनीय दशा का विवेचन करती हुई कहती है–

व्याख्याः हे कृष्ण! मैं नायिका की विरह दशा का क्या वर्णन करूँ आप तो उसके प्राणों के सहारे हैं। उसे विरह में जलता हुआ देख कर मुझे ऐसा लगता है कि उसका मरना भी अच्छा होगा, क्योंकि मृत्यु के पश्चात उसे विरह से मुक्ति मिल जाएगी।

विशेषः

1. विरह वेदना का मार्मिक चित्रण है।
2. संवादात्मक शैली का प्रयोग है।
3. 'कहा कहौं', 'ज्वाल जरिबो' में अनुप्रास अलंकार है।
4. ब्रज भाषा का बोधगम्य रूप है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"मरनु भलौ ... ... दुखु होह ।।29।।"

शब्दार्थः मरनु = मरना; भलौ = अच्छा; निहचय = निश्चय; दुहुँ = दोनों।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'मिलन–विरह' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें नायिका की विरह–व्यथा का चित्रण है। नायिका ने विरह में जल कर मौत को गले लगा लिया है। तब नायक दुखी है और नायिका की सखियाँ उसे समझा रही हैं–

व्याख्याः नायिका की सखियाँ नायक से कह रही है कि नायिका का विरह–व्यथा में जल कर मरना अच्छा ही रहा है। मरने से एक दुःख से मुक्ति मिल जाती है जबकि विरह में दोनों दुःखों को झेलना पड़ता है। इसे अच्छी प्रकार से समझ कर आपको दुःखी नहीं होना चाहिए।

विशेषः

1. विरह–व्यथा का मार्मिक चित्रण है।

2. संवादात्मक शैली का प्रयोग है।
3. ब्रज भाषा का अनुकूल प्रयोग है।
4. सुन्दर गेयता है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"औंधाई सीसी ... ... न गात ।।30।।"

शब्दार्थः औंधाई = उलटी; लरिव = देखकर; बिललात = बिलखना; बिच = बीच में; गौ = गया।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'मिलन–विरह' शीर्षक से ली गई है इसमें नायिका के विरह तप्त शरीर का चित्रांकन किया गया है। नायिका के विरह–तप्त शरीर की चर्चा करती हुई सखियाँ नायक से कहती हैं–

व्याख्याः विरह में तप्त और लगातार बिलखते हुए देखकर उसकी विरह तप्तता को शांत करने के लिए गुलाब जल की शीशी उसके ऊपर पलट दी गई, किन्तु गुलाब जल की एक बूँद भी उसके शरीर को छू नहीं पाई बीच में ही भाप बन कर उड गया।

विशेषः

1. नायिका के विरह तप्त शरीर का मार्मिक चित्रण है।
2. पूरे दोहे में अतिशयोक्ति अलंकार है।
3. 'बिरह बरनि बिल्लात' में अनुप्रास अलंकार है।
4. शृंगार रस का आकर्षक परिपाक है।
5. ब्रज भाषा का आकर्षक परिपाक है।

"इति आवत ... ... उसासनु साथ ।।31।।"

शब्दार्थः इति = इधर; उत = उधर; छसातक = छः सात; हिडोले = हिंडोला; उसासनु = उच्छ्वास।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'मिलन–विरह' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें नायिका की विरह–व्यथा में अत्यन्त दुबली हो जाने का चित्रण किया गया है। सखी के द्वारा नायिका की विचित्र हुई स्थिति का चित्रण किया जा रहा है।

व्याख्याः नायिका विरह में इतनी दुबली हो गई है कि साँस छोंड़ने पर हवा के प्रवाह में छः सात हाथ पीछे हो जाती है और साँस लेने पर छः सात हाथ खिंच कर आगे चली जाती है। इस प्रकार लम्बी–लम्बी साँसों में हिंडोले पर चढ़ी हुई सी आगे–पीछे आती जाती है।

विशेषः

1. विरह–व्यथा का प्रबल प्रभाव दर्शाया गया है।

2. पूरे दोहे में अतिशयोक्ति अलंकार है।
3. ब्रज भाषा का बोधगम्य रूप है।
4. मुक्तक काव्य रूप है।
5. प्रसाद एवं माधुर्य गुण सम्पन्न शैली का स्वरूप है।

"इन दुखिया ... ... अनदेखैं अकुलांहि ।।32।।"

शब्दार्थः अँखियानु = आँखों; सिरज्योई = बनाया ही; अनदेखे = बिना देखे; अकुलाँहि = व्याकुल होना।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'मिलन–विरह' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें नायिका के मिलन और विरह में प्रेम–प्रवाह का चित्रण किया गया है। नायिका अपनी सखी से इस विषय में कहती है।

व्याख्याः हे सखी! मेरी इन आँखों के लिए विधाता ने सुख बनाया ही नहीं। जब प्रियतम (श्रीकृष्ण) सामने होते है लज्जावश उनकी ओर देख नहीं पाती हैं और जब वे दूर रहते हैं तो उन्हें देखने के लिए व्याकुल रहती है। इस प्रकार इन्हें दुःख ही दुख झेलना है।

विशेषः

1. विरह–वेदना का कष्टप्रद स्वरूप है।
2. 'सुख सिरज्यौंई' में अनुप्रास अलंकार है।
3. ब्रज भाषा का सरल–बोधगम्य रूप है।
4. सूक्ष्म भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग।

çe& lkSUn;Z

"कहा भयौ ... ... उड़ायक हाथ ।।33।।"

शब्दार्थः कहा = क्या; भयौ = हुआ; बीछुरे = बिछुड़ गए; मो = मेरा; मनु = मन; तोमन = तुम्हारा मन; गुड़ी = पतंग; उड़ायक = उड़ाने वाला।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'प्रेम–सौन्दर्य' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें नायिका–नायक के मध्य प्रगाढ़ प्रेम का चित्रण किया गया है। नायिका ने अपने प्रियतम को अपना संदेश लिख कर भेजा है।

व्याख्याः नायिका कहती है कि हम एक दूसरे से बिछुड़ गए हैं, तो कोई बात नहीं, क्योंकि मेरा मन तो तुम्हारे ही पास है। मैं तो उस पतंग के ही समान हूँ, जो कितनी भी दूर हो जाए, किन्तु वह उड़ाने वाले के ही हाथ में होती है। वह डोरी से उड़ाता रहता है।

विशेषः

1. प्रेम का दृढ़ बन्धन–चित्रण है।
2. शृंगार रस का परिपाक है।
3. 'मो मनु' अनुप्रास अलंकार है।
4. ब्रज भाषा का बोधगम्य रूप है।
5. गेयता का सुन्दर स्वरूप है।

"कागद पर ... ... की बात ।।34।।"

शब्दार्थः सँदेसु = संदेश; लजात = लज्जित होना; कहिहैं = कहेगा।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'प्रेम सौन्दर्य' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें भारतीय परंपरा से नायिका और नायक की प्रेमाभिव्यक्ति का संदर्भ प्रस्तुत किया गया है। सवासी नायको नायिका संकेत कर रही है।

व्याख्याः प्रेम के विविध भावों को कागज पर लिख पाना संभव नहीं (क्योंकि आँखों के आंसू भिगा देते हैं और विरह तप्त हाथ कागज को जला देते हैं) यदि किसी के द्वारा अपना संदेश कह कर भेजू तो लज्जा आती है। इसलिए तुम अपने दिल से पूछ लो मेरे दिल की बात बता देंगे क्योंकि दोनों का दिल तो एक हो गया है।

विशेषः

1. भारतीय परंपरा का आदर्श प्रेम–चित्रण।
2. विरह का मार्मिक चित्रण है।
3. शृंगार रस का परिपाक है।
4. ब्रज भाषा का सुन्दर प्रयोग।
5. सुन्दर गेयता और लयात्मकता है।

"दृग उरझत ... ... यह रीति ।।35।।"

शब्दार्थः दृग = आँख; उरझत = उलझते; कुटुम = परिवार; परति = पड़ती है; दई = विधाता; रीति = ढंग।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'प्रेम–सौन्दर्य' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें प्रेम करने वाले और प्रेम के विषय में सामाजिक दृष्टि का परिचय कराया गया है।

व्याख्याः बिहारी कहते हैं कि जब दो प्राणियों की आँखें मिलती हैं, तो दोनों में प्रेम पल्लवित होता है, तो दोनों परिवारों का सम्बन्ध खराब हो जाता है, इसे देख कर चतुर व्यक्ति सह प्रेमभाव का अनुभव

करते है और दुष्ट व्यक्तियों के हृदय में ईर्ष्या उत्पन्न हो जाती है। यह प्रेम–प्रक्रिया की नई दिशाएँ हैं।

विशेषः

1. प्रेम के विषय की स्थितियों का चित्रण है।
2. 'चतुर चित' में अनुप्रास अलंकार है।
3. 'दृग उरझना' और दुर्जन हिये गाँठ पड़ना' मुहावरों का आकर्षक प्रयोग है।
4. ब्रज भाषा का अनुकूल प्रयोग है।
5. माधुर्य और प्रसाद गुण–सम्पन्न शैली का प्रयोग।

"जुवति जोन्ह ... ... सँग जाइ ।।36।।"

शब्दार्थः जुवति = युवती; जोन्ह = ज्योत्स्ना, चाँदनी; लखाइ = दिखाई देना; सौंधे = सुगन्ध; डारैं = सहारे; अली–सखी = भौंरा।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'प्रेम–सौन्दर्य' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें नायिका के गौरांग वर्ण की सुन्दरता की प्रेरक चर्चा की गई है। सखियाँ नायिका की सुन्दरता का वर्णन करती हुई कहती हैं–

व्याख्याः हे सखी! नायिका इतनी गोरी है कि चाँदनी रात की चाँदनी में ऐसे मिल गई है कि दिखाई ही नहीं दे रही है। उसकी सखियाँ साथ चलती हुई देख नहीं पा रही है। उसकी सखियाँ उसके अंगों से निकलने वाली सुगंध के सहारे पीछे–पीछे चली जा रही हैं।

विशेषः

1. परम सुन्दरी गोरे रंग की नायिका का चित्रण है।
2. 'जुबति जोन्ह' में अनुप्रास अलंकार है।
3. अतिशयोक्ति अलंकार है।
4. सुन्दर ब्रज भाषा का स्वरूप है।
5. आकर्षक गेयता है।

"झीने पर ... ... सपल्लव डार ।।37।।"

शब्दार्थः झीने = पतले, बारीक; झुलमुली = झलकती; झलकति = झलकती है; ओप = चमक; सुरतरू = कल्पवृक्ष; लसति = सुशोभित होती है; डार = डाल।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'प्रेम–सौन्दर्य' से ली गई हैं। इसमें नायिका के शारीरिक सौन्दर्य का चित्रांकन किया गया है।

व्याख्याः बिहारी ने लिखा है कि नायिका के सौन्दर्य के विषय में नायक सोच रहा है कि हल्के बारीक वस्त्रों के मध्य से नायिका के शरीर का आकर्षक सौन्दर्य मन में हिलोरे पैदा करता है। उसे देख कर ऐसा लगता है मानो कल्पवृक्ष की पल्लवयुक्त हरी भरी डाली मन रूप समुद्र में लहरा रही है।

विशेषः

1. नायिका के सौन्दर्य का मनभावन चित्रण है।
2. "सुरता की मनु ... " में उत्प्रेक्षा अलंकार है।
3. 'झुलमुली झलकति' में अनुप्रास अलंकार है।
4. ब्रज भाषा का बोधगम्य रूप है।
5. भाषा में मधुर ध्वन्यात्मकता है।
6. दोहा छन्द का प्रयोग।

"तो पर वारौं .... उरबसी–समान ।।38।।"

शब्दार्थः वारौं = न्योछावर करूँ; उरबसी = उर्वशी; सुजान = चातुर्यपूर्ण, चतुर; कैं = के; उर = हृदय।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'पद्य–शिखर' के बिहारी कृत 'प्रेम–सौन्दर्य' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें राधा के परम सौन्दर्य की बहुविधि चर्चा की गई है। मानिनी राधा जिद कर बैठी है। ऐसे में उसकी सखी उसे समझा कर कहती है कि तुम्हारे परम सौन्दर्य को कृष्ण भुला ही नहीं सकते हैं।

व्याख्याः सखी राधा को समझाती हुई कहती है, हे राधा! तुम्हारे सौन्दर्य पर उर्वशी सी अप्सराओं के सौन्दर्य को भी न्योछावर कर दूँ। तुम तो चतुर हो, सोचो तुम तो श्री कृष्ण के हृदय में आभूषण के रूप में स्थान पा चुकी हो, इस कारण वे तुम्हें छोड़ कर किसी की ओर आकर्षित ही नहीं हो सकते हैं।

विशेषः

1. इसमें राधा के परम सौन्दर्य का चित्रण है।
2. उरवसी (उर्वशी) शब्द–प्रयोग में यमक अलंकार है।
3. उरबसी–समान में समस्त पद रचना है।
4. ब्रज भाषा का सरल रूप है।
5. दोहा छन्द का प्रयोग।

"पाइ महावर ... ... भीजत जाइ ।।39।।"

शब्दार्थः पाइ = पैर; महावर = स्त्रियों के पैरों में लगाया जाने वाला लाल–गुलाबी रंग; भीजत = रगड़ना।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'प्रेम–सौंदर्य' से ली गई हैं। इसमें नायिका के सौन्दर्य की चर्चा की गई है। नायिका रक्ति वर्ण बहुत आकर्षक है। नाइन पैरों में रंग लगाने के लिए भ्रमवश पहले लगाया रंग समझ कर उसे छुड़ाने में लगी है। वह उसकी एड़ी का स्वाभाविक रंग है। सखियाँ इस विषय की आपस में चर्चा कर रही हैं–

व्याख्याः नायिका के पैरों में महावर (रंग) लगाने के लिए नाइन उपक्रम कर रही है। वह पैरों के रंक्तिम रंग को पहले लगाई महावर समझ कर उसे छुड़ाने के लिए बार–बार रगड़ रही है, किन्तु वह छूटे कैसे वह तो पैरों का स्वाभाविक रंग है।

विशेषः

1. नायिका का सौन्दर्य–चित्रण है।
2. नायिका के शरीर का रक्तिम स्वरूप का दिव्य–चित्रण है।
3. 'फिर–फिर ... जाइ' भ्रांतिमान अलंकार है।
4. 'फिर–फिर' में पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार है।
5. ब्रज भाषा का सरल रूप है।
6. दोहा छन्द का प्रयोग।

"रंग सिंगार ... ... मंजनु नैन ।।40।।"

शब्दार्थः सिंगार = श्रृंगार; मंजनु = सुन्दर बनाना; कंजनु = कमलों को; भंजनु = हराया; अंजनु = अंजन; रंजन = सुखद लगना; गंजनु = तिरस्कार; खंजनु = विशेष पक्षी।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'प्रेम–सौन्दर्य' से ली गई हैं। इनमें नायिका के सुन्दर और चंचल आँखों का मन–भावन चित्रण किया गया है।

व्याख्याः नायिका की आँखों की प्रशंसा करती हुई सखी कहती है कि नायिका की आँखें श्रृंगार रस से पूर्ण रूपेण सुसज्जित हैं। इसके आगे कमल की सुन्दरता फीकी लगती है। इनके आँखों में अंजन भी नहीं लगा तब भी ये आँखें खंजन की सुन्दर आँखों को मात दे रही है। इस प्रकार नायिका की आँखों की सुन्दरता अद्वितीय है।

विशेषः

1. नायिका की आँखों की अनुपम सुन्दरता का चित्रण है।

2. श्रृंगार रस का सुन्दर परिपाक है।
3. दोहे में सुन्दर ध्वन्यात्मकता है।
4. अनूठा बिम्ब–विधान प्रस्तुत होता है।
5. सरल सुबोध ब्रज भाषा है।
6. दोहा छन्द की योजना।

"सायक–सम .... जलजात लजात ।।41।।"

शब्दार्थः सायक = सान्ध्य समय; मायक = मायावी; त्रिविध रंग = तीन (सफेद, लाल, काला) रंग; झखौ = मछली; बिलखि = रोकर; दुरिजाति = छिप जाती है; जलजात = कमल।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'प्रेम–सौन्दर्य' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें नायिका के सौन्दर्य का चित्रांकन किया गया है। एक सखी नायिका के नेत्रों के सौन्दर्य की चर्चा करती हुए सामने आती है।

व्याख्याः उसके नेत्रों का सौन्दर्य सांध्यकालीन सौन्दर्य की भाँति मायावी हैं। जिस प्रकार सांध्य बेला के प्रकाश में सफेद, लाल और काले तीनों रंगों का आभास होता है, उसी प्रकार इनकी आखें तीनों रंगों से रंगी दिखाई देती हैं। पानी की मछली इनकी आँखों की सुन्दरता को देख कर छिप जाती है और कमल भी इसके सौन्दर्य के सम्मुख लज्जित होता है।

विशेषः

1. आकर्षक सौन्दर्य–चित्रण है।
2. 'सायक सम मायक नयन' में उपमा अलंकार है।
3. दुरि जाना, 'लखि लजात' मुहावरों का सुन्दर प्रयोग है।
4. दूसरी पंक्ति में प्रतीप अलंकार है।
5. ब्रज भाषा का सरल रूप है।
6. दोहा छन्द की योजना।

"अंग–अंग ... ... उज्यारौ गेह ।।42।।"

शब्दार्थः नग = आभूषण में जड़े रत्न; दीपशिखा = दीपक की लव; बढ़ाएँ हूँ = बुझा देने पर भी; बड़ो = बहुत; उज्यारौ = उजाला; गेह = गृह, घर।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'प्रेम–सौन्दर्य' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें नायिका के सौन्दर्य की चर्चा की गई है। यह सौन्दर्य चित्रण नायक के सामने नायिका की सखी द्वारा किया जा रहा है।

व्याख्या: नायिका के गहनों में लगे हुए रत्नों की जगमगाहट से उसका शरीर दीपक की लव के समान आभा प्रकट करता रहता है। इस प्रकार उनके घर में दीपक बुझा देने के बाद भी पूरी जगमगाहट रहती है।

विशेष:

1. नायिका के शारीरिक सौन्दर्य का चमत्कारिक चित्रण है।
2. 'दीपसिखा सी देह' में उपमा अलंकार है।
3. अंग–अंग में पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार है।
4. 'जात जल' में अनुप्रास अलंकार है।
5. ब्रज भाषा का सुबोध रूप है।

"छुटी न सिसुता ... ... ताफता–रँग ।।43।।"

शब्दार्थ: सिसुता = शैशव; ललक्यौ = प्रकट होने लगा; जोबनु = यौवन; दीपति = चमक; दुहून = दीनों; ताफता = विशेष प्रकार के रेशम का रंग।

संदर्भ–प्रसंग: प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'प्रेम–सौन्दर्य' से ली गई हैं। इसमें नायिका के यौवन की देहरी पर कदम रखने वाली वयः संधि उम्र का वर्णन किया गया है। सखी नायिका का सौन्दर्य नायक के समक्ष प्रस्तुत कर रही है।

व्याख्या: नायिका के बचपन के दिन बीत रहे हैं और यौवन की झलक आने लगी है। इस प्रकार वह यौवन की देहरी पर कदम रख रही है और बचपन का भी भाव है। बचपन और यौवन के संधिकाल में उसका शरीर दो रंगों के ताने बाने से बने ताफता रंग के रेशमी कपड़े के समान 'धूपछाहीं' आभा से आकर्षित कर रहा है।

विशेष:

1. इसमें वयः संधि नायिका के सौन्दर्य का आकर्षक चित्रण है।
2. 'दिपति ताफता रंग' में उपमा अलंकार है।
3. ब्रज भाषा का बोधगम्य रूप है।
4. 'दीपति देह दुहून' में अनुप्रास अलंकार है।
5. गेयता और लयात्मकता का आकर्षक रूप है।

"पत्रा हीं तिथि ... ... ओप उजास ।।44।।"

शब्दार्थ: पत्रा = पंचांग; वा = उसके; चहुँ पास = चारों ओर; पून्यौई = पूर्णिमा; आनन = मुख; ओप = चमक; उजास = प्रकाश।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'प्रेम–सौन्दर्य' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें नायिका की मुखाकृति की अपूर्व आभा का मनोहारी चित्रण सखी के द्वारा नायक के सम्मुख किया जा रहा है।

व्याख्याः नायिका के मुख की आभा की जगमगाहट से उसके घर के आस–पास ऐसा प्रकाश फैला रहता है कि लगता है पूर्णमासी ही है। तिथियों का ज्ञान केवल पंचांग देख कर ही होता है। इस प्रकार नायिका के मुख की आभा चांद के समान हो गई है।

विशेषः

1. मुख–सौन्दर्य का चमत्कारिक चित्रण है।
2. 'आनन ओप' में अनुप्रास अलंकार है।
3. अतिशयोक्ति अलंकार है।
4. सरल सुबोध ब्रज भाषा का प्रयोग है।
5. दोहा छन्द की योजना।

"लिखनि बैठि ... ... चितेरे कूर ।।45।।"

शब्दार्थः जाकी = जिसकी; सबी = छवि; गरबगरूर = अत्यधिक घमंड; केते = कितने; चितेरे = चित्रकार; कूर = असफल।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक के 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'प्रेम–सौन्दर्य' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें नायिका के सौन्दर्य के अनूठे रूप का चित्रण सखी के द्वारा नायक के समक्ष किया जा रहा है।

व्याख्याः नायिका का चित्र बनाने के लिए अनेक चित्रकार बहुत ही घमण्ड से बैठे किन्तु कोई भी चित्रकार चित्र खीचने में सफल नहीं हो पाया। क्योंकि नायिका के सौन्दर्य में प्रतिपल वृद्धि होती रहती है इसलिए चित्रकार असफल होते रहे है। ऐसा सुन्दर स्वरूप नायिका का है।

विशेषः

1. इसमें नायिका के विकसित यौवन का आकर्षक चित्रण है।
2. 'गहि–गहि' में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।
3. अनूठी व्यंजना शक्ति का उपयोग है।
4. श्रृंगार रस का आकर्षक परिपाक है।

5. सूक्ष्म भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति है।

6. दोहा छन्द की योजना।

"सोहत ओढैं ... ... पर्‌यौ प्रभात ।।46।।"

शब्दार्थः सोहत = सुशोभित; पीतु = पीत, पीला; पटु = पट, वस्त्र; सलोने = सुन्दर, आकर्षक; सैल = पर्वत; आतप = धूप।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'प्रेम–सौन्दर्य' से ली गई हैं। इसमें राधा अपनी सखियों से कृष्ण के अनूठे सौन्दर्य की चर्चा कर रही है।

व्याख्याः हे सखी, श्री कृष्ण आकर्षक सांवले शरीर पर पीले वस्त्र ऐसे सुशोभित हो रहे हैं, मानो नील मणि पर्वत पर प्रातः कालीन सूर्य की किरणें पड़ रही हों और आकर्षक दृश्य अभर रहा हों।

विशेषः

1. कृष्ण सौन्दर्य का आकर्षक चित्रण है।

2. "मनो नीलमणि सैल ... " में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

3. 'पीतु पर', 'स्याम सलोनैं' में अनुप्रास अलंकार है।

4. ब्रज भाषा का आकर्षक रूप है।

5. दोहा छन्द की योजना।

çÑfr&fp=

"बैठि रही ... ... चाहति छाँह ।।47।।"

शब्दार्थः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'प्रकृति–चित्र' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें प्रकृति में जेष्ठ की तपती दोपहरी का प्रभावी चित्रण किया है।

व्याख्याः जेठ मास की दोपहरी में सभी प्राणी गर्मी से परेशान है छाया भी गर्मी से बचने के लिए घने जंगलों में और घर में आश्रय ढूढ़ रही है। इस प्रकार गर्मी में छाया परेशान हो कर छाया ढूँढ़ रही है।

विशेषः

1. ग्रीष्म ऋतु की तप्त दोपहरी का प्रभावी चित्र है।

2. 'सदन–तन' में रूपक अलंकार है।
3. 'देखि दुपहरी' में अनुप्रास अलंकार है।
4. सूक्ष्म भाव की सजीव प्रस्तुति है।
5. दोहा छंद की योजना।

"रनित भृंग–घंरावली .... कुंज समीरू ।।48।।"

शब्दार्थः रनित = गूँजते हुए; भृंग = भ्रमर; आवतु = आती है; कुंजर = हाथी; समीरू = हवा।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'प्रकृति–चित्र' से ली गई हैं। इसमें प्रकृति में मन्द–मन्द बहती बसंत की हवा का सुन्दर चित्रण किया गया है।

व्याख्याः बसंत ऋतु में भँवरों की गूंज घंटावली की भाँति गूंज रही है, लताओं से मकरन्द के सुभमित कणों के रूप में ऐसा लगता है कि मदमस्त हाथी मंद–मंद गति से चला आ रहा है। इस प्रकार मंद–मंद गति, मधुर ध्वनि और सुरभि के साथ हवा चल रही है।

विशेषः

1. बसंत ऋतु की शीतल वायु का मोहक चित्रांकन है।
2. हवा का मानवीकरण किया गया है।
3. ब्रज भाषा का सरल आकर्षक प्रयोग है।
4. बसंत की हवा को हाथी के रूप में प्रस्तुति से रूपक अलंकार है।
5. 'मंद–मंद' में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।
6. 'कुंजस कुंज' में अनुप्रास अलंकार है।
7. दोह छन्द की योजना।

"कहलाने एकत ... ... दाध–निदाध ।।49।।"

शब्दार्थः एकत = एक साथ; अहि = साँप; मयूर = मोर; बाघ = शेर; दीरध दाध = भयंकर गर्मी; निदाध = गर्मी का मौसम।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के 'बिहारी' कृत 'प्रकृति–चित्र' से ली गई हैं। इसमें ग्रीष्म ऋतु की गर्मी से वन के प्राणियों के लिए तपोवन बन जाने का दृश्य प्रस्तुत किया गया है।

व्याख्याः ग्रीष्म के तपते वातावरण में समग्र पृथ्वी तपोवन सी बन गई है। इसीलिए एक दूसरे के भयंकर शत्रु साँप–मोर, हिरन और बाघ आदि सभी एक साथ रहने लग गये है। अर्थात् भयंकर गर्मी में तपकर शत्रुता भूल गए हैं।

विशेषः

1. ग्रीष्म ऋतु का व्यंजनात्मक चित्रण है।
2. 'मयूर मृग' और 'दीरध दाध' में अनुप्रास अलंकार है।
3. सुन्दर गेयता और लयात्मकता है।
4. आकर्षक बिम्ब–विधान है।
5. दोहा छन्द की योजना।

"सधन कुंज ... ... जमुना के तीर ।।50।।"

शब्दार्थः सधन = घने; सुरभि = सुगंधित; समीर = हवा; अजौ = अब भी; उहि = उस।

संदर्भ–प्रसंगः प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्यपुस्तक 'काव्य–शिखर' के बिहारी कृत 'प्रकृति–चित्र' शीर्षक से ली गई हैं। इसमें यमुना के तीर की हवा में कृष्ण की स्मृति का मनमोहन चित्रांकन है।

व्याख्याः हे सखी! उस यमुना के किनारे की धनी लताओं के झुरमुट की शीतल और सुगंधित हवा आज भी उस दिन की स्मृतियाँ ताजी कर देती हैं जब कृष्ण के साथ विचरण करती थी।

विशेषः

1. यमुना तक का मनमोहक चित्रण है।
2. कृष्ण की मधुर स्मृति का चित्रांकन है।
3. राधा–कृष्ण प्रेम की अभिव्यक्ति है।
4. 'सुखद सीतल सुरभि समीर' में वृत्यानुप्रास अलंकार का सुन्दर प्रयोग।

5. माधुर्य और प्रसाद गुण सम्पन्न शैली का स्वरुप है।
6. आकर्षक अभिव्यंजना है।
7. सुबोध सरल ब्रज भाषा का रूप।

Hkkx & 2

vehj [kqljks

lehk{kk

1.

अमीर खुसरो का सहित्यक परिचय

अमीर खुसरो अनूठी प्रतिभा के साहित्य साधक थे। इनका असली नाम अबुल हसन था। इनका जन्म 1253 ई० में वर्तमान एटा (उत्तर प्रदेश) जिले के पटियाली नामक गाँव में हुआ। इनके पिता सैफुद्दीन महमूद तुर्कों के लाचीन कबीले के सरदार थे। अमीर सैफुद्दीन महमूद मूलतः 'किश मावराउन्नह' के रहने वाले थे। अंग्रेजी अत्याचारों से दुःखी होकर भारत में आकर इन्होंने दिल्ली के बादशाह अल्तमश के दरबार में गौरवपूर्ण पद प्राप्त किया।

बचपन में खुसरो के पिता का निधन किसी लड़ाई में हो गया। फलतः उन्होंने अपने ननिहाल में हिंदी, संस्कृत, पारसी, अरबी, तुर्की आदि भाषाओं में दक्षता प्राप्त की। अमीर खुसरो बीस वर्ष की आयु तक कवि रूप में प्रसिद्ध हो गए। इनके गुरू निजामुद्दीन औलिया थे। इन्होंने गुलाम वंश से लेकर तुलक वंश के आरंभ तक ग्यारह बादशाहों का आश्रय लिया। गुरू की मृत्यु के बाद इनका निधन भी 1325 ई० में ही हुआ। इनकी समाधि हजरत निजामुद्दीन औलिया के समीप ही है।

jpuk,¡

अमीर खुसरो मूलतः फारसी के कवि थे। उनका नाम महाकवि फिरदोसी, शेख सादिक और मार्दव के साथ लिया जाता है। उन्हें हिंद की तुती कहा जाता है। इन्होंने स्वीकार किया है कि वे हिंदी को पानी के सहज प्रवाह के समान बोल सकते है:

'तुर्क–ए–हिन्दुस्तानयम मन हिंदीव गायम चू आब'।

वे हिंदी को तुर्की व फारसी से भी श्रेष्ठ मानते है:

''इस्बात मुफत हिंद व हुज्जत कि राजेह् अस्त।

बर पारसी व तुर्की अज अल्फाजे खुशगवार।।''

अमीर खुसरो की 199 रचनाएँ मानी जाती है, परंतु 28 के आसपास रचनाएँ उपलब्ध है। फारसी में इनकी प्रमुख प्रसिद्ध रचनाएं है।

1. तोहफा हुस्सिग्र
2. वस्तुल हयात
3. गुर्रतुल कमाल
4. करानुसादैन

5. ताजुल मुफ्तूह
6. नुह–सिवहर
7. खम्स–ए–खुसरो
8. तारीख–ए–अलाई
9. एजाज–ए–खुसरवी
10. खिज्रनामा

अमीर खुसरो ने हिंदी में भी अनेक रचनाएं रची हैं। उन्होंने 'गुर्रतुलकमाल' की भूमिका में लिखा हैः

चुं मन तूती–ए–हिंदम अर रासत पुर्सी

ज़मन हिंदवी पुर्स ता नगज़ गोयम।

डा० भोलानाथ तिवारी ने खुसरो की हिंदी कविताओं को बारह वर्गों में रखा है जिनमें प्रमुख हैः

1. पहेलियाँ
2. मुकरियाँ
3. निस्बतें
4. दो सरवुन
5. ढकोसले
6. गीत
7. खालिकबारी

इनके काव्य की निम्नलिखित विशेषताएँ है।

1. **लोक संस्कृतिः** कवि ने तत्कालीन रीतिरिवाजों पर्वो, त्यौहारों आदि का चित्रण अपने गीतों में किया है। उनके गीत आज भी प्रचलित है। 'होली' पर आधारित गीत देखिएः

   'चूडियाँ फीडूँ पलंग पर डारूँ।

   इस चोली को दूँगी मै आग लगाए ।

2. **हास्य व व्यंग्यः** विनोदी प्रकृति के कारण खुसरो ने हास्य व व्यंग्य से भरे पद लिखे जैसेः

   पंडित प्यासा क्यों?

   गधा उदासा क्यों?

   उत्तरः क्योंकी लोटा नहीं था।

3. **अध्यात्मः** कवि की चेतना पर भारतीय व सूफी संतों का प्रभाव था। इनकी आध्यात्मिक लोक चेतना से जुड़ी थी। यह चेतना रहस्यात्मक प्रवृति से युक्त है।

4. **काव्यशिल्पः** कवि ने खडी बोली को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। ये खडी बोली के प्रथम कवि हैं। इन्होंने अंतकारों का सहज व स्वाभाविक प्रयोग किया है। इन्होने मुकरियाँ, दोहा, पहेलियाँ आदि का प्रयोग किया है। इनके पदों में संगीत का पुट है। इंन्होंने कव्वाली की रचना की।

2.

अमीर खुसरो की हिंदी कविता संबंधी कृतियों का उल्लेख

अमीर खुसरो फारसी के सिद्ध कवि थे, लेकिन वे हिंदी को भी अपनी भाषा मानते थे। वह बार–बार कहते हैं– 'सही समझो तो मैं हिंदुस्तान की तूती हूँ। यदि तुम मुझसे मीठीं बातें करना चाहते हो तो हिंदी में बात करो।' वैसे इनकी हिंदी में कोई प्रामाणिक रचना नही मिलती। डा० भोलानाथ तिवारी ने खुसरो की प्राप्त हिन्दी कविताओं को निम्नलिखित बारह वर्गो में रखा है:

1. पहेलियाँ (क) अंतर्लापिका, (ख) बहिर्लाषिका
2. मुकरियाँ 3. निस्बतें
4. दो सरतुनः (क) हिंदी (ख) फारसी
5. ढ़कोसले 6. गीत
7. कव्वाली 8. फारसी– हिंदी मिश्रित छंद 9. सूफी दोहे
10. गज़ल 11. फुटकल छंद 12. खालिकबारी

1. **पहेलियाँ**: पहेलियाँ शब्द प्रहेलिका से निर्मित है। इनकी पहेलियां बौद्धिक व्यायाम से संबद्ध हैं। ये जनसाधारण की वस्तुओं से संबन्धित है। अनकी पहेली दो प्रकार की है: बहिर्लापिका अंतर्लापिका पहेली में उत्तर उसके अंदर तथा बहिर्लापिका में उत्तर बाहर ढूँढा जाता है।

उदाहरण: 1. 'अरथ जो इसका बूझेगा,
मुँह देखो तो सुझेगा।'

2. 'बीसों का सिर कष्ट लिया।
न मारा न खूज किया।'

2. **मुकरियाँ**: मुकरी का अर्थ है कहकर मुकर जाना। इनकी मुकरियाँ चार पंक्तियों की होती है। जिसमे अंतिम पंक्ति में ऊपर निहित है होता है उदाहरण:

''आंख चलावे भौं मटकावें

नाचकूद कर खेल खिलावे,

मन में आवे ले जाऊं अंदर,

ए सखि साजन, ना सखि बंदर।''

3. **निस्बतें**: निस्बत का अर्थ है– सम्बंध। यह अरबी भाषा का शब्द है। इसमें शब्दक्रीड़ा दिखाई देती है। अमीर खुसरो ने हिंदी को यह नई विद्या प्रदान की है जैसे:

'घोड़े और बचाव में क्या निस्बत है?

इनमें धान व जीन का सम्बंध है।'

4. **दो सखुनः** दो सखन का अर्थ है— दो ऐसी छोटी कही गई बातें जिनका अंतर एक ही होता हैं ये एक भाषा में भी हो सकती है तथा दो भाषाओं में भी। उदाहरण—

   'अनार क्यों न चखा?

   वज़ीर क्यों न रखा?

   इसका उत्तर है— दाना न था।

5. **ढकोसलेः** ढकोसले का अर्थ हैः आडम्बर। भोलानाथ तिवारी ने कहा है कि यह विशेष प्रकार की कविता है जिसका कोई निश्चित अर्थ न हो और उससे हँसी आए। उदाहरण—
   'भादों पकी पीप ली, झड़—झड़ पड़े कपास,
   बी मेहतरानी दाल पकाओगी या नंगा ही सो रहूँ।'

6. **गीतः** अमीर खुसरो संगीत के ज्ञाता थे। इन्होने सूफी भावना से प्रेरित होकर गीत लिखे जैसेः

वन में पंछी भये बावरे

ऐसी बीन बजाई साँवरे

ताक ताक की तान निराली

झूम रही सब वन की डाली।

7. **कव्वाली**ः कव्वाली का अर्थ हैः प्रशंसा करना। यह एक विशेष प्रकार की धुन है जिसमें गज़ल, कसीदा या रूबाई गाई जाती है।

8. **खालिकबारीः** यह एक प्रकार पर्यावाची कोश है। यह खुसरो की बहुचर्चित रचना है। इसमें 215 शेयर हैं। हर शेयर में तुर्की, अरबी और फारसी शब्दों में हिंदी पर्याय दिय गए हैं शब्दों के अतिरिक्त वाक्यांश भी दिये गए हे। जैसेः

'खंजरों शम्शीरों सम सामस्त तेग।

हिंदवी खांडा कहा वे उत्मन येग।।''

इसमें खंजर व समसाम, अरबी शब्द है, शम्शीर और तेग, फारसी के तथा खांडा हिंदी के शब्द है।

डा० रमाशंकर त्रिपाठी ने इस रचना के विषय में लिखा हैः

''खालिकबारी अपने समय की अत्याधिक लोकप्रिय रचना सिद्ध हुई जो एक साथ दो—दो अभीष्टों की सहज अवप्ति करा देती थी एक तरह कविता का आनंद और दूसरी तरफ भाषा का ज्ञान यानि आम के आम गुठलियों के दाम। घर की बोली को काव्यात्मक रीति में मदरसे में पढ़ना और समझना सचमुच बच्चों के लिए रोचक कथा—फलतः थोडे ही समय में खलिकबारी' देश के दूसरे दूर और

करीब के भागों में सहज ही पहुँच गई। इसमें फरसी शब्दों का जो प्रचुर भंडार है। वह भी हिंदी की शब्द संपदा को बहाने वाला है ''

वस्तुतः अमीर खुसरो की कविता लोकजीवन से संबंद्ध ही नहीं, बल्कि लोकजिह्वा पर भी विध्यमान है। खड़ी बोली के विकास में इनका योगदान अविस्मरणीय है।

3.

अमीर खुसरो की कविता की वस्तुगत प्रवृत्तियाँ

अमीर खुसरो बहुआयामी प्रतिभ के धनी है। इन्होंने अपनी कविता में प्रेम व सौंदर्य, लोकसंस्कृति, हास्य–व्यंग्य, प्रकृति का सुंदर निरुपण किया है। उनके काव्य की निम्नलिखित प्रमुख प्रवृतियाँ हैः

1. सौंदर्य और प्रेम भावना।
2. सांस्कृतिक सद्भावना।
3. हास्य और व्यंग्य की उद्भावना।
4. आध्यात्मिक चेतना।

1. **सौंदर्य और प्रेम भावनाः** कवि प्रेम और सौंदर्य के विशिष्ट रचनाकार है। प्रिया के दर्शन मात्र से ये चिंतामुक्त हो जाते है। प्रिय बिना इनका हृदय व्याकुल रहता है। इन्होंने बादल, बिजली, वन, पशु, पक्षी, नदी, फल–फूल आदि के रूपों का सुंदर वर्णन किया है। प्रेम सम्बधी इनका पद प्रष्टण्य हैः

   'छापा तिलकतज दीन्हीं रे, नैना मिला के

   प्रेमवरी का गढ़वा पिला के,

   मतवारी कर दीन्हीं रे, मौ से नैना मिला के,

   खुसरो निजाम पर बलि–बलि जाइए,

   और सुहागन कीन्हीं रे, मौ से नैना मिला के।

2. **सांस्कृतिक सद्भावनाः** अमीर खुसरो पूर्णतः भारतीयता के रंग में डूबे हुए कवि थे। वे सांस्कृतिक सद्भावना के अनुपम रचनाकार हैं वे 'गंगा–जमुनी' व्यक्तित्व और कृतित्व के अनुठे सिद्धसर्जक है। इनका जन्म गंगा तट पर हुआ तथा यमुना तट (दिल्ली) में निधन हुआ। इस रचनाकार ने हिंदुस्तानी तहजीब को अनोखी मिसाल कायम की हैं इन्होंने हिंदी और हिंद का गौरवगान किया हैः

   'इस्बात मुफ्त हिंद व हुजत कि राजेह अस्त।

   बार पारसी व तुर्की अज अल्फजें खुशगवार।।'

कवि ने भारत के पर्वो, उत्सवों, रीतिरिवाजों आदि के सम्बंध में अनेक गीत लिखे। उनके गीत हिंदु–मुस्लिमों में गाए जाते है। उदाहरण–

'अम्मा मेरे बाबा को भेजो कि सावन आया।

बेटी तेरा बाजू तो बूढ़ा री, कि सावन आया।'

3. **हास्य और व्यंग्य की उदृभावनाः** हास्य और व्यंग्य की प्रवृति कवि की रचनाओं में लक्षित होती है। दरबार ने उनकी इस प्रकृति को पैदा किया तथा उसका विकास किया। इसके माध्यम से कवि ने बंधुत्त्व, सद्भावना, आशा, मैत्री आदि भागों को संप्रेषित किया है। इन्होंने पहेलियों, मुकरियों, डकोसलों आदि के माध्यम से कौतूहल व हास्य की सृजना की है। डा० रामकुमार वर्मा ने कहा है, ''चारणकालीन रक्त रंजित इतिहास में जब पश्चिम के चारणों की डिंगल कविता उदृधत स्वरों में गूजँ रही थी और उसकी प्रतिध्वनि और भी उग्र थी पूर्व में गौरखा की गंभीर धार्मिक प्रकृति हिंदी आत्मशासन की शिक्षा दे रही थी। उस काल में अमीर खुसरो की विनोदपूर्ण प्रकृति हिंदी साहित्य के इतिहास की एक महान् निधि है।'' इन्होने जूता, नाखून दर्पण, पायजामा, पतंगा आदि विषयों पर अपनी रोचक लेखनी चलाई। जैसेः

क. समोसा क्यों न खाया?

जूता क्यों न चढ़ाया?

''क्योंकि तला न था।''

ख. 'खीर पकाई जतन से, चारर्वा चलाय।

आया कुत्ता खा गया, तू बैठी ढोल बजाय।।'

4. **आध्यात्मिक चेतनाः** कवि की आध्यात्मिक चेतना पर भारतीय व सूफी विचारधारा का प्रभाव था। इनकी इस चेतना से परवर्ती कवि कबीर व जायसी—दोनों प्रभावित हुए। इनकी चेतना लोक चेतना से भरपूर अभिषिक्त हैं इसमें प्रकृति, रहस्य, जीवन, समाज का यथार्थ उन्मेष देखा जा सकता है। इनके द्वारा रचित 'बाबुल का गीत' इस चेतना को उजागर करता है।

'काहे को बियाहे विदेश, सुन बाबुल मोरे।

हम तो बाबुल तोरे बाग की कोयलिया,

कहकत घर—घर जाऊँ, सुन बाबुल मोरे।

हम तो बाबुल तोरे खेतों की चिड़िया,

चुग्गा चुगत उड़ि जाऊँ, सुन बाबुल मोरे।'

निष्कर्षतः अमीर खुसरो ने सौंदर्य, संस्कृति, प्रकृति, हास्य—व्यंग्य आदि विषयों को अपनी अनुभूति के केंद्र में रखकर भारतवर्ष को कालजयी रचनाएं प्रदान की है।

4.

अमीर खुसरो के काव्यशिल्प

अमीर खुसरो का शिल्पविधान वस्तुवर्णन की तरह ही विशाल व नवीन है। इनके काव्यशिल्प की निम्नलिखित प्रवृतियाँ हैः

1. **काव्यभाषाः** भाषा पर कवि का आसाधारण अधिकार था। उन्होंने कविता को लोक से जोड़ने का प्रयास किया। इनकी भाषा हिंदवी या खड़ी बोली है जो उस समय दिल्ली के आसपास बोली जाती थी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा हैः–

   ''खुसरो के समय में बोलचाल की स्वाभाविक भाषा घिसकर बहुत कुछ उसी रूप में आ गई थी जिस रूप में खुसरो के काव्य में मिलती है। कवि में सामान्य बोलचाल के शब्दों का प्रयोग किया हैं इनकी भाषा पर बोलियों का भी प्रभाव देखा जा सकता है। इनकी रचनाओं में पद दोंहे, गीत, गजल आदि काव्यरूपों का विधान किया है। ये खड़ी बोली के प्रथम कवि है। इन्होंने ब्रज, अरबी, फारसी के शब्दों का भी प्रयोंग किया है।

2. **अलंकार योजनाः** कवि अलंकारवादी नहीं है। इनकी कविताओं में अलंकार का अनायास व्यवहार देखा जा सकता है। इन्होने उपमा, रूपक, श्लेष, अनुप्रास, विरोधामास आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। जैसेः

अनुप्रासः

'बखत वे बखत मोच बाकी आस।

रात–दिन वह रहवत पास।।

मेरे मन को सब करत है काम।

ऐ सखि साजन, ना सखि राम।।'

उक्ति–वैचित्यः

'पान सड़ा क्यों?

घोड़ा अड़ा क्यों?'

3. **नवीन काव्यशैली का प्रयोगः** कवि ने हिंदी में पहली बार दोहा, पहेलियाँ, मुकरियाँ, सखुन आदि का प्रयोग किया। इन्होनें ध्रुपद के समरूप कव्वाली की रचना की। इन्होने इनमें पसीना, झूला, जामुन, ओला, मोटी आदि सामान्य व दैनिक प्रयोग के शब्दों का इस्तेमाल किया है। जैसेः

दोहाः

गोरी सोवे सेज पर, मुख पर डारे केस,

चल खुसरो धर आपने, रैन मई चहुं देस।।

मुकरी

वह आवे तब शादी होय।

उस बिन और न दूजा कोय।।

मीठे लागैं उसके बोल।

ऐ सखि साजन? ना सखि 'ढोल'।।

4. **संगीतात्मकताः** अमीर खुसरो संगीत शास्त्र के ज्ञाता थे। इन्होंने ख्याल, ध्रुपद, छंद, तराना, कोला आदि राग खोजे है। इन्होंने तबला, ढोल आदि का अविष्कार किया। इन्होंने ही कव्वाली की रचना की। इनका होली पर्व का गीत दर्शनीय हैः

'चूडियाँ फोडूँ पलंग पर डारूँ।

इस चोली को दूँगी मै आग लगाए।।

कैसे धर धीनी बवस मोरी माल।

सूनी सेज डरावन लागे,

विरहा अग्नि मोहे डुंस–डंस जाए।

मोरा जाबना नवेल ए भयो गुलाल।'

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि खुसरो की अभिव्यक्ति शक्ति इनकी संवेदना को अधिक व्यापक व प्रभावशाली बनाती है। इन्हे छंद, शैली, व संगीत–सृष्टि में सफलता मिली है। डा० मुजीव के अनुसार "कितनी स्वाभाविकता और सहजता है उनकी भाषा में। इन्होंने कलात्मक प्रदर्शन नहीं किया, इसलिए उनकी कविता में आकर्षण है, मधुरता है"

5.

अमीर खुसरो के काव्य की विशेषताएँ

अमीर खुसरो हिंदी साहित्य के श्रेष्ठ कवियों में से ऐक है। इनका साहित्य जीवन के प्रति साहित्य जीवन के प्रति स्वस्थ व सुंदर दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। इनके काव्य में सर्वत्र जनसामान्य की भावनाओं का चित्रण है। इनके काव्य की निम्नलिखित विशेषताएँ हैः

1. आध्यात्मिक चेतना।
2. हास्य व व्यंग्य की उदभावना।
3. लोकसंस्कृति का चित्रण।
4. काव्यभाषा
5. अलंकार व छंद
6. संगीतात्मकता

1. **आध्यात्मिक चेतनाः** अमीर खुसरो की अध्यात्म चेतना रहस्यात्मकता से युक्त है। इन पर भारतीय व सूफी विचाधारा का प्रभाव है। इनकी अध्यात्म लोकचेतना से जुड़ा है। इस उदाहरण से कवि की अध्यात्म चेतना का आभास मिलता है।

   'दइयारी मोहे भिजोया री

   शाम निजाम के रंग में

   कपड़े रंगे से कुछ न होत है

   या रंग मने तन को डुबोया री।।'

2. **हास्य व व्यंग्य की उद्भावनाः** खुसरो विनोदी प्रवृति के व्यक्ति थे। उनका लक्ष्य था कि लोग उनकी रचनाएँ पढ़कर मन में उल्लास भर सके। इसके अतिरिक्त, उन्होंने हास्य के साथ–साथ तत्कालीन विषमता पर भी व्यंग्य किया है। जैसे–लोगों की धन के पीछे भागने की प्रवृति पर वे एक पहेली में कहते हैः

   'लोह के चने दाँत तले पाते है उसकों ।

   खाया वह नहीं जाता, पर खाते है उसकों।।

3. **लोकसंस्कृति का चित्रणः** अमीर खुसरो ने भारीय संस्कृति का अद्भुत वर्णन किया है। इन्होने एक ओर आत्मा–परमात्मा के मिलन का वर्णन किया है वहीं इन्होंने भारतीय पर्व, त्यौहार, रीतिरिवाजों को गीतो में व्यक्त किया है। इन्होंने होली, दीवाली आदि त्यौहारों पर गीत लिखे जो आज भी

उत्तरप्रदेश में गाए जाते हैं इन्होंने प्रकृति के विविध रूपों का वर्णन किया है। मोर का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है।

'एक जानवर रंगरंगीला

बिन मारे वह रोवे,

उसके सिर पर तीन तिलाके,

बिना बताये सोवे।

4. **काव्यभाषाः** कवि ने हिंदी की खड़ी बोली का सरल व स्वाभाविक रूप प्रस्तुत किया। उन्होंने खड़ी बोली को ही अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया क्योंकि यह जनसाधारण के काम में आती थी। वे कहते है

'फारसी बोली आई ना।

तुर्की ढूंढ़ी पाई ना ।

हिंदी बोली आरसी आए।

खुसरो कहे कोई न बताए।'

इन्होंने हिंदी में गीत दोहे, मुकरियां इत्यादि लिखे। इन्होंने प्रतिदिन काम आने वाली वस्तुओं को अपनी कविताओं में स्थान देते थे।

खालिकबारीः नामक पुस्तक में अरबी–फारसी शब्दों को हिंदी में लाया गया था।

5. **अलंकार व छंदः** अमीरखुसरो की कविताओं में अलंकारो का प्रयोग उद्‌देश्य के लिए हुआ है, न कि अलंकरण हेतु। इनका सहज प्रयोग किया गया है। कवि के प्रिय अलंकार है अनुप्रास, रूपक, यमक, श्लेष, विरोधामास आदि।

विरोधाभासः

एक थाल मोती से भरा,

सबके सिर पर औधा धरा।

चारों ओर वह थाली फिरै,

मोती वा से एक न गिरै।।

कवि ने पद, दोहे, गीत, गजल, पहेलियाँ मुकरियां आदि का प्रयोग किया है। इन्होने मुक्त छंद विधान को माना है।

6. **संगीतात्मकताः** कवि संगीत सिद्धहस्त थे। इन्होंने ध्रुपद के समान कव्वाली की रचना की। इन्होने ख्याल, तराना आदि रागों का निर्माण किया। इनके काव्य में संगीत का अत्याधिक प्रभाव है। एक उदाहरण देखिएः

बहुत रही बाबुल घर दुलाहिन, चल, तेरे पी ने बुलाई।

बहुत ढोल ढोली सखियन सो, अंत करी लरिकाई।।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कवि ने अपनी रचनाओं में भारतीय प्रकृति, सौंदर्य, संस्कृति को स्थान दिया है तथा खड़ी बोली का प्रवर्तक होने का श्रेय प्राप्त किया है।

fo|kifr

leh{kk

1.

विद्यापति का साहित्यक परिचय

thou ifjp;

अन्य प्राचीन कवियों की भांति महाकवि विद्‌यापत्ति का जीवनकृत भी स्पष्ट नही है। सामान्यतया यह मान्यता है कि इनका जन्म बिहार राज्य के दरभंगा जिले में बिसफी नामक गाँव में 1360 ई० में हुआ। इनके पिता का नाम गणपति ठाकुर तथा माता का नाम गंगो देवी था। इनके पिता संस्कृत के सुविख्यात विद्ववान थे। इनके गुरू पंडित हरि मिश्र थे। इनकी पत्नी का नाम चंदनदेवी या चंपति देवी था। इनके तीन पुत्र जिनके नाम हैः वाचस्पति ठाकुर, हरपति ठाकुर और नरपति ठाकुर तथा पुत्री हुल्लहि थी।

विद्यापति अनेक राजाओं के आश्रय में रहे। वे कीर्तिसिंह देवासिंह, शिवसिंह, पदमासैह, भणसिंह, हरीसिंह आदि राजाओं के आश्रय में रहे। शिवसिंह पिथिला के कई वर्ष तक शासक रहे तथा यह काल विद्यापति के जीवन का आकर्षककाल था। इनका देहावसान 1450 ई० का माना जाता है जिसकी पुष्टि निम्नलिखित पंक्तियों से की जाती है।

माय बाप जो सदगति पाव।

संतति को अनुपम सुख आव।।

विद्यापति आयु अवसान।

कातिक धवल त्रयोंदसि जान।

jpuk,¡

विद्यापति बहुमुखी प्रतिभा के रचनाकार थे। इन्हें अनेक उपाधियाँ दी गई, जैसे–अभिनव जयदेव, कविरंजन, कवि शेखर, राजपंडित आदि। इनकी रचनाएँ संस्कृत, अवहट और मैथिली भाषाओं में प्राप्त होती है। रचनाओं का विवरण इस प्रकार है।

संस्कृत की रचनाएँः

1. भूपरिक्रमा
2. पुरूषपरीक्षा

3. लिखनावली
4. शैव सर्वस्वसार
5. शैवसर्वस्वसार–प्रमाणभूत पुराणसंग्रह
6. गंगा वाक्यावली
7. विभागसार
8. दानवाक्यावली
9. दुर्गाभक्तितरांगिणी
10. गया पत्तलक
11. वर्षकृत्य
12. मफिमंजरी

अठहट्ठ की रचनाएँ–

1. कीर्तिलता
2. कीर्तिपताका

eFkyh dh jpuk,/

इसमें विद्यापति द्वारा रचित पद है जिनकी संख्या लगभग एक हजार है। ये गीत इनकी अमरता के कारक है। इनमें संयोग व वियोग श्रृंगार का वर्णन हुआ है। राधाकृष्ण की सुंदरता व प्रेम की महता दी गई। एकांकीः गोरक्ष विजय–इस कृति में संवाद संस्कृत और प्राकृत में है और गीत मैथिली भाषा में है।

कवि के काव्य की निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ हैः

1. श्रृंगारिकता
2. गीतात्मकता
3. भक्ति
4. काव्यशिल्प

1. **श्रृंगरिकताः** विद्यापति सौंदर्य में रमे थे। इन्होने हरिकथा के समान सौंदर्य कथा लिखी। इन्होने राधाकृष्ण के माध्यम से श्रृंगार के संयोग व वियोग–दोनों पक्षों को कहा है। इन्होंने संयोग पक्ष का चित्रण अधिक किया है

   'कि आरे नव यौवन अभिरामा।

   जत देखत तत कहएज परिअ छुओ अनुपम इक ठामा।।'

2. **गीतात्मकताः** कवि के गीतो के गीतों का मुख्य विषय प्रेम, मिलन, विनय, सौन्दर्य, संसार की नश्वरता आदि है। इनके गतिकाव्य में वैयक्तिकता, रागात्मकता, संगीतात्मकता, भावात्मकता अदि गुण विद्यमान है। इन्हें हिंदी गीतिकाव्य का प्रवर्त्तक माना जाता है।

3. **भक्तिः** कवि ने राधाकृष्ण, शिव, सीताराज, गणेश आदि की स्तुति लिखी है। इनके पद भक्ति से परिपूर्ण है। इनकी भक्ति में समर्थन भाव दृष्टण्य हैः

   'माधव बहुत मिनती कर तोय।

   देई तुलसी तिल देह समर्पिलु, दया जनि छाड़ विमोय।

4. **काव्यशिल्पः** कवि का संस्कृत अवहट्ठ व मैथिली भाषा पर एकाधिकार था। इन्होने अलंकारों, बिंबों, मुहावरों आदि से अपनी अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाया।

2.

विद्यापति की भक्तिभावना

विद्यापति की भक्तिभावना के विषय में मतभेद है। इनकी कविताओं से इनकी भक्तिभावना का पता चलता है। इन्होंने राधाकृष्ण, सीताराम, शिवशक्ति, गंगा–भैरवी, गणेश आदि देवी–देवताओं से संबधित अनेक पद लिखे हैं। इनके पद सहज भक्ति से परिपूर्ण हैं। उनके भक्ति संबधी पदों को देखकर कहा जा सकता है कि उनके कुछ पद कबीर, सूर, तुलसी जैसे महाकवियों के समक्ष है। उनकी भक्तिभावना की निम्नलिखित विशेषताएँ है।

lei/.k Hkko

विद्यापति प्रभु के सामने अपने हृदय की भावना व्यक्त करते है तथा ईश्वर को सर्वगुणसम्पन्न मानते है। वे प्रभु के समक्ष आत्म–समर्पण का भाव व्यक्त करते है। निम्न पंक्तियों में कवि संसार रूपी सागर को प्राप्त करने के लिए ईश्वर का सहारा लेने हेतु व्याकुल है।

''माधव बहुत मिनति कर तोय।

देई तुलसी तिल देह समर्पिलुं, दया जानि छाड़बि मोय।।

गनइते दोसा गुन लेस न पाओबि, जब तुहुँ करबि विचार।

तुहूँ जगन्नाथ जागते कहायसि, जग बाहिर नहि मुञि छार।

किए मानुस पसु पाखिए जनमिए, अथवा कीट पतंग।

करम विपाक गतागत पुन–पुन, मति रह तुअ परसंग।

भनइ विद्यापति अतिसय कातर, तरइत इह भव सिंधु।

तुअ पद पल्लव करि अवलम्बन, तिल एक देह दिन बन्धु।।''

iHk/&uke dk efgek xku

कवि ने ईश्वर के नाम की तुलना अन्य वस्तुओं से कर उसकी श्रेष्ठता सिद्ध की है। संसार की सब वस्तुएँ ईश्वर के समक्ष तुच्छ है। इन्होंने देवों के साथ जानकी, भैरवी गंगा, दुर्गा आदि देवियों की भक्ति की है। दुर्गा का गुणगान करते हुए वे लिखते हैः

'कनक भूधर–शिखर वासिनी,

चौद्रिकाचय चारू हासिनी,

दशन कोटी विकास बकिंम तुलित चंदुकले।'

ek{k

कवि ने अपनी रचनाओं में मोक्ष प्राप्ति का मार्ग बताया है। उन्होने यमराज के भय से मुक्ति पाने हेतु प्रभु की शरण में जाना उचित बताया है। इसके बिना जीव की मुक्ति नहीं होती। वह भगवान शंकर से वंदना करते हुए कहता हैः

'हर जनि बिसरब मो ममिता।

हम नर अधम परम पतिता।

तुम सम अधम उधार न दोसर,

हम सस जग नहिं, पतिता।

वे ईश्वर को अपनी मुक्ति का भार सौंप देतें हैः

'भवहि विद्यापति शेष शमन भय तुम बिनु गति नाहि आरा।

आदि–अनादिक नाथ कहाओसि। अब तारण भार तोहारा।।'

ik'pkrki

कवि का विचार है कि अंत समय में मनुष्य के कर्म ही उसका साथ देते है। यदि मनुष्य समय रहते प्रभु–स्मरण नहीं करते और बाद में पश्चाताप करते हैः

'जतने जतेक धन पापे बटोरलहुँ, मिलि मिलि परिजन खाय।

मरमक बेरि हेरि कोई न पूछा। करम संगे चलि जाय।।'

3.

विद्यापति सौंदर्य के सिद्ध कवि हैं

सौंदर्य वह है जो मन में प्रेम और आकर्षण उत्पन्न करे। सौंदर्य कभी पुराना नही पड़ता। कवि ने कहा है जो पल–पल होता रहे वह सौंदर्य है सुंदरता चाहे किसी वस्तु या रूप में हो, मन को शन्ति सुख प्रदान करने वाली होती है। विद्यापति का दरबार में रहना, सौंदर्य का शरीरी–मासंल वर्णन करना, वयः संधि का निरूपण करना आदि इन्हें श्रृंगारी कवियों की परिधि में लाता है। इन्होंने हरिकथा के समान अनंत सौंदर्यकथा की व्यंजना ही है। उन्होने लिखा है।

सखि हे, कि पुछासि अनुभव मोय।

से हो पिरीत अनुराग बखनइत।

तिले–तिले नूतन होय।

जनम अवधि हम रूप निहारल

नयन न तिरपित मेल।।

कवि ने सौंदर्य निम्नलिखित रूपों में व्यक्त किया हैः

1. वयःसंधि वर्णन
2. सद्यः स्नाता वर्णन
3. नखशिख वर्णन
4. मिलन वर्णन
5. प्रकृति चित्रण

o;% lf/k o.kU

कवि ने नायिका की बाल्यवस्था समाप्त होने पर युवावस्था की शुरूआत के समय होने वाले परिवर्तनों का हृदयस्पर्शी वर्णन किया। इस परिवर्तन से उसके स्वभाव व हावभाव में परिवर्तन आने लगता है

"सैसव–जीवन दुहु मिलि गेल।

सुवनक पथ दुहु लोचन लेल।।

वचनक चातुरि लहु–लहु हास।

धरालिए चाँद कएल परगास।।

l?kLukrk o.kZu

कवि ने नायिका की पूर्ण यौवनावस्था का चित्रण किया है। उन्होने नायिका के अनुपम सौंदर्य का सुक्ष्म चित्र अंकित किए है।

'लोल कपोल ललित भल कुंडल

अधर बिंब अध जाई।

भौंह भमर नासापुट सुंदर

से देखि कीर लजाई ।।

u[kf'k[k o.kZu

विद्यापति ने राधा के माध्यम से नायिका के नखशिख का वर्णन किया है। नखशिख वर्णन में नायिका के कान, आँख, नाक, माथा, भौंह, कपोल, अरोज, कटि, हाथ, पैर आदि का आकर्षण वर्णन किया जाता है। निम्नलिखित पंक्तियों में राधा के रूप का मादक वर्णन किया गया है:

'सरस–परस खसु अम्बार रे,

देखल धनि देह।

नव जलधर तर जमकाए रे

जन विजुरी–रेह।।

आज देखत धनि जाइत रे

मोहि उपजत रंग।।

feyu o.kZu

कवि ने राधाकृष्ण की मिलन क्रीड़ाओं में मांसलता और स्थूलता इतने उत्कृषत रूप में उभारी है। जिसने सौंदर्य का अद्भुत वर्णन किया गया है। इस वर्णन में प्रसाधनिक सौंदर्य, चेष्टागत सौंदर्य और आंतरिक सौंदर्य व्यक्त हुआ है जैसे:

'मदन भंडार सुरत रस आनी। मोहरें मुदल अछ अवसर जानो।

भनई विद्यापति नव अनुरगी। संहिअ पराभव पिअहित लागी।।

iकृfr fp=.k

सच्चा सौंदर्य प्रकृति में होता है। कवि ने प्रकृति के आलंबन और उद्दीपन रूप को प्रस्तुत किया है। इन्होंने बसंत व शरद ऋतुओं का बहुत सुंदर वर्णन किया है। इन्होने अचेतन पर चेतन का आरोप किया है:

'सिखिकुल नाचत अलिकल जंत्र।

द्विज कुल आन पढ आसिरण मंत्र।।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि विद्यापति सौंदर्य के सच्चे सार्जक, साधक व आराधक थे। 'अपरूव के विहि', कोई दूसरा नहीं, वरन् कवि स्वयं था। उन्होंने ऐसे सौंदर्य की सर्जना की जो दृष्टा को विस्मित, चकित और अतृप्त करता है।

4.

विद्यापति की गीति–योजना

विद्यापति को हिंदी गीतिकाव्य का प्रवर्त्तक माना जाता है। गीतों में भावों की अधिकता की अवस्था में किसी एक विचार, भाव या दशा को प्रकट किया जाता है। विद्यापति ने अपने काव्य में चाहे श्रृंगार मूलक पद लिखे या भक्तिमूलक, सौंदर्यमूलक लिखे या संस्कृति मूलक–सभी पद गीतात्मक है। वे अपनी मधुरता, मदिरता तथा प्रभविष्णुता के लिए विख्यात है इसके गीतों की निम्नलिखित विशेषता हैः

1. वैयक्तिकता
2. काल्पनिकता
3. भावएकता
4. संक्षिप्तता
5. शैलीगत सुकुमारता
6. संगीतात्मकता
7. लोकतत्व
8. रागात्मकता

o;fDrdrk

कवि ने अपने गीतों के माध्यम से अपने सुख–दुःखों को व्यक्त किया है। कवि ने स्तुति व विनय के पदों में अपनी अभिव्यक्ति की है।

'मनह विद्यापति अतिसय कातर, तरइते इव भव सिंधु।

तुआ पद पल्लव करि अवंबन, तिल एक देहि दिन बंधु।।'

dkYifudrk

कवि ने अपनी कल्पना शक्ति द्वारा अज्ञात व दुर्लभ वस्तुओं को गीतों में पिरोया। इन्होने मनोरम बिंबों के माध्यम से अपने कथ्य को चित्रित किया। राधा की सुंदरता का चित्रण करने में उन्होंने अपनी सारी कल्पना को लगा दिया।

'चाँद सार लए मुख घटना करू लोचन चकित चकोरें।

अभिय घोय आंचर धानि पोछलि दहंड दिति भेल उजोरे।।'

Hkko,drk

भावएकता का अभिप्राय है समय गीत में एक ही भाव। यदि किसी गीत में एक से अधिक भाव हो, तो वह गीत निष्प्राण हो जाता है। मानव ह्दय में भी एक बार में एक ही भाव उत्पन्न होता है। कवि के

गीतों में एक भाव पाया जाता है चाहे यह भाव शृंगार, प्रेम, प्रकृति, वियोग आदि किसी का भी हो। वियोग पक्ष को देखिएः

'देखलि दूषलि रूपलि भूषलि, देखलि सखी समेते।

फूजलि कँवारि न बाँध समारि, सुंदरि अंबंध ऐते।।

lf{klrrk

गीत का आकार अधिक बड़ा नहीं होना चाहिए। लघु आकार के गीत ज्यादा प्रभावशाली होते हैं। विद्यापति के गीत संक्षिप्त व सुंदर भावों को व्यक्त करने में सक्षम है। इनके वियोग, प्रेम, प्रकृति आदि के गीत लघु आकार के है। वयः संधि का संक्षिप्त चित्र दर्शनीय है।

'खने खने नयन कौन अनुसरई।

खने खने बसन धूलि तबु भरई।।

'kyhxr ldekjrk

कवि ने कोमलकांत पदों का प्रयोग किया है। मैथिली भाषा में आनुनासिक ध्वनियों की प्रचुरता होती है। कवि के पदों में स्वरमैत्री, और अनुनासिक वर्णों की अधिकता है। गीतों में सर्वत्र कोमलता व मधुरता विद्यमान हैः

'नव वृंदावन नव नव नरूगम, नव नव विकसित फूल।

नवल वसन्त नवल मलयानिल, मातल नव अलि कूल।।'

lxhrkRedrk

संगीत गीतिकाव्य का प्राण है। विद्यापति संगीत के आचार्य है। इनके गीतों में लय और ताल है। बाजत द्रिगि द्रिगि धौद्रिक द्विकिया' इनका प्रसिद्ध गीत है।

ykdrRo

विद्यापति ने अपने गीतों में लोकचेतना को स्थान दिया है। वे मिथिला के कवि है। आज भी मिथिलावासी अपने शुभ अवसरों पर विद्यापति के गीत गाते है।

jkxkRedrk

विद्यापति के काव्य में रागतत्व की अधिकता है। हृदय में भावों की अधिकता के कारण रागों की उत्पति होती है।

विद्यापति के गीतों के विविध विषय है। इन्होंने प्रेम, मिलन, विरह, विनय, संसार की असारता, सौंदर्य आदि से संबन्धित गीतों की रचना की। इनके गीतों में मार्मिकता, कल्पना की कमनीयता, प्रेमसौंदर्य की सजलता, लोकसंवेदना, और अभिव्यक्ति की स्वच्छता अत्यंत प्रभावशाली है।

5.

विद्यापति के काव्य की विशेषताएँ

विद्यापति मैथिली भाषा के श्रेष्ठ कवि है। इन्होने संस्कृत, अवहट्ठ व मैथिली भाषा में विपुल काष्य की रचना की। इनकी कीर्ति का प्रमुख आधार तीन ग्रंथ है। कीर्तिलता, कीर्तिपताका तथा पढावली। इनके काव्य की निम्नलिखित विशेषताएँ है।

Ükxkj&j l

विद्यापति श्रृंगार के कवि है। इन्होंने श्रृंगार के संयोग व वियोग दोनों पक्षों का चित्रण किया हैं इन्होनें राधा—कृष्ण के माध्यम से अपनी वाणी कही है। इनमें भी कवि संयोग पक्ष का अधिक चित्रण किया हैं। डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार, ''विद्यापति का संसार ही दूसरा है....... शरीर में सौंदर्य के सिवाय कुछ भी नहीं है........ यौवन शरीर के आनंद ही उसके आनंद है? इनके राधाकृष्ण अपार सौंदर्य के स्वामी है। राधा की सुंदरता के सामने करोड़ों कामदेव हीन हैः

'देख—देख राधा रूप अपार।

अपरूप के विहि आनि मिला ओव्र, खितितल लाब्रनि—सार।।'

कवि ने संयोग में सखी शिक्षा का अद्भुत चित्रण है। वह वियोग व संयोग—दोनों स्थितियों में नायक—नायिका को शिक्षा देती हुई दिखाई देती है। वियोग में राधा कृष्ण के प्रवास की पीड़ा को अनुभव करती है उसे प्रिय के बिना अपने जीवन व यौवन की निस्सारता प्रतीत होती है।

'सरसिज बिनु सर सर बिनु सरसिज,

की सरासिज बिनु सूरे।

जीवन बिनु तन तन बिनु जीवन

की यौवन पिय दूरे।

HkfDr Hkkouk

कवि ने कुछ पद भक्तिभावना के भी लिखें है। इन्होंने राधा—कृष्ण, सीता—राम, शिव—शक्ति, गंगा, भैरवी, गणेश आदि देवताओं की स्तुति की है। उन्होंने ईश्वर से मुक्ति की कामना की है। इनकी भक्तिभावना में प्रभु के प्रति समपर्ण व तन्मयता का भाव है।
'तुअ पद पल्लव करि अवलंबन, तिल एक देह दीन बंधु।'

lkn;kfp=.k

विद्यापति सौंदर्य के सच्चे सर्जक, आराधक थे। ये सौंदर्य में खूब रमे थे और सौंदर्य की सजलता ने उनके मन व प्राणों को सरसित कर रखा था। इन्होने वयःसंधि, सद्यःस्नाता, नखाशिख, मिलन व प्रकृति चित्रण के सौदर्य का अद्‌भुत वर्णन किया है। उनके अनुसार, सौंदर्य शाश्वत व सत्य है उन्होंने राधा के माध्यम से सौंदर्य का आश्चर्यजनक वर्णन किया है।

राधा की सुंदरता के विषय में सखीं कहती हैः

'ए कान्ह ए कान्हु तोर दोराई ।

अति अपूरब देखल साई।'

कवि ने प्रकृति चित्रण आलंबन व उद्‌दीपन के रूप में किया है।

xhrkRedrk

विद्यापति ने जिस संगीतरूपसी की रचना की, वह सारे संसार का चित चुराने में सफल रही। कवि को हिंदी गीतिकाव्य परंपरा का प्रवर्तक माना जाता है। उनके सारे पद रागों में गाए जा सकते हैं इनके गीतों में वैयक्तिकता, काल्पनिकता, भावकता, शैली की सुकुमारता, संक्षिप्तता, संगीतात्मकता, रागात्मकता सर्वत्र विद्यमान हैं इन्होंने कोमलकांत पदावली का प्रयोग किया है।

'डम डस डम्फ दिमिक ध्रिमि मादल, रूनु झुनु मंजीर बोल।

किंकिनी रननि बलआ कनकनि, निधु बने रास तुमुल अतरोल।

Hkk"kk'kyh

विद्यापति ने संस्कृत, अवहरठ व मैथिली में साहित्य–सर्जना की। उनके समस्त गीत जो उनकी कीर्ति पताका है; मैथिली में हैं इस भाषा को इन्होने अलंकारों, बिंबो, सुक्तियों, लोकोक्तियों, मुहावरों आदि से शक्ति सम्पन्न बनाया हैं जैसे–

क. 'दुःख सहि–सहि सुख पाओल।'

ख. 'वानर मुँह न सोभय पान।'

इन्होंने शब्दालंकारों व अर्थालंकारों का सहज प्रयोग किया है इन्होंने उपमा, अनुप्रास, यमक, अतिशयोक्ति, उत्त्प्रेक्षा, दृष्टांत, रूपक आदि अलंकारों का सर्वाधिक प्रयोग किया है किया है जैसे–

क. यमक– सारंग नयन बयन पुनि सारंग, सारंग जसु समधाने।

सारंग ऊपर उगल दस सारंग के लिए कराधि मधुपाने।।'

ख. उपमा– पहिल बदरि सम पुन नवरंग।

वास्तव में, विद्यापति की भाषा नवगति, लय, ताल व प्रकाश से प्रस्फुरित है। अतः कवि की यह गवौक्ति शत्प्रतिशत तथ्यसंगत प्रतीत होती है।

'विद्यापति की भाषा बालचंद है। दोंनों को दुर्जनों की हँसी प्रभावित नहीं करती हैं एक तो शिव के सिर पर शोभित है। और दुसरी (विद्यापति की भाषा) नागर–मन को नित्य मोहती है।

'बालचंद बिज्जावई भाषा

दुहु नहि लग्गई दुज्जन हासा।

ओ परमेसर हर सिर सोहई,

ई निव्व्य नायर मन मोहइ।।'

Hkw"k.k

leh{kk

1.

भूषण का साहित्यिक परिचय

रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि भूषण का जन्म 1613 ई० कानपुर जनपद के तिकवाँपुर नामक गाँव में हुआ। इनके पिता का नाम रतिनाथ या रत्नाकर त्रिपाठी था। इनके छोटे भाई थे – चितामणि और मतिरामा भूषण की उपाधि उन्हें चित्रकूट के राजा रूद्रसाह के पुत्र हृदयराम ने प्रदान की थी। ये मोरंग, कुमायूँ, श्रीनगर, जयपुर, जोधपुर, रीवाँ शिवाजी और छत्रसाल आदि के आश्रय में रहे, परन्तु इनके पसंदीदा नरेश शिवाजी और बुंदेला थे। इनका निधन 1715 ई० में माना जाता है।

jpuk,¡

विद्वानों ने इनके छह ग्रंथ माने हैं – शिवराजभूषण, शिवाबावनी, छत्रसालदशक, भूषण उल्लास, भूषण हजारा, दूषनोल्लासा परन्तु इनमें शिवराज भूषण, छत्रसाल दशक व शिवाबावनी ही उपलब्ध हैं। शिवराजभूषण में अलंकार, छत्रसाल दशक में छत्रसाल बुंदला के पराक्रम, दानशीलता व शिवाबवनी मे शिवाजी के गुणों का वर्णन किया गया है।

dk0; lkSBo

भूषण वीर रस के कवि हैं। इन्होंने अपने काव्य नायक शिवाजी व छत्रसाल को चुना। शिवाजी की वीरता के विषय में भूषण लिखते हैः

'भूषण भनत महावरि बलकन लाग्यो,

सारी पातसाही के उड़ाय गये जियरे।

तमके के लाल मुख सिवा को निरखि भये,

स्याह मुख नौरंग सिपाह मुख पियरे।।'

इन्होंने शिवाजी की युद्ध वीरता, दानवीरता, दयावीरता व धर्मवीरता का वर्णन किया है। भूषण के काव्य में उत्साह व शक्ति भरी हुई है। इसमें हिंदू जनता की भावनाओं को ओजमयी भाषा में अंकन किया गया है। भूषण ने कहा कि यदि शिवाजी न होते तो सब कुछ सुन्नत हो गया होताः

'देवल गिरावते फिरावते मिसाल अली,

ऐसे डूबे राव राने सबी गए लपकी।

गौरा गनपति आप औरंग को देत ताय,

आप के मकान सब मारि गये दबकी।।'

भूषण के काव्य में सर्वत्र उदारता का भाव मिलता है। वे सभी धर्मों को समान दृष्टिकोण से देखते हैं। इनके साहित्य में ऐतिहासिक घटनाओं का यथार्थवादी चित्रण मिलता है। इन्होंने शिवाजी को धर्मरक्षक के रूप प्रशंसा की है तो जसवंत सिंह, करण सिंह आदि की आलोचना भी की है।

भूषण ने सारा काव्य ब्रजभाषा में रचा था। ओजगुण से परिपूर्ण ब्रजभषा का प्रयोग सर्वप्रथम इन्होंने ही किया था। इन्होंने प्रशस्तियाँ भी लिखी है।

'आज गरीब निवाज मही पर

तो सो तुही सिवराज विरजै'

कवि ने मुक्तक शैली में काव्य की रचना की। इन्होंने अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया है। इन्होंने कवित्त व सवैया, छंद का प्रमुखतया प्रयोग किया है।

वस्तुतः भूषण बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे कवि व आचार्य थे।

2.

भूषण वीर रस के श्रेष्ठ कवि है

भूषण का वीरकाव्य हिन्दी साहित्य की वीर काव्य परंपरा में लिखा गया है। इनकी कविता का अंगीरस वीर रस है। इनकी रचनाएँ शिवराज भूषण, शिवाबावजी और छत्रसाल दशक वीर रस से ओतप्रोत है। ये तीनों कृतियाँ भूषण की वीर भावना की सच्ची निर्देशक है। यह काव्य अपने युग के आदर्श नायकों के चरित्र को प्रस्तुत करने वाला है। इनमें शिवाजी और छत्रसाल के शौर्य–साहस, प्रभाव व पराक्रम, तेज व ओज का जीवंत वर्णन हुआ है। भूषण के वीरकाव्य की मुख्य विशेषता यह है कि उसमें कल्पना और पुराण की तुलना में इतिहास की सहायता अधिक ली गई है। काव्य का आधार ऐतिहासिक है। इसके अतिरिक्त, इस वीरकाव्य में देश की संस्कृति व गौरव का गान है। भूषण ने अपने वीरकाव्य में औरंगजेब के प्रति आक्रोश सर्वत्र व्यक्त किया है।

भूषण की वीरभावना का वर्णन बहुआयामी है। इसे हम युद्धमूलक, धर्ममूलक, दानमूलक, स्तुतिमूलक आदि रूपों में देख सकते हैं।

;|)eyd

वीर रसके स्थायी भाव उत्साह का उत्कृष्ट रूप युद्धभूमि में शत्रु को ललकारते हुए उजागर होता हैं शिवाजी स्वंय वीर थे और उनकी प्रेरणा से हिन्दू सैनिकों के मन में वीरता का भाव उत्पन्न हुआ था। भूषण ने उन सैनिकों की वीरता का वर्णन करते हुए कहा है:

'घूटत कमान अरू तीर गोली बानन के,

मुसकिल होति मुरचान हू की ओट में,

ताहि समै सिवराज हुकम के हल्ल कियो,

दावा बांधि पर हल्ला वीर भट जोट में।।'

/keHkyd

कवि ने शिवाजी को धर्म व संस्कृति के उन्नायक के रूप में अंकित किया है। शिवाजी ने मुसलमानों से टक्कर ली तथा हिंदुओं की रक्षा की।

कवि ने शिवाबावनी में कहा है :–

"वेद राखे विदित पुराने राखे सारयुत,

राम नाम राख्यों अति रसना सुधार मैं,

हिंदुन की चोटी रोटी राखी है सिपहिन की,

कांधे में जनेऊ राख्यो माला राखी गर मैं।।"

nku eyd

वीर रस के कवियों ने अपने नायक को अत्यधिक दानवीर दिखलाया है। भूषण ने शिवाजी की दानवीरता का अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन किया है। पाचक को अपनी इच्छा से ज्यादा दान मिलता है। शिवास्तुति मे कवि ने शिवाजी की अपूर्व दानशीलता का वर्णन किया है।

"जाहिर जहान सुनि दान के बखान आजु,

महादानि साहितनै गरिब नेवाज के।

भूषण जवाहिर जलूस जरबाक जोति,

देखि–देखि सरजा की सुकवि समाज के।।

n;keyd

भूषण के अनुसार, शिवाजी दया के सागर हैं। वे शरणागत पर दया करते थे। उन्होंने अपने सैनिकों को स्त्रियों व बच्चों को तंग न करने का निर्देश दिया हुआ था।

वस्तुतः भूषण ने शिवाजी के पराक्रम, शौर्य व आतंक का प्रभावशाली वर्णन किया है। उन्होंने शिवाजी के धर्मरक्षक, दानवीर व दयावान, रूप को प्रकट किया है। इनके वीररस से संबंधित पद मुक्तक हैं। इनमें ओजगुण का निर्वाह है। हिन्दी के अन्य वीर रस के कवि श्रृंगार का वर्णन भी साथ में करते हैं। जबकि भूषण का काव्य श्रृंगार भावना से बचा हुआ है। अतः कहा जा सकता है कि भूषण वीररस के श्रेष्ठ कवि हैं।

3.

भूषण की राष्ट्रीय चेतना

भूषण राष्ट्रीय भावों के गायक है। उनकी वाणी पीड़ित प्रजा के प्रति एक अपूर्व आश्वसान हैं। इनका समय औरंगजेब का शासन था। औरंगजेब के समय से मुगल वैभव व सत्ता की पकड़ कमजोर होती जा रही थी। औरंगजेब की कटुरता व हिन्दुओं के प्रति नफरत ने उसे जनता से दूर कर दिया था। संकट की इस घड़ी में भूषण ने दो राष्ट्रीय पुरूषों – शिवाजी व छत्रसाल के माध्यम से पूरे राष्ट्र में राष्ट्रीय भावना संचारित करने का प्रयास किया। भूषण ने तत्कालीन जनता की वाणी को अपनी कविताओं का आधार बनाया है। इन्होंने स्वदेशानुराग, संस्कृति अनुराग, साहित्य अनुराग, महापुरुषों के प्रति अनुराग, उत्साह आदि का वर्णन किया है।

Lon'kkujkx

भूषण का अपने देश के प्रति गहरा लगाव था। उनकी दृष्टि पूरे देश पर थी। उन्होंने देखा कि औरंगजेब देवालयों को नष्ट कर रहा है तो उनका मन विद्रोह कर उठा। शिवाजी के माध्यम से उन्होंने अपनी वाणी प्रकट की –

'देवल गिरावते फिरवाते निसान अली,

ऐसे समय राव–राने सबै गये लबकी।

गौरा गनपति आय, औरंग की देखि ताप,

अपने मुकाम सब मारि गये दबकी।।'

lLÑfr vujkx

भूषण ने संस्कृति का उपयोग हिंदुओं को खोया हुआ बल दिलाने के लिए किया। इन्होंने अनेक देवी–देवताओं के कार्यों का उल्लेख किया तथा उन महान् कार्यों की कोटि में शिवाजी के कार्यों की गणना की है। शिवाजी को धर्म व संस्कृति के उन्नायक रूप में अंकित किया गया है–

मीड़ि राखे मुगल मरोड़ि राखे पातसाह,

बैरी पीसि राखे बरदान राख्यौ कर मैं।

राजन की हद्द राखी तेग–बल सिवराज,

देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर मैं ।।

lkfgR; vuqjkx

भूषण ने वेदशास्त्रों का गहन अध्ययन किया है। इन्होंने प्राचीन साहित्य के आधार पर ही अपने काव्य की रचना की उनका साहित्य प्रेम उनकी राष्ट्रीय भावना का परिचायक है।

egkiq#"kksa ds izfr J)k

भूषण ने अतीत व वर्तमान के महापुरुषों व जननायकों के प्रति श्रृद्धा व्यक्त की है। इन्होंने शिवाजी और छत्रसाल बुन्देला या अन्य कोई पात्र सभी का उल्लेख केवल उन्हीं प्रसंगों में किया है जो राष्ट्रीय भावना से संबंधित थे। जैसे :

'रैयाराव चंपति को छत्रसाल महाराज,

भूषण सकत को बरवानि यों बलन के।'

mRlkg

राष्ट्रीय साहित्य में चेतना का भाव होता है। भूषण के साहित्य में सजीवता, स्फूर्ति व उमंग का भाव है। मुगलों के साथ शिवाजी के संघर्ष का कवि उत्साहपूर्ण शैली में वर्णन किया हैः–

'दावा पातसाहन सों किन्हों सिवराज बीर,

जेर कीन्हीं देस हृदय बांध्यो दरबारे से।

हठी मरहठी तामैं राख्यौ न मवास कोऊ,

छीने हथियार डोलैं बन बनजारे से।।'

निस्संदेह, भूषण का काव्य राष्ट्रीय चेतना से ओत–प्रोत है। वे सच्चे अर्थो में राष्ट्रीय भावना के कवि।

4.

भूषण के काव्य की विशेषताएँ

महाकवि भूषण युग–प्रवर्तक रचनाकार है। रीतिकालीन कवियों की भाँति इन्होंने शृंगार रस की रचना न करके वीर भावना व राष्ट्रीय चेतना का वर्णन किया है। उन्होंने अपनी इस चेतना को व्यक्त करने हेतु दो महापुरूषों शिवाजी और छत्रसाल को माध्यम बनाया है। ये दोनों महापुरुष हिंदू जाति के गौरव थे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने लिखा है –

"शिवाजी और छत्रसाल की वीरता के वर्णनों को कोई कवियों की झूठी खुशामद नहीं कह सकता। वे आश्रयदाताओं की प्रशंसा की प्रथा के अनुसरण मात्र नहीं है। इन दोनों वीरों का जिस उत्साह के साथ हिन्दू जनता स्मरण करती हैं, उसी की व्यंजना भूषण ने की है।"

भूषण के काव्य की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :–

ohj jl dh 0;:tuk

भूषण की कविता वीर रस प्रधान है। इसमें एक ओर नायक को उत्साह की प्रबलता दिखाई गयी है। वहाँ दूसरी और शत्रु पक्ष में भय का वर्णन किया गया है। कवि की तीन कृतियों – शिवराजभूषण, शिवा बावनी और छत्रसाल दशक में वीर रस की अभिव्यंजना की गई है। छत्रसाल के युद्ध संबंधी कौशल को कवि चित्रित करता है।

'भुज भुजगेस की वै संगिनी भुजांगिनी सी,

खेदि खेदि खाती दीह दारुन दलन के।

बखतर पाखरन बीच धंसि जाति मीन,

पैरि पार जात परवाह ज्यों जलन के।।

रैयाराव चंपति के छत्रसाल महाराज,

भूषण सकै करि बखान को बलन के।

पच्छी पर छीने ऐसे पर परपछोने वीर,

तेरी बरछी बर छीने हैं खलन के।।

शत्रु पक्ष के मन में भय जब स्थान ग्रहण कर लेता है तो उसे आतंक कहा जाता है। शिवाजी के आतंक का वर्णन कवि ने किया है –

"ऊंचे घोर मंदर के अंदर रहनवारी,

ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहाती है।

कंद–मूल भोग करैं कंद–मूल भोग करैं।

तीन बेर खाती ते वै तीन बेर खाती है।"

'kkL=h; fo"k;k dk fu#i.k

भूषण का युग लक्षण ग्रंथो के निर्माण का युग था। इनके बिना कवि को आश्रय नहीं मिल सकता था। कवि ने शिवराज भूषण नामक अलंकार ग्रंथ की रचना की। इसमें 105 अलंकारों का वर्णन है। इसके अतिरिक्त, कुछ पदों में श्रृंगारमूलक प्रवृति दिखाई देती है।

jk"Vh; p:ruk dk fp=.k

भूषण के युग में मुगल शासक औरंगजेब के अत्याचार चरम सीमा पर थे। हिन्दुओं के मंदिरों को तोड़ा जाता था। शिवाजी को जननायक के रूप में चित्रित कर जनता में उत्साह जगाया जाता था। भूषण ने शिवाजी के विषय में लिखा है :–

"कासीहू की कला गई मथुरा मसीद भई,

सिवाजी न होतो सुनति होती सबकी।"

f'kYi i{k

भूषण ने अपनी भावाभिव्यक्ति ब्रजभाषा में की। भूषण ने उपमा, रूपक, उल्लेख, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। इन्होंने मनहरण कविन, दोहा, छप्पय, सवैया आदि छंदों का सुन्दर प्रयोग किया है। इन्होंने तदभव शब्दावली का प्रयोग किया है। ब्रजभाषा की कोमलता तोड़ने हेतू इन्होंने द्वित्व शब्दों का इस्तेमाल किया है:–

'बाज ज्यों बिंहग पर सिंह ज्यों महंग पर,

मलेच्छ चतुरंग पर शिवराज देखिए।

इन्होंने वीररस का वर्णन किया है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है। कि भूषण रीतिकाल के वीर रससिद्ध कवि हैं। इन्होंने तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक सांस्कृतिक दशा का सुन्दर वर्णन किया है। वीररस इनकी कविता का प्रधान रस है।

5.

भूषण की कविता का शिल्प पक्ष

भूषण काव्याभिव्यक्ति के प्रखर कवि हैं। इन्होंने अपने काव्य की रचना ब्रजभाषा में की है, परंतु कवि प्रांतीयता को नहीं छोड पाया है। इन्होंने ओज गुण का प्रयोग किया है। इनकी भाषा ध्वन्यात्मकता से ओतप्रोत हैं इनकी भाषा में चित्रात्मकता का बहुत महत्व है। इन्होंने अनेक शब्दचित्र उतारे हैं–

''ताव दै दै मूछन कंगूरज पै पांव दै दै,

अरि मुख छाव दै दै कूदै परैं कोट में।।'

इन्होंने अरबी – फारसी के शब्दों का पर्याप्त प्रयोग किया है। जैसे :–

'ऐल फैल खैल–मैल खलक में गैल गैल,

गजन की ठेल–पेल सैल उसलत हैं।।'

इनके काव्य में ओजगुण की प्रधानता है, वीर रस में ही इन्होंने नाद सौन्दर्य की प्रस्तुति कर दी है:–

''किलकि किलकि है कुतूहल करति काली,

डिम–डिम डमरू दिगम्बर बजाई है।''

कवि ने वीररस की प्रस्तुति के लिए द्वित्व शब्दों का अधिक प्रयोग किया है। कवि भूषण ने भावों की भंगिमा तराशने और निखारने के लिए यथास्थान शब्दालंकारों व अर्थालंकारों का उचित प्रयोग किया है। इन्होंने शिवराज भाषा नामक अलंकार ग्रंथ भी लिखा है। इन्होंने उपमा, रुपक, अनुप्रास, अतिशयोक्ति, समासोक्ति, विभावना आदि अलंकारों का सहज प्रयोग किया है। जैसे :–

''मानसरबासी हंस बंस न समान होत चंदन सो धस्यौ धनसारै न घरीक है।

नारद की सारद की हांसी समान न सदर की सुसरी कौन भीर पुंडरीक है।

भूषन मनत छक्यो छीरधि में थाह लेत फेन सो लपैट्यौ ऐरावत को करी कहै।

कैलास में ईस ईस – सी रजनीस वहौ सिवा अवनीस के न जस को सरीक है।''

कवि का पसंदीदा अलंकार उपमा है। भूषण ने दोहा, छाप्य, मालती, सवैया, हरिगीतिका आदि अनेक छंदों का प्रयोग किया है। परन्तु इनका प्रिय छंद मनहरण है।

कवि ने गौड़ी रीति व परूणा वृति का व्यवहार किया है। इन्होंने निवरणात्मक शैली, विवेचनात्मक व संश्लिष्ट शैली का प्रयोग किया है। इन्होंने मुहावरे व लोकोक्ति का सार्थक प्रयोग किया है।

मुहावरा: 'तारे लगे फिरन सितारे गढधर के।'

लोकोक्तिः 'सौ सौ चूहे खाय के बिलारी बैठी तप के।'

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कवि का काव्यशिल्प इनके विचारों व भावों को व्यक्त करने में पूर्णतः सक्षम है।

?kukun

l eh{kk

1.

?kukun dk lkfgfR;d ifjp;

thou ifjp;

रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि धनानंद का जन्म सन् 1683 में बुलंदशहर के कायस्थ परिवार में हआ। ये मुगल बादशाह मुहम्मदशाह 'रँगीले' के मीरमुंशी थे। यह मान्यता है कि दरदार की वेश्या सुजान से ये प्रेम करते थे। सुजान प्रेम व बादशाह सम्मान के कारण इनके अनेक शत्रु पैदा हुए जिन्होंने षड्यंत्र रचकर इन्हें दरबार से निकलवा दिया। इन्होंने सुजान से साथ चलने को कहा, परंतु उसने इंकार कर दिया। परिणामतः वे विरक्त होकर वृंदावन चल गए और निम्बार्क संप्रदाय में दीक्षित हो गए। इनके गुरू नरहरि थे। इनकी मृत्यु 1760 ई० में मानी जाती है।

jpuk,a

घनानंद के काव्य प्रेरण सुजान नामक वेश्या थी। दरबार से निष्कासन तथा सुजान द्वारा उपेक्षा के कारण इन्होने मुक्तकों की रचना की। दरबारी घनानंद का लौकिक प्रेम परलौकिक बन गया। इनका सुजान–प्रेम राधाकृष्ण का प्रेम बन गया। इनकी मुख्य रचनाएं हैं:–

1. सुजान हित
2. विरहलीला
3. कोकसागर
4. कृपाकंद निबंध
5. घनानंद कवित्त
6. सुजानविनोद
7. प्रीति पावस
8. यमुना यश
9. वियोग बेलि
10. इश्कलता आदि।

इनके काव्य की निम्नलिखित प्रवृतियाँ हैं :–

1. सौन्दर्यानुभूति
2. प्रेमानुभूति

3. विरहानुभूति
4. भक्तिभावना
5. शिल्प

सौन्दर्यानुभूति

घनानंद सौंदर्य के मर्मी कवि हैं। इन्होंने नखशिख वर्णन न करके सौंदर्य के समग्र प्रभाव को उजागर किया है। इन्होंने सुजान के सौंदर्य के आधार पर सौंदर्य की नाना छवियों, अवस्थाओं व दशाओं की व्यंजना की है। कवि की नायिका की सबसे बड़ी विशेषता उसकी नित्य नवता ओर अतृप्ति की भावना हैः–

'रावरे रूप की रीति अनूप, नयो नयो लागै ज्यौं ज्यौं निहारियै।

त्यौं इन आंखिन बानि अनोखी अधानि कहूँ नहिं आन तिहारियै।।'

i:ekuHkfr

घनानंद की कविता प्रेम की कविता है। ये स्वयं 'नेही महा' है। उनका सुजान से एक तरफा, विषम व गहरा प्रेम है। इनका प्रेम शासनोनुमोदित नहीं है। वह स्वतंत्र है। व चतुराई रहित है।

'अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बांक नहीं।

तहाँ सांचे चलै तजि आपनयौ झझकै कपटी जे निसांक नहीं।।'

fojgkuHkfr

प्रेम की विरहानुभूति घनानंद की कविता का प्राण है। प्रेम की पीर इनकी कविता में नाना रूपों में विद्यमान है। यह विरह पीड़ा ही उनके सच्चे प्रेम की कसौटी है।

'रैन दिना घुटिवौं करैं प्रान झरैं अंखियां दुखियां झरना सी।

प्रीतम की सुधि अंतर में कसकै सखि ज्यौं पंसरीन मैं गांसी।।

HkfDr&Hkkouk

प्रेम की दिव्य अनुभूति का नाम भक्ति है। सुजान की बेवफाई के बाद इन्होने अपनी सारी संवेदना राधाकृष्ण को समर्पित कर दी। इन्होंने अपने लौकिक प्रेम को अलौकिकता की ओर उन्मुख कर दिया। इनका ईश्वर के प्रति प्रेम दृष्टव्य हैः–

राधामदन गोपाल की हैं सेज बनाऊँ।

दूध फेन फीको करै बर बसन बिछाऊँ।

बासंती नव कुसुम लै रूचि रूचिहिं रचाऊँ।

नव परागभरि भाव सों तिन पर बगराऊँ।

f'kYi

कवि ने अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करने लिए सहज अभिव्यक्तियों का विधान किया है। इनकी अभिव्यक्ति में किसी प्रकार का चमत्कार नहीं है। इन्होंने यथास्थान लोकोक्तियों, मुहावरों, अलंकारों, शब्दशक्तियों, बिंबों आदि के प्रयोग से अभिव्यंजना शक्ति को समृद्ध बनाया है। कवित्त व सवैया इनके प्रमुख छंद हैं। इन्होने ब्रजभाषा का प्रभावशाली प्रयोग किया है। इनके काव्य में लक्षण व व्यंजन की प्रधानता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि घनानंद भाव, विचार व शिल्प की दृष्टि से उच्च कोटि के कवि हैं।

2.

?kukuan dh i:ekuHkfr

घनानंद हिंन्दी के सर्वोत्कृष्ट स्वच्छंद रीतिकालीन प्रेमी कवि है। व प्रेमानिरूपण के ही केवल कवि नहीं है। वरन् वे स्वंय 'नेही महा' हैं। प्रेम ही उनके काव्य का प्राण तत्व है। इनकी विरहानुभूति रीतिकवियों की भांति बाहरी नहीं है। वह अंदर ही अंदर मथती है। कवि की प्रेमानुभूति निश्छलता के साथ लौकिकता, स्वाभाविकता, संभोगशीलता कष्टसहिष्णुता और विरहातुरता से अनुप्राणित है। इनकी प्रेमभावना की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :–

LoPNnrk

कवि रीतिबद्ध कवियों की भाँति नखरिखवर्णन नहीं किया है। वह स्वछंद है। चतुराई रहित है। वह झरने के जल जैसा सहज है। इन्होंने अपने युग की रूढियाँ तोड़ी वे दिखाने से पूर्णतः दूर हैं:–

'चाहौ अनचाहौ जान प्यार पै आनंद धन,

प्रीति रीति विषय सु रोम रोम रमी है।'

fojg dh 0;Fkk

प्रेम की वियोगानुभूति ही इनकी कविता का प्राण हैं। 'प्रेम की पीर' इनकी कविता में नाना रूपों में विद्यमान हैं इनकी विरहानुभूति में सौंदर्य की आसक्ति है, प्रिय की निष्ठुरता हैं। प्रेम की विषमता है। इसमें प्रकृति की मारकता है। डॉ० बच्चनसिंह ने कहा है –

'घनानंद में जितनी बेचैनी तड़प और विह्वलता दिखाई पड़ती है, वह इस काल के किसी कवि में नहीं पाई जाती। उसके प्रत्येक उच्छवास और प्रत्येक घड़कन में निराशा का हाहाकार सुनाई पड़ता है।' प्रकृति का सुखद रूप भी विरही के लिए कष्टकारी बन जाती है–

'बासर बसंत के अनंत है कै अंत लेत,

ऐसे दिन चारै जु निहारै जिय राति है।

लतनि की फूलनि तमालिन पै झूलनि को,

हेरि हेरि नई नई भांति पियराति है।

प्यारे धन आनंद सुजान, सुनौ

चंदन–पवन तें पजरि सियराति है।'

fu"diVrk

घनानंद का प्रेम चतुराई से दूर है। इसमें सच्चे व निष्पाप हृदय की साधना है। वे प्रेम के पक्ष को अत्यंत सीधा मानते है। शंका करने वाले प्रेम के योग्य नहीं है। प्रेम के मार्ग पर वे लोग चल सकते हैं जो कपटी नहीं है।

'अति सूधों सनेह कौ मारर्ग है जहा नेकु सयानप बांक नहीं।

तहां सांचे चलैं तजि आपुजयौ झजकै कपटी जै निसांक नहीं।।

घनानंद प्यारे सुजान सुनौ इत एक तें दूसरौ आंक नहीं।

तुम कौन धौं पाटी पढ़े हो लला मन लेहु पै देहु छटांक नहीं।।

vykSfddrk

घनानंद का सुजान के प्रति प्रेम लौकिक था, परन्तु सुजान की बेवफाई से वे संसार से विरक्त हो गए। इनका प्रेम कृष्ण राधा के प्रेम में परिवर्तित हो गया। घनानंद का प्रेम शुद्ध, पवित्र व आध्यात्मिक प्रेम बन गया। वे कहते हैंः–

'जब तें निहरें इन आँखिन सुजान प्यारे,

तब तें गही है उस आन देखिबे की आन।

LokuHkfr ie

घनानंद ने अपने आंतरिक भावों को ही व्यक्त किया है। इनका प्रेम निरूपण स्वानुभूत है। उन्होंने सुजान से एक पक्षीय प्रेम किया। वे उसे चकोर तथा चातक के समान प्रेम करते हैं। सुजान के प्रति प्रणय की विफलता कवि को इस मानसिक परिणति तक खींच ले गई है।

''पहले घन आनंद सीधि सुजान कहीं बतियां अति प्यार पगी।

अब लाय वियोग की लाय, बलाय बढ़ाय विसास दगानि दगी।।''

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रेम की अनेक अवस्थाओं व मार्मिकता को घनानंद ने अच्छी तरह समझा है।

3.

?kukun dh HkfDr&Hkkouk

भक्ति शब्द भज् धातु से निर्मित हैं भक्ति वह तत्व है जो ईश्वर के प्रति जीवन की सेवा भावना को प्रकट करती है। घनानंद सुजान की बेवफाई से ब्रजभूमि में आ गए थे। वे निम्बार्क संप्रदाय में दीक्षित हुए तथा अपनी सारी संवेदना को राधाकृष्ण हेतु अर्पित कर दी। इनकी रचनाओं कृपाकंद, वियोग बेलि, इश्कलता, गोकुल गीत, भावनाप्रकाश आदि में भक्ति भावना के अनेक रंगो व तरंगों को देखा जा सकता है।

इनकी भक्ति की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :–

1. राधाकृष्ण के प्रति प्रेम
2. समर्पण भाव
3. वैष्णव भक्ति

jk/kkÑ".k dh i:fr i:e

घनानंद में ब्रजभूमि में आकर अपने लौकिक प्रेम को अलौकिकता की और, सुजान–प्रेम को राधा–कृष्ण के प्रेम की ओर उन्मुख कर दिया था। उन्होंने युगल रूप की भक्ति व्यंजित की है–

'चांपत चरन तनक झुकि जाऊँ, छुवै सीस राधा के पाऊँ।

राधा धर्‌याँ बहगुणी जाऊँ, हरि लगि रहौं बुलाए जाऊँ।।'

lei!.k Hkko

कवि का लोकप्रेम ईश्वर प्रेम में सुजान के कारण परिवर्तित हुआ। इनकी भक्ति में तन्मयता व समर्पण की पराकाष्ठा हृदय को वशीभूत कर लेती है। ईश्वर में प्रति समर्पणशीलता का यह उदाहरण देखते ही बनता है –

'राधा –मदन गोपाल की है। सेज बनाऊँ।

दूध फेन फीको करै बर बसन बिछाऊँ।

बासंती नव कुसुम लै रूचि रूचिहिं रचाऊँ।

नव परागभरि भाव सों तिन पर बगराऊँ।

o".ko HkfDr

कवि के काव्य में शांत, दास्य व वात्सल्य भक्ति के रूप मिलते है। दास्य भाव देखिए :—

'अंतर हौ किधौं अंत रहौ, दुग फारि फिरौं कि अभागनि भीरौं।

आगि जऐ अकि पामि परौ, अब कैसी करौं हिय का विधि धारौं।।'

कवि ने राधाकृष्ण की रासलीलाओं, यशोदा द्वारा कृष्ण के प्रति आदि का वर्णन किया है। वस्तुतः कहा जा सकता सकता है कि घनानंद ने जिस ढंग से लौकिक प्रेम का वर्णन किया है, उतनी ही तीव्रता व तादात्म्य से भक्ति को भी व्यंजित किया है।

4.

?kukuan ds dk0; dh fo'ks"krk,¡

घनानंद रीतिमुक्त काव्यधारा के शिखर कवि हैं। उनके व्यक्तित्व व कृतित्व की रचना उनके कवित्व ने की है –

'लोग हैं लागि कवित्त बनावत,

माहि तौ मेरे कवित्त बनावत'

इनके काव्य की निम्नलिखित विशेषताएँ है :–

1. सौंदर्यचित्रण
2. प्रेमानुभूति
3. भक्ति भावना।
4. विरह वर्णन।
5. भाषा

lkSan;Z fp=.k

कवि ने मन पर सुजान की सौंदर्याभा की जो छवियां है, उन्हीं को उन्होंने शांन्ति व भावुकता के क्षणों में व्यक्त किया है। कवि की नायिका की सबसे बड़ी विशेषता उसकी नित्यनवता और अतृप्ति की भावना है–

'रावरो रूप की रीति अनूप, नयों नयों लागै ज्यौं ज्यौं निहारियै।'

कवि ने सुजान के नवयौवन संपन्न, अंग, लावव्य का प्रभावोत्पादक चित्र अंकित किया है।

'झलकें अति सुंदर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छ्वै।

हासि बोलनि में छवि–फूलन की, बरषा उर–ऊपर जाति है ह्वै।

लट लोल कपोल कलोल करे कल कंठ बनी जलजावलि है।

अंग अंग तरंग उठे दुति की परिहै मनौ रूप अबै धर च्वै।।

इनके सौंदर्यचित्र अन्तः करण से उभरे है।

i!ekuHkwfr

धनानंद की प्रेमानुभूति निश्छलता के साथ लौकिकता, स्वाभाविकता, कष्टसहिष्णुता व विरहातुरता से प्रेरित है। इनकी प्रेमानुभूति शास्त्रोनुमोदित नहीं हैं वह स्वच्छंद है। उन्होंने सुजान के प्रति अपने प्रेम को व्यक्त किया है।

'धन आनंद प्यारे सुजान सुनों,
जहाँ एक तो दूसरों आँक नहीं।
तुम कौम धौं पाही पढै हो लला,
मन लेहु पै देहु छटांक नही।

HkfDrHkkouk

धनानंद लौकिक प्रेम से धोखा खकर अलौकिक प्रेम की ओर मुड़ गए। इनकी भक्ति सात्विकता से युक्त हें इनकी भक्ति निम्बार्क संप्रदाय की युगल स्वरूप की भक्ति है। इन्होंने राधा की बार–बार वंदना की हैः

'चांपत चरन तनक झुकि जाऊँ। छुवै सीस राधा के पाऊँ।

राधा धर्‌यौ बहु गुनी नाऊँ। टरि लागि रहौं बुलाए जाऊँ।।

राधा की जूठनि हि जियौं। राधा की प्यासनि ही जियौं।

राधा कौ सुख सदा मनाऊँ। सुख दै दैं हौं सुख ही पाऊँ।।''

fojg&o.kZu

धनानंद प्रेम की पीर के सजल कवि है। वेदना और पीड़ा की कसक से कवि का रोम–रोम भरा हुआ है। विरह प्रेम की परख है। विरही का हृदय अपनी प्रेमिका को पाने के लिए तड़पता रहता है।

'अंतर आँच उसास तपै अति, अंग उसी जै, उदेग की आवस।

ज्यौं कहलाय मसोसनि ऊमस क्यों हूँ कहूँ सुधरे नही प्यावस।

धनानंद के विषय में कहा गया हैः–

'समुझै कविता धनानंद की हिय आँखिन नेह की पीर तकी है'।

Hkk"kk

धनानंद की भाषा ब्रज है। इनका भाषा में उक्ति चमत्कार दर्शनीय है।

'प्यास भरी बरसैं तरसैं मुख देखन को अंखियां दुखहाई।'

इनके काव्य में क्षणिक मूर्तिमना विद्यमान है। इन्होने यथास्थान लोकोक्तियों मुहावरों अलंकारो, शब्दशक्तियों, बिंबों आदि के प्रयोंग से अभिव्यंजना शक्ति को अधिक प्रभावयुक्त बना दिया है। इन्होने मुख्यतया कवित्र व सवैया छंद का प्रयोग किया है।

वस्तुतः धनानंद सौंदर्य के सिद्ध सर्जक है, भक्ति के अनुपम साधक है तथा भाषिक भगिमा के कुशल शिल्पी है। उनकी कविता के विषय में कहा गया हैः

'समुझै कविता धन आनंद की

हिय–आँखिन नेह की परी तकी।'

5.

?kukuan dk dk0;f'kYi

धनानंद ने अपनी विविध अनुभूतियों को व्यक्त करने हेतु सहज अभिव्यक्ति–साधनों का विधान किया है। उनकी अनुभूति और अभिव्यक्ति में निजता का पुट है। निःसंदेह, कवि भाषा प्रवीन और ब्रजभाषा प्रवीण कवि है। इनकी भाषा की निम्नलिखित विशेषताएँ हैः

Hkk"kk

धनानंद की भाषा ब्रज है। इन्होंने भाषा में उक्ति चमत्कार दर्शाया हैः

> *'तुम कौन धौ पाती पढ़ैं हौ लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।*

इनकी भाषा के विषय में रामचंद्र शुल्क के विचार हैः–

'उनके हृदय का योग पाकर भाषा को नूतन गतिविधि का अभ्यास हुआ और वह पहले से अधिक बलवती दिखायी दीः–

egkojs o ykdksfDr

कवि ने मुहावरों व लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा को जीवंत बनाया है। इन्होंने लोकप्रचलित सूक्तियों का प्रयोग किया है जैसेः

> *'क्यों हँसि हेरि हिरयों हियए, अरू क्यों हित कै चित जाह बढाई।*
>
> *काहे को बोलि सुधासने बैननि, चैनमि मैन–निसैन चढ़ाई।*

vyadkj

कवि ने शब्दालंकारो व अर्थालंकारों दोनो का आकर्षक व भावोत्पादक प्रयोग किया है। इन्होने रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, यमक आदि अलंकारों का सुंदर इस्तेमाल किया है। उदाहरण

उपमा–

> *'किंसुक पुंज से फूलि रहे,*
>
> *सुलगी उर दौ जु वियोग तिहारे।'*

अनुप्रास– *लाजनि लपेटी चितवनि भेद–माय भरी,*

लसति ललित लोल–चरण–तिरछानि मैं।

पुनरूक्ति प्रकाश– *हेरि हेरि नई नई भांति पियराति है।*

उत्प्रेक्षा– *अंग–अंग तरंग उठै दुति की, परि है मनै रूप अबै धर है।*

Nn

कवि ने लगभग दस छंदों–कवित्त, सवैया, दोहा, सोरठा, अरिल्ल, नाटक, त्रिमंगी, निशानी, शोभन आदि का प्रयोग किया है। इनके प्रिय छंद है–कवित व सवैया

'kCn 'kfDr

कवि ने लक्षण व व्यंजना शब्द शक्ति का प्रयोग किया है। इनके प्रयोग से चमत्कार पैदा होता है। जैसेः

कारी कूर कोकिला कहां को बैर काढति री,

कूकि कूकि अबहिं करे जो किन कोरि लै ।

पैडे पेरे पापी ये कलायी निस औस ज्यों ही।

dk0; x/.k

कवि ने विरह का सर्वाधिक वर्णन किया हैं इनके पदों में सर्वत्र माधुर्य गुण पाया जाता है। जैसेः

'जिनको नित नीके निहरति हो तिनकों अंखियां अब रोवति है।

पल पाँवडे पायनि चायनि सों अंसुवान के धारनि छोवती है।'

कहीं–कहीं प्रसाद गुण का भी प्रयोग हुआ है। कवि ने तद्भव शब्दावली का अत्यधिक प्रयोग किया है ब्रजभाषा की भावाभिव्यंजना, ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता की शक्ति को घनानंद के काव्य में देखा जा सकता है।